सूखा स्थितियों से निपटने हेतु सामुदायिक प्रयासों का दस्तावेज़

गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप एक स्वैच्छिक संगठन है, जो स्थाई विकास और पर्यावरण से जुड़े मुद्दों पर सन् 1975 से काम कर रहा है। संस्था ने अपनी शुरूआत से ही लघु एवं सीमान्त किसानों तथा आजीविका से जुड़े सवालों और उससे सम्बन्धित परियोजनाओं का, जो कि पर्यावरणीय संतुलन, लैंगिक समानता तथा सहभागी प्रयास के सिद्धान्तों पर आधारित था, का सफल क्रियान्वयन किया है। अपने 30 साल के लम्बे काम के दौरान जी०ई०ए०जी० ने अनेक मूल्यांकनों, अध्ययनों तथा महत्वपूर्ण शोधों को सफलतापूर्वक संचालित किया है। संस्था ने इसके अलावा अनेक संस्थाओं, महिला किसानों तथा सहयोगी संस्थाओं का आजीविका और स्थाई विकास से सम्बन्धित मुद्दों पर क्षमता वर्धन भी किया है।

आज, जी०ई०ए०जी० ने उत्तर भारत में स्थाई कृषि, सहभागी प्रयास, जेण्डर तथा मेथाडॉलोजी जैसे विषयों पर पूरे उत्तर भारत में अपनी विशिष्ट पहचान बनायी है। संस्था की उपलब्धियों, प्रयासों तथा विशेष क्षमताओं को देखते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ के आर्थिक और सामाजिक मुद्दों की काउंसिल (ECOSOC) ने वर्ष 2000 में जी०ई०ए०जी० को विशेष कंसल्टेटिव स्टेट्स दिया है। अभी हाल ही में जी०ई०ए०जी० को सम्बन्धित मुद्दों पर इण्टरसर्ड, दक्षिण एशिया के लिए एक बड़े केन्द्र के रूप में मान्यता मिली है।

गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप
पोस्ट बाक्स नं० 60, गोरखपुर-273001
फोन : 0551-2230004 फैक्स : 0551-2230005
ई-मेल : geag_india@yahoo.com
वेबसाइट : www.geagindia.org

सूखा स्थितियों से निपटने हेतु सामुदायिक प्रयासों का दस्तावेज़

संकलन :
15 स्वैच्छिक संगठन
बुन्देलखण्ड व विन्ध्य क्षेत्र, उ०प्र०

संयोजन :
गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप
पोस्ट बाक्स नं० 60, गोरखपुर-273001

सहयोग
ऑक्सफेम इंडिया
Oxfam India

सूखा स्थितियों से निपटने हेतु सामुदायिक प्रयासों का दस्तावेज़

संकल्पना व निर्देशन
डॉ० शीराज़ अ० वजीह

तकनीकी सहयोग
डॉ० अर्धेन्दु शेखर चटर्जी

संकलन व सम्पादन
के.के. सिंह

सहयोग
अर्चना श्रीवास्तव
विजय कुमार पाण्डेय

ले-आउट व टाईप सेटिंग
राजकान्ती गुप्ता

संकलन :
15 स्वैच्छिक संगठन
बुन्देलखण्ड व विन्ध्य क्षेत्र, उ०प्र०

संयोजन :
गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप
पोस्ट बाक्स नं० 60, गोरखपुर-273001

सहयोग
ऑक्सफैम इंडिया
Oxfam India

दस्तावेजीकरण में संलग्न संस्थाएं

1. **अर्पित विकास सेवा संस्थान,** कानपुर देहात
2. **आदर्श ग्रामोद्योग महिला एवं बाल विकास संस्थान,** राजेन्द्र नगर, उरई, जालौन
3. **ग्रामीण विकास केन्द्र,** रैपुरा, चित्रकूट
4. **ग्रामोन्नति संस्थान,** हिन्द कालोनी, टेलीफोन एक्सचेन्ज के सामने, गांधीनगर, महोबा
5. **गोरखपुर एन्वायरन्मेण्टल एक्शन ग्रुप,** गोरखपुर
6. **ग्राम उन्मेष संस्थान,** बांदा
7. **पंचायत अध्ययन संदर्भ केन्द्र,** बाँदा
8. **परमार्थ समाज सेवी संस्थान,** चुर्खी रोड, उरई, जालौन
9. **पर्यावरण एवं प्रौद्योगिकी उत्थान समिति,** हवेलिया, झूंसी, इलाहाबाद
10. **भारत प्रकृति सेवाश्रम,** डी0एम0 बंगला के पीछे, गांधी नगर, महोबा
11. **दुद्धी ग्राम विकास समिति,** तालाब रोड, निकट पंचदेव मन्दिर, दुद्धी, सोनभद्र
12. **साईं ज्योति संस्थान,** ललितपुर
13. **समर्पण जन कल्याण संस्थान,** कोंच, जालौन
14. **श्री दीनोदय ग्राम सेवा संस्थान,** पश्चिमी तरौस, मौदहां, हमीरपुर
15. **सृष्टि सामाजिक संस्थान,** उरई, जालौन
16. **सुमित्रा सामाजिक कल्याण संस्थान,** राठ, हमीरपुर

आवरण फोटो - www.123rf.com

आभार

जलवायु की बदलती परिस्थितियों ने लोगों के जीवनयापन की व्यवस्थाओं पर व्यापक प्रभाव डाला है। ये प्रभाव बाढ़, सूखा व अन्य आपदाओं के रूप में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं, जिससे कृषि व आजीविका की व्यवस्थाओं पर परोक्ष व अपरोक्ष रूप से असर दिखायी पड़ता है। बदलती जलवायु परिस्थितियों के साथ स्थानीय समुदाय सामंजस्य बिठाने का भरसक प्रयास करते हैं। समुदायों में विकसित होती यह अनुकूलन क्षमता जलवायु संकट से उत्पन्न विषम परिस्थितियों के प्रभावों से निपटने में लोगों को सक्षम बनाती है।

आजीविका हेतु कृषि के विकल्पों की दुरूहता और मौसम आधारित कृषि होने के कारण स्थानीय समुदायों ने अपने पारम्परिक ज्ञान कौशल व बुद्धिमत्ता से बहुत हद तक ऐसी चुनौतियों से निपटने का प्रयास किया है। विज्ञान व पारम्परिक ज्ञान का सामंजस्य ऐसी विपरीत परिस्थितियों से निपटने में बेहद कारगर होता है। इसी सोच को ध्यान में रखकर प्रदेश के दक्षिणी क्षेत्र से मूलतः बुन्देलखण्ड व विन्ध्य क्षेत्रों में, जो विगत एक दशक से सूखे का दंश झेल रहे हैं, ऐसी स्थानीय गतिविधियों का संकलन किया गया है। इस संकलन का मन्तव्य इस तरह की जानकारी को लोगों के साथ बांटना है, जिससे वे बदलती जलवायुविक परिस्थितियों से निपटने हेतु अपने आप को बेहतर ढंग से तैयार कर सकें। संकलन को तैयार करने में क्षेत्र की 15 स्वैच्छिक संगठनों के प्रमुखों व कार्यकर्त्ताओं का विशेष सहयोग रहा है जिन्होंने अपने-अपने क्षेत्रों में ऐसी गतिविधियों को चिन्हित करने के साथ ही साथ दस्तावेजीकरण की पूरी प्रक्रिया में अहम् भूमिका निभायी। संकलन को तैयार करने में DRCSC के श्री अर्धेन्दु चटर्जी का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा, जिन्होंने पूरी प्रक्रिया को अपनी विशेषज्ञता व तकनीकी सहयोग प्रदान करते हुए दिशा दी। हम सभी उनके समय व श्रम के लिए आभारी हैं।

इस पूरी प्रक्रिया में सामूहिक रूप से जुड़े बुन्देलखण्ड व विन्ध्य क्षेत्र की 15 स्वैच्छिक संगठनों की सक्रिय सहभागिता व प्रोत्साहन के बिना यह संकलन संभव नहीं था, हम उन सभी के आभारी हैं। हम ऑक्सफॉम नोविब को धन्यवाद ज्ञापित करना चाहते हैं, जिन्होंने वित्तीय सहयोग के साथ-साथ अपने सुझावों से भी इस पूरी प्रक्रिया को लाभान्वित किया।

हम उन सभी के आभारी हैं, जिन्होंने इस संकलन को तैयार करने में अपना योगदान दिया है। और अन्ततः सबसे अधिक हम आभारी हैं, उन समस्त ग्रामवासियों व किसानों के, जिन्होंने अपना ज्ञान हमसे बांटा, सूचनाएं प्रदान कीं और अपना अमूल्य समय हमें दिया।

डा० शीराज़ अ० वजीह

विवरणिका

1.	पृष्ठभूमि	1
2.	मैनुअल की आवश्यकता व उद्देश्य	3
3.	जलवायु परिवर्तन	4
4.	बुन्देलखण्ड की स्थिति	7
5.	प्रक्रिया	10
6.	फसल चयन आधारित गतिविधियाँ	
	◆ टपक सिंचाई विधि से टमाटर की खेती	11
	◆ सूखे के दौरान जौ की खेती कर लिया लाभ	13
	◆ सूखे में कठिया गेहूँ की खेती	15
	◆ चने की खेती : सूखे में भी बेहतर उपज	17
	◆ खरीफ ऋतु में मिश्रित फसलें (देशी बाजरा+देशी तिल+देशी मूंग+देशी अरहर)	19
	◆ रबी ऋतु में मिश्रित फसलें (कठिया गेहूँ+देशी चना+अलसी+सरसों)	22
	◆ दलहन फसल के साथ मिश्रित खेती (ज्वार+मूंग+अरहर+रोसा+कचरिया)	25
	◆ जल संचयन करके चना व अलसी की खेती	28
	◆ सूखे में तिल की खेती	30
	◆ वर्षा कम होने से किसानों ने बदली फसल और की अरण्डी की खेती	32
	◆ अरहर की खेती व पशुओं के लिए चारा (अरहर व बाजरा की मिश्रित खेती)	34
	◆ सूखे बुन्देलखण्ड में कम पानी में पैदा हो सकती है : ज्वार	36
	◆ सूखे के दौरान छोटी व मिश्रित खेती ने दिया लाभ	38
	◆ सूखे बुन्देल में कृषि की एक संभावना 'सन'	41
7.	जंगल पहाड़ आधारित आजीविका	
	◆ सूखे के दौर में आजीविका बनी बागवानी	44
	◆ अनुपयोगी धूल (क्रेशर से निकली) से आजीविका संवर्धन	46
	◆ सूखे के प्रभाव को अमरूद की बागवानी ने कम किया	48
	◆ सूखे में आजीविका का साधन बना डलिया निर्माण कार्य	50
	◆ सूखे में सहारा बनी पलाश : बनाया दोना-पत्तल	52
	◆ बकरी पालन : सूखे में आजीविका का सहारा	54
	◆ सूखे में आजीविका का साधन बनी बागवानी	57
	◆ पर्यावरण संतुलन बनाये रखने हेतु किया वनारोपण	59

8. फसल के तरीके व उपादान आधारित आजीविका

- परम्परागत बीजों का भण्डारण 62
- गृहवाटिका से महिलाओं ने किया सूखे का मुकाबला 64
- बुन्देलखण्ड में सूखा संकट का सामना कर प्रेम सिंह हुए खुशहाल 66
- सूखे में आजीविका का साधन बनी कछार की खेती 71
- सूखे में मुकाबला कर फिर से शुरू की खेती 73

9. संस्थागत व्यवस्था चयन आधारित

- अनाज बैंक की स्थापना 75
- सामूहिक खेती ने दिखाया स्व उन्नति का रास्ता 77
- सामूहिक अनाज बैंक बनाकर महिलाओं ने किया सूखे का मुकाबला 80
- सामूहिक पशुशाला 82
- सूखे से निपटने को तत्पर गाँव 84

10. जल व मिट्टी प्रबन्धन आधारित

- सामुदायिक तालाब पुन: निर्माण 85
- जल संरक्षण से सूखे का मुकाबला 87
- सामूहिक कूप निर्माण से बदली गरीब किसानों की तकदीर 89
- परम्परागत जल संसाधनों का संरक्षण 91
- भूमि समतलीकरण 93
- जल स्तर को ऊँचा करने का स्वयं का प्रयास 96
- सामूहिक प्रयास से बंधी निर्माण 99
- सामुदायिक तालाब पुन: निर्माण एवं नाला सफाई हेतु जन प्रयास 101
- तालाबों, सरोवरों पर से कब्जा हटवाकर किया जल संकट का समाधान 103
- श्रृंखलाबद्ध तालाब पुनर्जीवन से सूखे का मुकाबला 105
- सामुदायिक सहयोग से रोका बरसात का पानी 108
- सूखे से निपटने हेतु बन्धी बांधने का एकल प्रयास 110
- सूखे जालौन में पानी संरक्षण की अनोखी तकनीक 112
- मृदा संरक्षण से खाद्य सुरक्षा 114
- गली प्लग (लूज बोल्डर चेकडैम) एवं मेड़बंदी से परती/बंजर जमीन में फसलें लहलहाई 116

1 पृष्ठ ूमि

देश में अभी भी 60 प्रतिशत खेती वर्षा आधारित होने के कारण उत्तर प्रदेश के कुछ हिस्से की खेती आमतौर पर सूखे से प्रभावित होती है। जलवायु परिवर्तन के कारण मौसम की अनियमितताओं ने इस स्थिति को और विकट ही बनाया है।

भारत में कृषि के सन्दर्भ में यदि बात करें तो कुल कृषि का 60 प्रतिशत अभी भी मानसून आधारित कृषि होती है। मानसून की अनियमितताओं ने इतने बड़े कृषिगत कार्य को बुरी तरह प्रभावित किया है और देश के अधिकांश हिस्से में सूखे की स्थिति पैदा कर रखी है। विशेष तौर पर यदि हम अर्ध शुष्क क्षेत्र को देखें तो असामान्य व कम वर्षा के क्षेत्र के रूप में इनकी पहचान होती है, जहां वार्षिक वर्षा औसतन 700–900 मिमी0 ही मापी गयी है और इसमें भी लगभग 90 प्रतिशत वर्षा वर्ष के कुछ दिनों (15–20) में ही हो जाने से यह क्षेत्र सूखे की चपेट में रहता है। मध्य भारत का बुन्देलखण्ड क्षेत्र, जिसमें उ0प्र0 के 7 व मध्यप्रदेश के 6 जिले समाहित हैं, ऐसा ही एक अर्ध शुष्क क्षेत्र है।

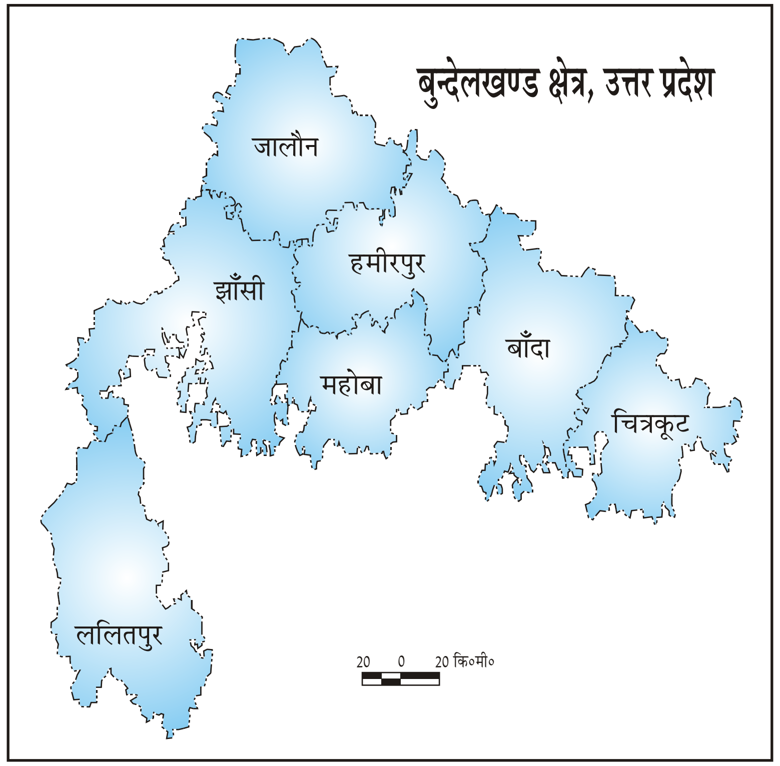

उ0प्र0 के विशेष सन्दर्भ में हम बात करें तो बुन्देलखण्ड के 7 जनपदों के अलावा विन्ध्य क्षेत्र के जनपद सोनभद्र, इलाहाबाद व मिर्जापुर के कुछ क्षेत्रों की स्थिति भी कमो–बेश ऐसी ही है। विगत एक दशक में इन क्षेत्रों में सूखे की स्थितियां बद से बदतर होती गयी हैं। वातावरण व मौसम में हो रहे बदलाव का प्रभाव इस क्षेत्र में व्यापक रूप में देखा जा सकता है। पिछले एक दशक में लगातार सूखे की स्थिति इस क्षेत्र में बनी रही है। बावजूद इसके कि यहां औसतन वार्षिक वर्षा 850–1044 मिमी0 है, यह क्षेत्र भयंकर सूखाग्रस्त रहता है।

प्रमुख तथ्य

भौगोलिक क्षेत्रफल	29418 वर्ग किमी०
कुल जनसंख्या	82.33 लाख
परिक्षेत्र	2
जनपद	7
तहसील	26
विकास खण्ड	47
पंचायत	2669
ग्राम	4551
वन ग्राम	145
ग्रामीण जनसंख्या	77 प्रतिशत
कुल कामगार	39.39 प्रतिशत
किसान व कृषि मजदूर	75 प्रतिशत
औसत वर्षा	901 मिमी०

जनपदवार क्षेत्रफल व जनसंख्या

परिक्षेत्र	जनपद	क्षेत्रफल (वर्ग किमी०)	जनसंख्या (लाख में)				कुल
			ग्रामीण		शहरी		
			संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	
झांसी	जालौन	4565	11.14	76.62	3.4	23.38	14.54
	झांसी	5024	9.89	56.71	7.55	43.29	17.44
	ललितपुर	5039	8.35	85.47	1.42	14.53	9.77
चित्रकूट	बांदा	4460	12.57	83.74	2.44	16.26	15.01
	चित्रकूट	3164	7.25	90.51	0.76	9.49	8.01
	हमीरपुर	4282	8.2	82.58	1.73	17.42	9.93
	महोबा	2884	6.03	79.55	1.55	20.45	7.585
कुल		**29418**	**63.43**	**77.09**	**18.85**	**22.91**	**82.28**

आजीविका के प्रमुख स्रोत कृषि पर मौसम परिवर्तन का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ने से किसानों के समक्ष भुखमरी की स्थिति उत्पन्न हो रही है। बुन्देलखण्ड में इन स्थितियों के चलते किसान के पास पलायन के अतिरिक्त दूसरा रास्ता नहीं बच रहा है।

कृषि कार्य ही इस क्षेत्र की बहुतायत आबादी (3/4) की आजीविका का प्रमुख स्रोत है और यह आबादी सीधे तौर पर खेती के ऊपर ही निर्भर है। असामान्य वर्षा ने इस क्षेत्र में सूखा की स्थिति को और अधिक नाजुक बना दिया है। कम समय में भारी वर्षा और मानसून के पश्चात् वर्षा का न होना इस क्षेत्र की विशेषता बन गयी है। रबी इस क्षेत्र की प्रमुख फसली मौसम है और खरीफ में लगभग कुल कृषिगत भूमि का 75 प्रतिशत बोया नहीं जाता है। यदि असिंचित क्षेत्र की बात की जाये तो यहां सिंचित क्षेत्रफल राज्य के सिंचित क्षेत्रफल (लगभग 75 प्रतिशत) से कम है। जनपदवार इसे बखूबी समझा जा सकता है –

क्रमांक	जनपद	कुल प्रतिवेदन फसल क्षेत्र में सिंचित क्षेत्र (प्रतिशत में)
1.	जालौन	43.78
2.	झांसी	47.94
3.	ललितपुर	54.49
4.	हमीरपुर	31.63
5.	महोबा	39.36
6.	बांदा	41.19
7.	चित्रकूट	27.65

क्षेत्र में कुल शुद्ध बोया गया क्षेत्रफल 19.67 लाख हेक्टेयर (2006–07) है, जिसमें सिर्फ 25 प्रतिशत क्षेत्र ऐसा है, जिसमें दोनों फसल ली जाती है। इन स्थितियों पर यदि गौर करें तो स्पष्ट है कि पूर्ण रूप से मानसून पर आधारित कृषि होने और मानसून की अनियमितता ने क्षेत्र में कृषि को बुरी तरह प्रभावित किया है, जिसका सीधा असर यहां की बहुतायत आबादी के ऊपर पड़ता है। लिहाजा भुखमरी, पलायन, शोषण इत्यादि समस्याओं से ग्रसित यह क्षेत्र बदलते मौसम के परिवेश में और भी अधिक नाजुकता की स्थिति में जाता दिखाई पड़ रहा है।

उपरोक्त के परिप्रेक्ष्य में कुछ प्रमुख समस्याएं हैं, जो स्थितियों को विषम बनाती हैं–

- लगातार सूखे की स्थिति बने रहना
- जलाशयों, कुंओं, तालाबों का सूख जाना
- मानसून की अनिश्चितता विशेष रूप से रबी मौसम में बारिश का न होना
- भूगर्भ जल स्तर का घटते जाना
- प्राकृतिक संसाधनों का दोहन

Photo Source : secr.carleton.edu

2 मैनुअल की आवश्यकता व उद्देश्य

समस्याएं तो विकट हैं और नुकसान भी बड़े पैमाने पर हो रहा है। इन स्थितियों से निपटने हेतु स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप तकनीक विकसित की गयी है। जिनका प्रसार एक सीमित क्षेत्र तक ही होता है। इसे बड़े पैमाने पर प्रसारित करने की आवश्यकता के मद्देनजर यह संकलन है।

मौसम बदलाव से उत्पन्न समस्याओं के चलते कृषि, कृषि पद्धति, जैव विविधता, स्वास्थ्य व जीवन–यापन पर प्रतिकूल प्रभाव स्पष्टतः दिखाई पड़ रहे हैं। उत्पादकता और जान–माल की क्षति लगातार बढ़ रही है। इन स्थितियों से निपटने की दिशा में सरकारी विकास संस्थाओं द्वारा भी प्रयास किये जा रहे हैं, परन्तु सामान्यतः यह प्रयास कुछ राहत पैकेज आधारित व अल्पकालीन होते हैं। लिहाजा इन अल्पकालिक समाधान की प्रक्रियाओं के कारण समुदाय की समस्याओं का कोई दीर्घकालिक हल नहीं हो पाया है और न ही इन प्रतिकूल परिस्थितियों से निपटने में कोई सकारात्मक प्रभाव ही दिखा है। वर्तमान में भी भारत के अधिकांश विकास कार्यक्रमों और योजनाओं की क्रियान्वयन रणनीतियों में मौसम के बदलते मिजाज और अनिश्चितता के आधार पर कोई ठोस रणनीति का समावेश नहीं है और इसीलिए समुदाय की नाजुकता और बढ़ी है।

अब यदि हम समुदाय की बात करें तो यह भी देखने को मिला है कि सदियों से स्थानीय निवासियों द्वारा सूखा की स्थितियों से निपटने के लिए उनके पास अपने स्वयं के ज्ञान कौशल और तकनीकें विद्यमान हैं, जो उनके जीवन–यापन को सुदृढ़ करने में अहम् भूमिका निभाती है। बिना किसी बाहरी निर्भरता के स्थानीय लोगों ने पारम्परिक रूप से आपदाओं से निपटने के लिए अपने स्तर पर प्रयास किये हैं जो स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप होते हैं और उनके द्वारा विकसित तकनीकों व विधियों में आवश्यकतानुसार वैज्ञानिकता का भी समावेश होता है।

Photo Source : t0.gestatic.com

सूखे की स्थितियों से निपटने अथवा उसके प्रभाव को कम करने में स्थानीय समुदाय की अनुकूलन क्षमता अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वास्तविकता यह है कि स्थानीय स्तर पर विकसित पारम्परिक तकनीकों के अपनाए जाने से लोगों की अनुकूलन क्षमता में वृद्धि होती है और वे जोखिम को कुछ हद तक कम करने में सक्षम हो पाते हैं, परन्तु ऐसी पारम्परिक विधियों व तकनीकों की जानकारी का प्रयोग काफी हद तक स्थानीय क्षेत्र तक ही सीमित रह जाता है और इसका लाभ अन्य लोग नहीं ले पाते।

सूखा के क्षेत्रों में निर्धनतम लोगों के विकास हेतु कार्य कर रही स्वैच्छिक संस्थाओं ने यह प्रयास किया है कि स्थानीय स्तर पर ऐसी पारम्परिक व अपनायी गयी तकनीकों व विधियों का एक संकलन तैयार किया जाये और इस ज्ञान की साझेदारी हेतु प्रयास किये जायें। यह प्रयास समुदाय के निर्धन लोगों की अनुकूलन क्षमता बढ़ाने में सहायक होगा, जिससे वे सूखा जैसी आपदाओं से निपटने में बेहतर ढंग से सक्षम हो सकेंगे।

इन तकनीकों व विधियों को लिखित रूप से संकलित कर, प्रस्तुत मैनुअल के रूप में तैयार किया गया है।

3 जलवायु परिवर्तन

विश्व स्तर पर चर्चा का केन्द्र बिन्दु जलवायु परिवर्तन स्थानीय स्तर पर भी चिन्तनीय है, फिर भी हमारी प्रकृति से छेड़-छाड़ जारी है, जो हमारे अस्तित्व के लिए खतरा है।

वर्तमान परिदृश्य में मौसम में हो रहे त्वरित बदलाव को लेकर वैश्विक स्तर पर बहस चल रही है। विगत दिनों इस ज्वलन्त समस्या पर कोपेनहेगन में सम्पूर्ण विश्व समुदाय एकत्रित होकर इस समस्या पर चिन्तन कर रहा था। मौसम व तापमान में हो रहे बदलाव के फलस्वरूप वैश्विक मौसम में आमूल चूल परिवर्तन के साथ–साथ स्थानीय परिस्थितियों व पारिस्थितिकी में भी व्यापक स्तर पर बदलाव देखने को मिल रहा है। पृथ्वी की जलवायु हमेशा से परिवर्तनशील रही है इसलिए जलवायु में हो रहा परिवर्तन कोई नया नहीं है क्योंकि प्राकृतिक रूप में इसमें हो रहे बदलाव में एक लम्बा समय लगता है और प्रकृति उससे सामंजस्य बनाते हुए कार्य करती है। इसलिए उसके प्रभाव को महसूस नहीं किया जाता है, परन्तु विगत दो दशकों में इन बदलावों में तीव्रता व असामान्यता देखी जा रही है नतीजतन उसके प्रभाव स्पष्ट रूप से देखे जा रहे हैं। स्वाभाविक रूप से यह स्थिति मानवीय कार्यों से उत्पन्न हुई है, विकास की अन्धा–धुन्ध दौड़ में विगत 150 वर्षों में मनुष्य ने जो हठधर्मिता अपनायी है, उसके परिणाम अब उसे खुद भुगतने पड़ रहे हैं। पृथ्वी का तापमान तेजी से बढ़ रहा है ग्लेशियर पिघल रहे हैं और विभिन्न विसंगतियां जैसे बाढ़, सूखा आदि उत्पन्न हो रही है। यह सब अचानक नहीं बदला है। वैश्विक स्तर पर बढ़ते औद्योगिकीकरण ने वातावरण में CO_2 की मात्रा में बेतहाशा वृद्धि की है। नतीजतन वैश्विक तापमान में उत्तरोत्तर वृद्धि देखी जा रही है। वैज्ञानिकों की मानें तो पिछले एक सदी में पृथ्वी के औसत तापमान में लगभग 0.74 डिग्री सेन्टीग्रेट की वृद्धि हुई है। यह जानते हुए भी कि हम प्रकृति का विकल्प निर्मित नहीं कर सकते, हमारी प्रकृति से छेड़छाड़ जारी है। परिणामतः विश्व की भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों में दिन–प्रतिदिन परिवर्तन हो रहा है, जो एक बड़ी चिन्ता का विषय है।

सही मायने में 1850 की औद्योगिक क्रान्ति ने समूचे जलवायु को परिवर्तित करने में अपनी अहम् भूमिका निभायी है। उस दौरान जिस तरह से औद्योगिकीकरण को बढ़ावा मिला और हमने प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन करना शुरू किया, उससे प्रकृति पर दो तरफा मार पड़ी। बड़े पैमाने पर कटान हुआ और कम्पनियों का धुआं वायुमण्डल में व अन्य अवशिष्ट नदियों में मिलता गया। नतीजतन वायु और जल दोनों प्रदूषित हुए, जिसका सीधा असर लगातार जलवायु में देखने को मिल रहा है। औद्योगिक क्रान्ति के दौरान ही विकास की दौड़ में अन्य गतिविधियों के कारण ग्रीन हाउस गैसों में बेतहाशा वृद्धि हुई। लिहाजा आज हम वैश्विक तापमान वृद्धि को लेकर चिन्तित हैं जो समूचे वायुमण्डल की स्थिति को परिवर्तित कर रहा है।

कोपेनहेगेन में ग्लोबल क्लाइमेट रिस्क इण्डेक्स 2010 द्वारा जारी सूची में भारत उन प्रथम दस देशों में है, जो जलवायु परिवर्तन से सबसे ज्यादा प्रभावित होंगे। एक अध्ययन के अनुसार 2050 तक ठण्ड के दिनों का तापमान 3.2 डिग्री और गर्मी का 2.2 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ने की संभावना है। लिहाजा मानसून की बारिश कम हो सकती है और ठण्ड में होने वाली वर्षा में भी 15–20 प्रतिशत की कमी हो सकती है। साथ ही साथ वर्षा के समय में भी बदलाव होने की आशंका की जा रही है। नतीजतन इसका असर हमारी कृषि और उसके फलस्वरूप हमारी राष्ट्रीय आय को भी प्रभावित करेगा। वैसे भी भारत की राष्ट्रीय आय में कृषि की भागीदारी निरन्तर उतार की ओर है जैसा कि निम्नांकित आंकड़ों से स्पष्ट है। ऊपर से बदलते मौसम के परिवेश के परिणाम स्वरूप इसके और कम होने की सम्भावना से इंकार नहीं किया जा सकता।

जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

वैश्विक परिदृश्य में उष्ण–कटिबन्धीय क्षेत्रों में आ रहे व्यापक तूफान, चक्रवात अप्रत्याशित वर्षा, वायु की गति में बदलाव, हिमनद का पिघलना, नित नयी बीमारियों (मानव, पशु व वनस्पतियों में) का बढ़ता प्रकोप, तापमान का उतार–चढ़ाव आदि ऐसे संकेत हैं, जो जलवायु परिवर्तन को परिलक्षित करते हैं। परिणाम स्वरूप इसका प्रभाव पारिस्थितिकी व जीव समुदाय पर तथा विश्व की सामाजिक–आर्थिक प्रणालियों पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। मानसून की बढ़ती अनिश्चितता, बंजर होती जमीनें, वीरान होते जंगल, बाढ़ की बढ़ती आवृत्ति व प्रवृत्ति, जल संकट, सूखा समय में वृद्धि, गर्म हवाएं, दरकती धरती, विलुप्त होती प्रजातियां (पशुओं, वनस्पतियों) इत्यादि ऐसी समस्याएं हैं जो स्पष्टतः जलवायु परिवर्तन के प्रभाव के रूप में दिखायी पड़ रही हैं। इन प्रभावों का असर विकासशील राष्ट्रों पर ज्यादा हो रहा है और उनमें भी उस समुदाय पर, जो अतिन्यून संसाधनों के साथ अपना जीवनयापन कर रहा है।

भारत में 80 प्रतिशत खेत एक हेक्टेअर से भी छोटे हैं। ऐसी स्थिति में छोटे व सीमान्त किसानों को जलवायु परिवर्तन के फलस्वरूप बारम्बार आने वाली बाढ़ व सूखे का सामना करना बहुत कठिन होता है। जलवायु परिवर्तन का भीषणतम असर ऐसे ही छोटे व सीमान्त किसानों पर पड़ रहा है जो अपनी आधी से ज्यादा आमदनी अनाज खरीदने, पानी व स्वास्थ्य सम्बन्धी व्यवस्थाओं पर खर्च कर देते हैं। लिहाजा मानसून की अनिश्चितता के चलते कृषि पर निर्भर इस वर्ग की स्थिति बद से बदतर होती जा रही है। ऐसी हालत में वे या तो आत्महत्या करने को मजबूर हैं या फिर वे खेतीबाड़ी से पलायन कर रहे हैं।

वैश्विक स्तर पर हो रहे इन बदलावों का असर क्षेत्रीय स्तर पर भी अलग–अलग रूप में दिखायी पड़ता है। उ0प्र0 के परिप्रेक्ष्य में बात करें तो यहाँ की भौगोलिक स्थिति काफी विविधतापूर्ण है। पूरा प्रदेश 9 कृषि जलवायुगत क्षेत्रों में विभक्त है। स्वाभाविक है कि ऐसी विविधता में जलवायु में होने वाले किसी भी तरह के परिवर्तन का प्रभाव सीधे तौर पर यहां की कृषि पर पड़ता है और आजीविका का मुख्य स्रोत होने के नाते अति न्यून संसाधनों के साथ कृषि कार्यों को करने वाली बहुसंख्य आबादी की आजीविका सीधे तौर पर प्रभावित होती है। एक तरफ जहाँ पूर्वी उ0 प्र0 बाढ़ की विभीषिका व जल–जमाव से ग्रसित है तो वहीं दूसरी तरफ प्रदेश का दक्षिणी हिस्सा विशेषतः बुन्देलखण्ड क्षेत्र विगत 10 वर्षों से सूखे की मार झेल रहा है और गंभीर जलसंकट से जूझ रहा है। सूखे की स्थिति कमोवेश प्रदेश के मध्य व पश्चिम क्षेत्रों में भी देखने को मिल रही है मौसम की अनिश्चितता ने प्रदेश की कृषि को बुरी तरह प्रभावित किया है। लिहाजा यहाँ का कृषक वर्ग जो कुल जनसंख्या का लगभग 70 प्रतिशत है, बुरी तरह प्रभावित हुआ है। इस बहुतायत आबादी की आजीविका का प्रमुख स्रोत आज भी कृषि और उससे जुड़ी गतिविधियों पर ही निर्भर है।

भारत की राष्ट्रीय आय में कृषि का हिस्सा

वर्ष	कृषि की हिस्सेदारी
1950–51	54.40
1960–61	51.3
1965–66	42.7
1968–69	44.4
1970–71	47.5
1980–81	46.0
1990–91	45.1
2000–2001	45.0
2007–08	17.6

स्रोत : आर्थिक समीक्षा : 2007–08

विगत दो दशकों में जिस तरह से जलवायु में परिवर्तन होता दिखाई पड़ रहा है, उससे कृषि पर पड़ रहे प्रभावों के चलते कृषक समाज की आजीविका पर विपरीत प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ रहा है। प्रदेश में बदलती जलवायुविक परिस्थितियों से कहीं पानी की अधिकता तो कहीं उसकी कमी ने कृषक समाज को संकट में ला दिया है। प्रदेश का दक्षिणी हिस्सा, जिसमें मूलतः विन्ध्य व बुन्देलखण्ड का क्षेत्र आता है, में विगत एक दशक में लगातार पानी की कमी ने सूखा की स्थिति पैदा कर दी है और अब वह एक आपदा के रूप में स्पष्ट रूप से हमारे सामने विद्यमान है। सूखे का प्रभाव इन क्षेत्रों में यहां के लोगों के जीवन–यापन पर स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। खेती की बात तो दूर, यहां लोगों व पशुओं के लिए पेयजल का भी संकट पैदा हो गया है।

इन प्रभावों के चलते जो प्रमुख समस्याएं स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो रही हैं वे मुख्यतः निम्न हैं–

- भूगर्भ जल का निरन्तर गिरता स्तर
- जल जमाव
- भारी संख्या में विस्थापन व पलायन (मानव, पशुओं)

सूखा परिश्चमी उत्तर प्रदेश के लिए एक बड़ी आपदा के रूप में है। कई मायनों में तो यह बाढ़ से अधिक भयंकर है, क्योंकि इसका प्रभाव धीरे-धीरे पड़ता है।

- स्थानीय आजीविका के साधनों में कमी
- फसल विविधिता में ह्रास
- उर्वरता का ह्रास
- प्रजातियों (जीव, वनस्पति) का विलुप्त होना या कम होना
- पारम्परिक जल संचय क्षेत्रों का विलुप्त होना
- सामाजिक विघटन
- संसाधनों का ह्रास / नुकसान
- स्वास्थ्य व शिक्षा पर प्रभाव
- महिलाओं पर प्रभाव

उपरोक्त समस्याओं से पूरे प्रदेश का कृषक वर्ग जूझ रहा है। विडम्बना यह है कि इस परिवर्तन के लिए सबसे कम जिम्मेदार होते हुए भी सबसे ज्यादा प्रभावित वही है। बावजूद इसके इस वर्ग ने इन परिस्थितियों से भी निपटने के लिए स्थानीय स्तर पर अपने पारम्परिक ज्ञान कौशल का प्रयोग करते हुए अपने जोखिम को कम करने का भी प्रयास किया है।

जलवायु परिवर्तन के लिए सबसे कम जिम्मेदार होते हुए भी उसका सर्वाधिक प्रभाव किसानों को ही झेलना पड़ रहा है। ऐसे में स्वाभाविक रूप से इस वर्ग को खाद्य सुरक्षा, पेयजल संकट, पलायन, शोषण, आत्महत्या जैसी परिस्थितियों का सामना करना पड़ रहा है।

जलवायु परिवर्तन और सूखा

भारत के सन्दर्भ में यह स्पष्ट है कि यहाँ की कृषि अधिकांशतः मानसून आधारित है। लिहाजा मौसम में हो रहे बदलाव का सीधा प्रभाव मानसून की स्थिति पर पड़ा है और विगत दो दशकों में मानसून की अनिश्चितता ने कृषि को बुरी तरह प्रभावित किया है। स्वाभाविक है कि वर्षा के क्रम व आवृत्ति में बदलाव का एक बड़ा प्रभाव सूखे के रूप में देखा जा सकता है। डिजास्टर मैनेजमेन्ट की रिपोर्ट के आधार पर यह स्पष्ट है कि पूरे देश में लगभग 68 प्रतिशत हिस्सा सूखा क्षेत्र के रूप में जाना जाता है। उ0प्र0 के परिप्रेक्ष्य में बात करें तो प्रदेश का दक्षिणी हिस्सा अर्थात बुन्देलखण्ड का पूरा क्षेत्र व विन्ध्य का कुछ भाग प्रमुख रूप से सूखा क्षेत्र के रूप में जाना जाता है। मानसून की अनियमितता ने इस क्षेत्र में विगत एक दशक में स्थिति को और अधिक भयावह बना दिया है। वायुमण्डल में ग्रीन हाऊस गैसों के तेजी से बढ़ने के कारण तापमान में जो वृद्धि हो रही है उसका प्रभाव कृषिगत क्षेत्रों पर पड़ रहा है। तापमान वृद्धि से वाष्पीकरण की प्रक्रिया तीव्र हो जाती है। परिणामतः मिट्टी में आर्द्रता की कमी सूखे की स्थिति लाती है। अत्यधिक तापमान और तीव्र वाष्पीकरण ने भूगर्भ जल के दोहन को बढ़ाया है जिससे पहले से ही निम्न भूगर्भ जल स्तर वाले इन क्षेत्रों में भूगर्भीय जल का स्तर अब और तेजी से नीचे जा रहा है। गर्म जलवायु भूगर्भीय चक्र के साथ–साथ सतही चक्र अर्थात वर्षा के समय, मात्रा, वाष्पीकरण इत्यादि को अत्यधिक प्रभावित करती है। लिहाजा तीव्र वाष्पीकरण से वातावरण की आर्द्रता में वृद्धि व मिट्टी की आर्द्रता बिल्कुल न होना समूचे जलवायुगत गतिविधियों पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। अगर मिट्टी में आर्द्रता बहुत कम हो अथवा बिल्कुल ही न हो तो ऐसी स्थिति तापमान को और अधिक बढ़ाने में सहायक होती है जो क्षेत्र में लम्बे समय तक सूखा की स्थिति बनाती है। अतः यह स्पष्ट है कि अर्धशुष्क क्षेत्रों में मौसम में हो रहे किसी भी बदलाव का असर सीधे तौर पर क्षेत्र की मिट्टी की आर्द्रता, भूगर्भ जल पुर्नभरण और भूगर्भ जलस्तर को प्रभावित करता है जिसके परिणाम स्वरूप गंभीर सूखा की स्थिति उत्पन्न होती है। भारत के सन्दर्भ में भूगर्भ जल की स्थिति एक गंभीर चर्चा का विषय है जहाँ एक तरफ भूगर्भ–जल घरेलू उपयोग के रूप में लगभग 80 प्रतिशत से ज्यादा ग्रामीण क्षेत्रों में व 50 प्रतिशत के करीब शहरी जनसंख्या के उपयोग में आता है वहीं दूसरी तरफ सिंचाई की कुल आवश्यकता का लगभग 50 प्रतिशत इसी से सिंचित होता है। एक अनुमान के अनुसार भारत के कुल सिंचित उत्पादन का लगभग 70–80 प्रतिशत भूगर्भ जल के द्वारा ही उत्पादित होता है।

उपरोक्त परिस्थितियों पर यदि हम गौर करें तो स्पष्ट है कि वर्तमान परिदृश्य में अर्धशुष्क क्षेत्रों विशेषतः हम बुन्देलखण्ड की स्थिति का आंकलन करें तो स्पष्ट है कि विगत एक दशक में सूखे का जो दंश वहाँ के लोग भुगत रहे हैं वह बहुत कुछ मौसम में हो रहे परिवर्तनों का ही परिणाम है। नतीनजतन खाद्य असुरक्षा, पेयजल संकट, पलायन, शोषण, आत्महत्या जैसी स्थितियाँ वहाँ पर उत्पन्न हो चुकी हैं और धीरे–धीरे पहले से ही वीरान और बीहड़ ये क्षेत्र और अधिक वीरान व बीहड़ में परिवर्तित होते जा रहे हैं।

4 बुन्देलखण्ड की स्थिति

गौरवशाली ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के लिए विख्यात बुन्देलखण्ड प्राकृतिक संसाधनों से भी प्रचुर रहा है परन्तु मानवीय हस्तक्षेपों के कारण सामान्य समस्याएं दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

बुन्देलखण्ड उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश के सीमावर्ती क्षेत्रों से मिल कर बना है, जिसमें उत्तर प्रदेश के सात जनपद समाहित हैं। बुन्देलखण्ड क्षेत्र हमेशा से जल की कमी, जंगल, विविध जानवर, खनिज एवं कुछ अन्य प्राकृतिक संसाधनों के स्थल के रूप में विख्यात रहा है। साथ ही यह क्षेत्र अपने गौरवशाली ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की वजह से भी हमेशा जाना जाता रहा है। भौगोलिक रूप से नदियों के कटान, बंजर, पठार के इलाके और अनुपजाऊ पथरीली भूमि यहाँ की कृषि को काफी दुष्कर बनाती है। सिंचाई के लिए पानी का अभाव और भीषण गर्मी होने के कारण पूरा क्षेत्र कृषि में अत्यन्त पिछड़ा हुआ है। मुख्य रूप से दो नदियों केन व बेतवा इस क्षेत्र से होकर गुजरती हैं, जो आगे चलकर यमुना में मिल जाती हैं। भूमि क्षरण इस क्षेत्र की गंभीर समस्या है, जिसकी वजह से लाखों हेक्टेअर भूमि कृषि के उपयुक्त नहीं है। भूमि क्षरण का प्रमुख कारण तेज हवा, वर्षा और ढलुआ जमीन का होना है। इस क्षेत्र में 60 प्रतिशत से अधिक लोग गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करते हैं। किसानों का एक बड़ा हिस्सा सीमान्त कृषकों का है। लगभग 25 प्रतिशत कृषक ऐसे हैं, जिनके पास 1 से 2 हेक्टेअर के बीच भूमि है। जमीन से ही किसान की पहचान है और उसी से उसकी जीविका तथा उसका अस्तित्व है, परन्तु यह जमीन निरन्तर छोटी होती जा रही है अथवा इसका क्षरण होता जा रहा है या फिर वह परती के रूप में अनुत्पादित होती जा रही है। इस क्षेत्र में भूमि सुधार के कई कार्यक्रम चलाए गये, परन्तु कोई भी कारगर सिद्ध नहीं हुआ। जमीन के पट्टों को लेकर भी यहाँ के किसान काफी प्रभावित रहे हैं। जो जमीन किसानों को दी जानी चाहिए उन पर दबंगों का आधिपत्य है। भू–वितरण की स्थिति भी इस क्षेत्र में चिन्ता का विषय है।

जनपद	कुल समस्त जोत (हजार)	सीमान्त कृषक (1 हे० से कम)	लघु कृषक (1 से 2 हे०)	कृषि मजदूर
जालौन	249	148	47	68
झांसी	246	134	57	50
ललितपुर	178	74	60	21
हमीरपुर	188	90	51	60
महोबा	140	70	33	37
बांदा	247	145	50	85
चित्रकूट	134	83	27	39

स्रोत : सांख्यिकी डायरी उ0प्र0 2006

सामाजिक -आर्थिक तथ्य

- विपरीत भौगोलिक व जलवायु परिस्थिति
- कम साक्षरता दर (महिलाओं का 36%)
- असमान लिंगानुपात (1000 : 866)
- 80% से अधिक जनसंख्या की आजीविका का एक मात्र स्रोत कृषि
- वर्षा आधारित कृषि
- सूखा ग्रस्त क्षेत्र
- पलायन
- आधारभूत जन सेवाओं (शिक्षा, स्वास्थ्य, आपूर्ति, परिवहन इत्यादि) की उपलब्धता पर्याप्त न होना
- अधिकाधिक जनसंख्या अनुसूचित जाति / अन्य पिछड़ा वर्ग
- संसाधनों का असमान वितरण

बुन्देलखण्ड और सूखा

इतिहास के पन्नों में जायें तो पता चलता है कि 19वीं व 20वीं सदी के दौरान कुल 12 सूखा वर्ष देखने को मिले हैं अर्थात् हम कह सकते हैं कि 16–17 वर्ष में एक बार सूखा पड़ा है। सूखा वर्ष की आवृत्ति पहली बार वर्ष 1968 से 1992 के बीच बढ़ी, जब इन वर्षों में तीन बार सूखा पड़ा और वर्तमान में देखें तो विगत 6 वर्षों में (2004–05 के बाद) लगभग

विगत 15 वर्षों में यदि यह कहा जाये कि यहाँ प्रति वर्ष सूखा पड़ा है तो अतिश्योक्ति न होगी। वर्ष 2007 में तो 56 प्रतिशत तक कम होने वाली वर्षा ने कृषि को बदहाल बनाया। सिंचाई के लिए पानी का अभाव और भीषण गर्मी के कारण कृषि एकदम हाशिये पर चली गई है।

लगातार सूखे की स्थिति बनी हुई है। जलवायु परिवर्तन ने विगत 15 वर्षों में जो मौसम में असामान्य बदलाव किये हैं, उसने इस क्षेत्र के लोगों की नाजुकता (Vulnerability) और जोखिम (Risk) को काफी बढ़ाया है। यहां विगत वर्षों में मानसून का देर से आना, जल्दी वापस हो जाना दोनों के बीच लम्बा सूखा अन्तराल, जल संग्रह क्षेत्रों में पानी का न हो पाना, कुँओं का सूख जाना इत्यादि ने यहां की कृषि को पूरी तरफ नष्ट कर दिया। यहां तक कि कुछ वर्षों में तो किसान फसल की बुवाई तक नहीं कर पाये। विगत 3 दशकों में तो यहाँ की स्थिति काफी दयनीय हो गयी है। प्राकृतिक आपदाओं ने इस पूरे क्षेत्र की तस्वीर ही बदल दी है, जिसकी वजह से यहाँ की सामाजिक व आर्थिक स्थिति काफी हद तक बिगड़ चुकी है। इस क्षेत्र के अधिकांश जनपद सूखा से प्रभावित है, जिसका सीधा असर यहाँ की कृषि पर पड़ा है। एक बार पुनः इस वर्ष बुन्देलखण्ड भयंकर रूप से सूखा की मार झेल रहा है। वैसे तो यह क्षेत्र सूखा और सूखा जैसी स्थिति का सामना विगत कई वर्षों से करता आ रहा है परन्तु इस वर्ष यह अपनी भयावह स्थिति में है।

सामान्यतः बुन्देलखण्ड में औसत वर्षा 800–1000 मि०मी० होती रही है, परन्तु विगत पाँच वर्षों का औसत देखा जाय तो इसमें 40–50 प्रतिशत की कमी आयी है अर्थात औसत 450–550 मि०मी० वर्षा ही प्राप्त हुई है, जो कोढ़ में खाज उत्पन्न होने जैसी स्थिति है।

वर्षा क्रम

किसी भी क्षेत्र में सतही जल, भूगर्भ जल अथवा अन्य जल का एक मात्र स्रोत वर्षा ही होता है। बुन्देलखण्ड की औसत मानसूनी वर्षा (1 जून से 30 सितम्बर) 839.97 मिमी0 ही है। जिसमें लगभग 90 प्रतिशत वर्षा जुलाई से सितम्बर के बीच 30 से 35 दिनों में ही हो जाती है।

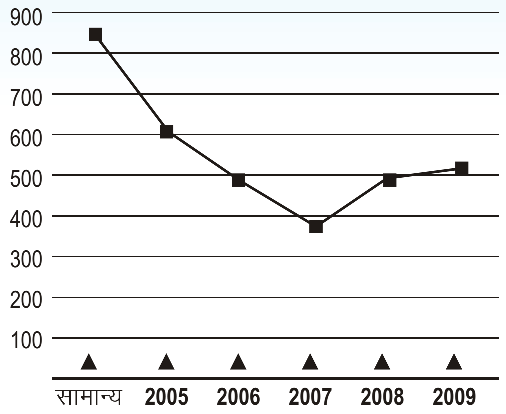

मानसून का देर से आना, कम समय में ज्यादा वर्षा का होना और दो वर्षों के बीच में बारिश का लम्बा अन्तराल इस क्षेत्र में सूखा की स्थितियाँ उत्पन्न करने में सहायक है।

2005 में बुन्देलखण्ड में सामान्य वर्षा से 25 प्रतिशत कम वर्षा हुई जो 2007 में 56 प्रतिशत तक कम हो गयी और इस वर्ष बुन्देलखण्ड को भीषण सूखे की मार झेलनी पड़ी।

जनपदवार वर्षा का कम होता औसत (% में)

जिला	सामान्य वर्षा (मिमी०)	2005	2006	2007	2008	2009
		प्रतिशत विचलन				
जालौन	783.00	-37.16	-62.10	-54.56	-6.06	-51.51
झांसी	843.00	-35.28	- 60.71	-59.70	-2.04	-46.86
ललितपुर	954.00	-4.26	-33.53	-44.27	-11.98	-40.57
हमीरपुर	743.90	-5.28	-35.70	-58.82	-43.75	-24.38
महोबा	743.90	-40.17	-47.07	-57.84	-71.99	-24.38
बांदा	870.60	-33.79	-37.51	-58.20	-72.32	-39.85
चित्रकूट	883.40	-46.31	-36.88	-56.92	-74.81	-57.46
क्षेत्रीय औसत	**839.97**	**-27.52**	**-41.90**	**-55.96**	**-42.15**	**-38.92**

धीरे–धीरे कृषि का उत्पादन घटता गया, रोजगार की सम्भावना क्षीण होती गयी और पलायन की प्रवृत्ति दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। आजीविका के साधन सीमित हो जाने के कारण लोग अत्यन्त गरीब एवं वंचित होते जा रहे हैं और कमोबेश शोषण के शिकार हो रहे हैं। आर्थिक तंगी के चलते एवं सामाजिक शोषण व उपेक्षा से त्रस्त इस क्षेत्र के किसान आत्महत्या करने तक को मजबूर हैं। इस क्षेत्र में खाद्य सुरक्षा सही मायनों में 6 से 8 महीने भी बमुश्किल हो पा रही है। सिंचाई के लिए पानी का अभाव और भीषण गर्मी होने के कारण पूरा क्षेत्र कृषि के मामले में काफी पिछड़ा हुआ है।

जनपदवार शुद्ध सिंचित क्षेत्रफल एवं स्रोतवार सिंचित क्षेत्र (हेक्टेयर)

जनपद	शुद्ध सिंचित क्षेत्र	नहर	राजकीय नलकूप	निजी नलकूप	अन्य साधन
जालौन	187256	142239	10828	20473	13716
झांसी	221018	98921	2504	5003	114590
ललितपुर	208639	69543	0	22805	116291
हमीरपुर	108311	44949	13554	22810	26998
महोबा	113542	41044	0	1904	70594
बांदा	119537	75091	10604	19923	13919

स्रोत : सांख्यिकी डायरी उ0प्र0 2006

उपरोक्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि इस क्षेत्र की कृषि मुख्य रूप से नहरों की सिंचाई पर निर्भर है परन्तु विगत कई वर्षों से इन नहरों से निकले रजवाहों में पानी की एक बूंद भी नहीं आयी।

वर्षा की अत्यन्त कमी के कारण इस क्षेत्र में खाद्य सुरक्षा सही मायनों में 6 से 8 महीने भी बमुश्किल मिल पा रही है। सिंचाई के विकल्प 'नहर' भी सूखे पड़े हैं।

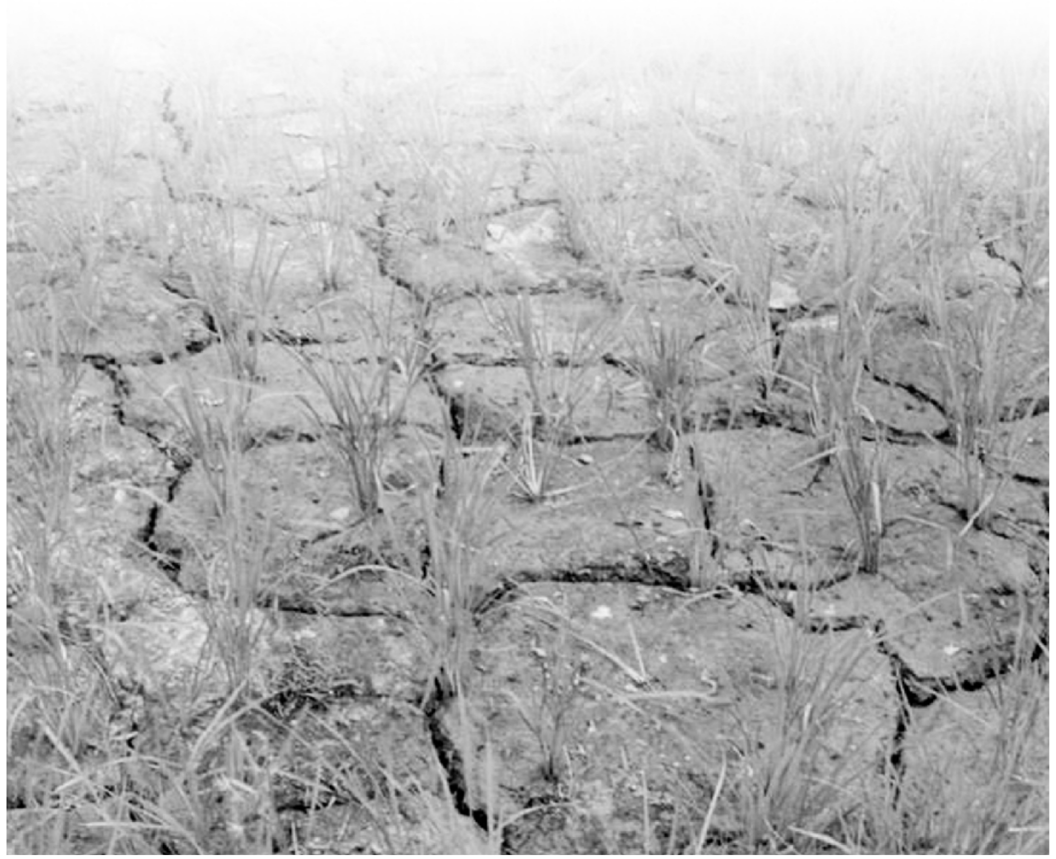

5 प्रक्रिया

प्रकृति की व्यवस्थाओं के अनुरूप मानव ने अपना विकास किया, परन्तु जब विकास की गति बढ़ी, तो उसके दुष्परिणाम भी सामने आने लगे। कुछ ऐसे भी लोग थे, जिन्होंने परम्परागत ज्ञान व तकनीकों का सहारा लेकर अपना अस्तित्व बचाये रखा है।

प्रकृति की व्यवस्थाओं के अनुरूप बसाहट भी थी। एक तरफ नदियों के किनारे जहां घनी बस्तियां बसीं, वहीं पर जंगल के किनारे भी बसने की लोगों की कम उत्सुकता नहीं थी, क्योंकि यहां पर भी लोगों के सामने आजीविका के अन्यान्य विकल्प थे। प्रकृतिगत व्यवस्थाएं थीं, लोगों का प्रकृति के साथ सामंजस्य था और नतीजतन आजीविका के बहुत से विकल्प जंगलों, पहाड़ों, तालाबों से भी सम्बद्ध थे। परन्तु कालान्तर में प्रकृति के साथ मानवीय हस्तक्षेपों एवं छेड़–छाड़ से जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभाव सामने आने लगे। जब–जब मनुष्य विकास के अंधानुकरण में शामिल हुआ, अपने परम्परागत ज्ञान एवं तकनीकों से विमुख हुआ, तब – तब उसके सामने प्रकृतिगत चुनौतियां सामने खड़ी हुईं, आज उसके सामने सबसे बड़ी समस्या अपने अस्तित्व को ही बचाने की चुनौती के रूप में है। कभी मानव बस्तियों के लिए वरदान के तौर पर स्थापित पेड़, पहाड़ उसके विनाश का कारण बनने लगे। परिस्थितियां लोगों को पलायित होने को विवश कर रही हैं या फिर उन्हें अपनी आजीविका के लिए अन्य स्रोतों पर निर्भर करना पड़ रहा है। ऐसी स्थितियों में जबकि लोगों को उपरोक्त समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है, उनके पास अनेक ऐसी परम्परागत जानकारियां, तकनीक हैं, जिन्हें वे फिर से अपनाकर अपनी आजीविका को बहुत हद तक बचा सकते हैं। ये परम्परागत ज्ञान समय की कसौटी पर खरे भी उतरे हैं। प्रस्तुत अध्याय में वर्णित किया गया है कि पश्चिमी उत्तर प्रदेश के सूखाग्रस्त क्षेत्रों में लोग किस प्रकार अपनी कृषि आजीविका को बचाये रखने व संसाधनो को अपनी जीविका के लिए किस प्रकार व्यवहृत कर रहे हैं तथा अपनी खेती/फसल प्रणाली में किस प्रकार ताल–मेल बिठा पा रहे हैं।

इन गतिविधियों को संकलित करने से पहले सम्बन्धित क्षेत्र के किसानों एवं स्वैच्छिक जगत से जुड़े लोगों के साथ अभिमुखीकरण कार्यशाला आयोजित की गयी, जिसमें गतिविधियों की पहचान एवं चिन्हांकन हुआ। तत्पश्चात् अनेक बैठकों में किसानों के अनुभवों को देखा व सुना गया।

मुख्यतः निम्न विषयों पर गतिविधियां चयन की गयीं, जो आगे विस्तारित हैं –

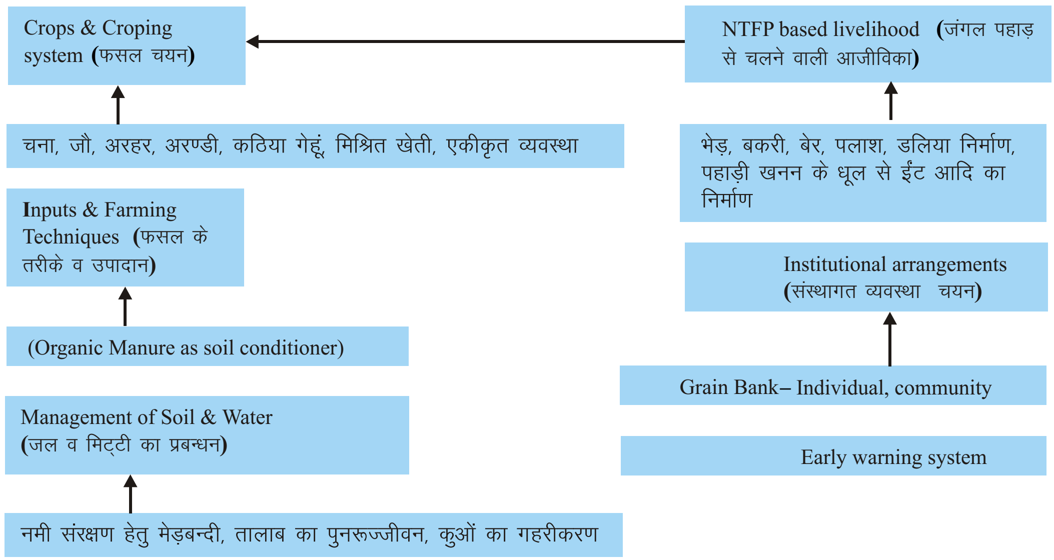

6 फसल चयन आधारित गतिविधियाँ

टपक सिंचाई विधि से टमाटर की खेती

स्वास्थ्य व स्वादवर्धक टमाटर एक नगदी फसल भी है। टमाटर के देशी बीजों के अन्दर सहन क्षमता अधिक होने के कारण टपक विधि से सिंचाई कर उगाये गये टमाटर लोगों को विपरीत परिस्थितियों में नुकसान से बचा सकते हैं।

परिचय

खाने को स्वादवर्धक बनाने वाला टमाटर औषधीय दृष्टि से भी उपयोगी है। विटामिन 'सी' का अच्छा स्रोत होने के कारण टमाटर कई रोगों में फायदेमन्द सिद्ध होता है। इसकी मांग एवं खपत छोटे, बड़े शहर, देहात सभी जगहों पर होती है। एवं इसका व्यवसायिक रूप अर्थात् सॉस, जैम आदि बनाकर अच्छी आय भी कमायी जा सकती है। इस प्रकार टमाटर शुद्ध रूप से नकदी फसल है, जो विपरीत परिस्थितियों के कारण लोगों के हो रहे नुकसान को कम करने में सहायक सिद्ध होता है।

बुन्देलखण्ड का सूखा सर्वविदित है। ऐसे में जब लोगों के लिए खेती करना दुष्कर सिद्ध हो रहा है। अगर टमाटर की खेती देशी बीजों के साथ की जाये, तो निश्चित तौर पर लाभ होगा। इसका मुख्य कारण यह है कि हाइब्रिड बीजों की अपेक्षा देशी बीजों के अन्दर विपरीत परिस्थितियों को सहने की क्षमता अधिक होती है। अतः वे सूखे की स्थिति में भी अपनी उपज क्षमता बनाये रखती हैं। इसके साथ ही इनका स्वाद एवं पौष्टिकता भी हाइब्रिड की तुलना में अधिक होने के कारण किसान को अधिक लाभ पहुंचाती हैं। इसके साथ ही यदि खेती की परिस्थितियों का ध्यान रखते हुए समय नियोजन कर साल में इसकी तीन फसल लें तो यह लाभ निश्चित हो जाता है।

प्रक्रिया

खेत की तैयारी

टमाटर की खेती के लिए सर्वप्रथम पहली बरसात होने के बाद खेत की एक जुताई कर छोड़ देते हैं। तत्पश्चात् पौध रोपण हेतु नर्सरी तैयार करते हैं।

बीज की प्रजाति एवं मात्रा

टमाटर की देशी प्रजाति का प्रयोग करते हैं। एक एकड़ खेत में टमाटर की खेती करने के लिए 50 ग्राम बीज की आवश्यकता पड़ती है।

नर्सरी तैयार करना

जुलाई माह में पौध तैयार करते हैं। एक एकड़ खेत में टमाटर के पौध रोपने के लिए माह जुलाई में 2 डिसमिल परिक्षेत्र में टमाटर के बीजों की नर्सरी डाल देते हैं। इसके लिए खेत के एक भाग में क्यारी बनाकर गोबर की खाद डालते हैं तथा दो इंच ऊंची मिट्टी तैयार कर देशी बीज की बुवाई करते हैं। पुनः पौध तैयार होने पर खेत में इसकी रोपाई करते हैं।

रोपाई का समय व विधि

टमाटर की देशी प्रजाति के बीज से वर्ष में दो बार अगस्त व नवम्बर के अन्त में रोपाई कर टमाटर की फसल ले सकते हैं। नर्सरी में डाले गये बीज से उगे पौधों की लम्बाई 4–6 इंच की हो जाने पर अर्थात् 21–22 दिन के पौध, जिनमें 4–6 पत्ते आ जायें तब इसकी रोपाई खेत में पंक्तिवार की जाती है। पौध से पौध की दूरी 15 सेमी0 रखते हैं।

खाद

एक एकड़ हेतु गोबर की खाद 2 ट्राली एवं वर्मी कम्पोस्ट 50 किग्रा0 की आवश्यकता होती है।

निराई–गुड़ाई

खेत में खर–पतवार उगने से पौधों की वृद्धि पर असर पड़ता है। इसलिए समय–समय पर खेत की निराई करते रहते हैं, जिससे पौधों को बढ़ने का पूरा समय व जगह मिले। पूरी फसल अवधि में खेत की दो बार गुड़ाई करते हैं।

सिंचाई

टमाटर की खेती में नियमित रूप से नमी की आवश्यकता होती है। अतः बूंद विधि से हफ्ते – 10 दिन पर सिंचाई करते रहना चाहिए। यह ध्यान रखना चाहिए कि खेत में बहुत अधिक पानी न लगे, वरना पौधों में उकठा रोग लग जाता है।

तैयार होने की अवधि एवं तुड़ाई

अगस्त में रोपे गये पौधों में अक्टूबर में फल आने लगता है। पौधों में फल तीन बार आते हैं। पहली बार से अधिक दूसरी बार उत्पादन मिलता है, जबकि तीसरी बार में सबसे कम उत्पादन मिलता है। तीन–चार दिनों पर खेत में जाकर मांग के आधार पर अधकच्चे अथवा पके फलों की तुड़ाई करते हैं। दूसरी बार के लिए पुनः पौध तैयार कर नवम्बर के अन्तिम में पौध रोपते हैं, जिसका उत्पादन फरवरी के प्रथम सप्ताह में आना प्रारम्भ हो जाता है। इस प्रकार देशी टमाटर की खेती का अधिक लाभ लिया जा सकता है।

बाजार उपलब्धता

वैसे तो टमाटर हर घर में रोजाना खाया जाता है। अतः बिकने की समस्या नहीं रहती है। लेकिन इससे अच्छा मुनाफा बाजार में ही ले जाकर पाया जा सकता है। टमाटर के लिए मुख्य रूप से उरई एवं कानपुर का बाजार है, जहां के व्यापारी आकर गांव से ही खरीद कर ले जाते हैं।

लागत–लाभ विवरण– एक एकड़ हेतु

लागत विवरण	मूल्य	उत्पादन	मूल्य	शुद्ध लाभ
खेत की तैयारी	रु० 1500.00	60 कुन्तल दर 600.00 प्रति कुन्तल	रु० 36000.00	रु० 36000.00 – 7300.00 = 28700.00
बीज 50 ग्राम	रु० 300.00			
सिंचाई	रु० 1500.00			
खाद एवं दवाई	रु० 1500.00			
अन्य खर्च	रु० 1500.00			
योग	रु० 7300.00		रु० 36000.00	

टमाटर के खेत में नमी बनाये रखना जरूरी होता है और यह किसान को बेहतर लाभ भी दिलाता है। यही कारण है कि सूखा ग्रस्त क्षेत्र में लोग इसको प्राथमिकता दे रहे हैं।

सफल अनुभव

कक्षा 5 तक की पढ़ाई किये 60 वर्षीय श्री धनसिंह कुशवाहा सूखा प्रभावित ग्राम बाबई जनपद जालौन के विकास खण्ड महेवा के रहने वाले हैं। इनके पास खेती योग्य जमीन 1.6 एकड़ और परिवार में सदस्यों की संख्या 8 है। इनकी आजीविका का मुख्य आधार खेती है। साथ ही मजदूरी भी करते हैं। छोटी जोत होने के कारण मुख्यतः सब्ज़ियों की खेती को प्रमुखता देने वाले श्री धनसिंह टमाटर की खेती तो पहले से ही करते आ रहे हैं, परन्तु 2004 से लेकर 2007 तक लगातार पड़ने वाले सूखा के कारण इनकी खेती बहुत प्रभावित हुई। हालांकि सूखे में टमाटर की उपज बहुत नहीं प्रभावित हुई पर अन्य फसलों के न होने के कारण जीवन–यापन करने में उसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा और इनको परेशानी होने लगी। तब इन्होंने वर्ष 2008 में 2 एकड़ जमीन लीज पर लेकर उसमें टमाटर और मिर्च की मिश्रित खेती प्रारम्भ की। शुरूआत में तो मेहनत करनी पड़ी, परन्तु जब लगाई गयी लागत लगभग रू0 17000.00 के बदले इन्हें रू0 55000.00 का लाभ मिला, तो इनकी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। इस तरह की खेती ये पिछले 3 वर्षों से कर रहे हैं और लाभ के रूप में प्राप्त रकम से साढ़े चार एकड़ जमीन खरीद ली एवं इनके रहन–सहन का स्तर भी काफी सुधर गया है।

सूखे के दौरान जौ की खेती कर लिया लाभ

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में सिंचाई साधनों की अनुपलब्धता एवं सरकारी उदासीनता ने किसानों को खेती से विमुख बनाया क्योंकि खेती से उनका जीवन-यापन बमुश्किल ही होता था, ऐसे में सूखे में भी होने वाली जौ की खेती लोगों के लिए सहारा बनी।

परिचय

सूखा प्रभावित बुन्देलखण्ड के जनपद महोबा का विकासखण्ड कबरई मुख्यतः उबड़–खाबड़ एवं ऊसर भूमि वाला क्षेत्र है, जहां लोगों की आजीविका का मुख्य साधन खेती होने के बावजूद सिंचाई साधनो की अनुपलब्धता व सरकारी उदासीनता के कारण वे खेती से अपना जीवन–यापन करने में सक्षम नहीं हो पाते हैं। इसी विकास खण्ड का एक गांव है– बम्हौर गुसाईं। इस गांव के भौगोलिक परिस्थिति की बात करें तो गांव के पास ही राहुलदेव वर्मन तालाब स्थित है एवं गांव से उत्तर दिशा में गांव से सटे एक नाला निकला हुआ है, जिसके कारण जमीन काफी उबड़–खाबड़ व ढालूदार है। कहीं–कहीं तो ढलान 1 मीटर से 1.25 मीटर तक है। ऐसी स्थिति में यहां पर पानी होने के बाद भी उसका लाभ नहीं मिलता।

विगत 6–7 वर्षों से अनेकानेक प्राकृतिक एवं मानवीय कारणों के चलते सूखा और फिर सुखाड़ की स्थिति ने इस क्षेत्र को और बदहाल किया। गांव में 25 निजी कुआँ बोर हैं, जो पूर्णतया सूख चुके हैं। बिडम्बना ही है कि सरकार द्वारा संरक्षित तालाब राहुलदेव बर्मन सरकारी उदासीनता के कारण पूरे तौर पर सूख चुका है, जिससे गांव के हैण्डपम्पों, कुओं का जलस्तर और भी नीचे जा चुका है।

पिछले 4 वर्षों से लगातार सूखा पड़ने के कारण कृषिगत भूमि परती पड़ी हुई है। नाले व पुरानी टूटी–फूटी बन्धियों पर लगे पेड़–पौधे पानी न मिलने के कारण सूख चुके हैं। चारा की अनुपलब्धता के कारण पालतू व दुधारू पशुओं को लोगों ने खुला छोड़ दिया है। खाद्यान्न संकट का असर महिलाओं, बच्चों सभी के ऊपर पड़ने लगा है। ऐसे समय में रेलवे विभाग द्वारा जनवरी महीने में रेलवे लाइन बिछाने के लिए 30x30x20 मीटर के गढ्ढे खोदे गये, जिसमें से पानी निकल आया। इससे उत्साहित होकर लोगों ने आपदा स्थिति से निपटने हेतु ऐसी खेती को तलाशा जो कम पानी और असमय बुवाई के बाद भी हो जाये और इसी परिप्रेक्ष्य में जौ की खेती प्रारम्भ की।

प्रक्रिया

खेत की तैयारी

जनवरी महीने में खेत की एक सिंचाई करने के बाद दो जुताई ट्रैक्टर से की गयी।

बीज की प्रजाति

जौ की देशी प्रजाति का प्रयोग करते हैं।

बीज की मात्रा

एक एकड़ खेत हेतु 40 किग्रा0 बीज की आवश्यकता पड़ती है।

बुआई का समय व विधि

सामान्यतः यह रबी की फसल होने के कारण इसका समय भी नवम्बर मध्य से दिसम्बर प्रथम सप्ताह तक ही होता है, परन्तु जनवरी माह में भी इसकी बुवाई करने पर उपज पर कोई विशेष असर नहीं पड़ता है। इसकी बुवाई छिटकवा विधि से करते हैं।

सिंचाई

यह एक ऐसी खेती है, जो सिंचाई की सुविधा न हो तो भी हो जाती है। सिर्फ बुवाई से पहले एक बार पलेवा होना जरूरी है।

खर-पतवार नियंत्रण

देर से बुवाई का एक फायदा यह भी हुआ कि इसमें कोई खर–पतवार नही लगा और न ही उनके नियन्त्रण पर कोई अतिरिक्त खर्च करना पड़ा।

कटाई का समय

जौ की फसल अवधि 110 दिन की होती है। अप्रैल के अन्तिम सप्ताह से इसकी कटाई शुरू हो जाती है।

उपज

एक एकड़ में लगभग 6 कुन्तल उपज होती है।

लागत-लाभ विवरण (एक एकड़ हेतु)

लागत विवरण	मात्रा/दर	मूल्य	उत्पादन	मूल्य	शुद्ध लाभ
जुताई	दो बार दर रु० 300.00	रु० 600.00	अनाज 6 कु० दर 1000.00 प्रति कु०	रु० 6000.00	रु० 7400.00 – 2700.00 = 4700.00
पलेवा		रु० 750.00	भूसा 7 कु० दर 200.00 प्रति कुन्तल	रु० 1400.00	
बुवाई		रु० 300.00			
कटाई		रु० 750.00			
थ्रेसिंग		रु० 300.00			
योग		**रु० 2700.00**		**रु० 7400.00**	**रु० 4700.00**

आमतौर से नवम्बर मध्य में बोई जाने वाली जौ की फसल की बुवाई यदि जनवरी में भी की जाये तो यह अच्छा प्रतिफल देती है। इसके साथ ही इससे पर्याप्त भूसा भी मिलता है, जो पशुओं के काम आता है।

सफल अनुभव

ग्राम बम्हौरी गुसाई के रहने वाले 35 वर्षीय श्री श्रीकृष्ण ने बताया कि हमारे पास कुल 1.6 एकड़ खेती योग्य जमीन होने के बावजूद सूखा की विकट स्थितियों ने परिवार को भुखमरी के कगार पर ला खड़ा किया था। ऐसे में जनवरी में जब रेलवे लाइन बिछाने के लिए किये गये गढ्ढे से पानी निकला तो आशा की एक किरण दिखी और हमने उसी को अपने खेत में सिंचाई के लिए प्रयोग करने का मन बनाया, परन्तु एक बड़ी दिक्कत थी कि न तो रबी का सीजन था और न ही खरीफ का, फिर क्या बुवाई की जाये, जिससे खाने का संकट हल हो सके। तब हमने गांव के बुजुर्ग किसान श्री मुन्नीलाल से बात किया। उन्होंने बताया कि वर्ष 1979–80 में भी सूखा पड़ा था। उस समय लगभग इसी समय में बारिश हुई थी और हमने अपने खेतों में जौ की बुवाई की, जिससे हमें उपज मिली थी। उनकी बात का विश्वास करते हुए हमने रेलवे के गढ्ढे से दो पम्पसेट रखकर अपने 1.6 एकड़ खेत में पलेवा कर दिया। तत्पश्चात् ट्रैक्टर से दो जुताई करने के बाद बुवाई की। बीघा पीछे हमने 20 किग्रा0 बीज का प्रयोग किया। इस पूरी प्रक्रिया में हमने यह भी देखा कि आमतौर पर तो जौ में खर–पतवार दिखते हैं, परन्तु देर से बुवाई होने के कारण उनका भी असर नहीं पड़ा और हमारी खेती अच्छी हुई। 110 दिन बाद हमने कटाई के उपरान्त 8 कुन्तल जौ व 10 कुन्तल भूसा प्राप्त किया। जिससे हमारे एक गाय व एक भैंस के 4 माह के लिए चारे की व्यवस्था सुनिश्चित हुई। इस प्रकार सूखे की स्थिति में भी कम लागत में ही इन्होंने खाद्य सुरक्षा के साथ–साथ दुधारू गाय व भैंस का दूध बेचकर अपनी आजीविका बनाये रखी। धीरे–धीरे हमारे इस प्रयास को गांव के अन्य परिवार भी अपना रहे हैं और जौ की खेती कर रहे हैं।

सूखे में कठिया गेहूँ की खेती

पहाड़ी पर बसे कबरई विकास खण्ड के मुगौरा गाँव की जमीन असमतल, उबड़-खाबड़ होने के कारण प्राकृतिक पानी खेतों में संचित नहीं हो पाता व निजी साधन पहुँच से बाहर होने के कारण लोगों ने कठिया गेहूँ को प्राथमिकता दी।

परिचय

जनपद महोबा के कबरई विकास खण्ड का ग्राम मुगौरा मगरिया नाले के किनारे पहाड़ी पर बसा हुआ है, जिस कारण यहां की जमीन असमतल तथा उबड़–खाबड़ है। यहां पर खेतों की ढलान एक से डेढ़ मीटर तक की है। खेती यहां की मुख्य आजीविका है, जो पूर्णतया वर्षा पर आधारित है। हालांकि सिंचाई हेतु कुछ निजी साधन जैसे निजी कूप, पम्पसेट आदि भी हैं, परन्तु उनकी लागत अधिक होने के कारण अधिकांश लोगों की पहुंच से बाहर होते हैं। निकट स्थित कबरई बांध में पानी का संग्रह होने के कारण गांव में पानी का स्तर ठीक रहता था और लोग अधिक पानी वाली फसलों जैसे – मसूर, सिंचित गेंहू, लाही की भी बुवाई कर लेते थे, परन्तु एक तरफ तो दिनोंदिन बढ़ते रसायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों के प्रयोग से भूमि ऊसर हुई, तो दूसरी तरफ मानसून की बिगड़ती स्थिति के कारण वर्षा कम हुई। वर्ष 2003 से लगातार कम होती बारिश के कारण कबरई बांध पूर्णतया सूख गया और फसलों की सिंचाई तो दूर यहां के लोगों को पीने के पानी की भी किल्लत होने लगी। इन दोनों परिस्थितियों ने मिलकर खेती से लोगों को विमुख कर दिया, क्योंकि उपरोक्त फसलें यहां पर नहीं ली जा सकती थीं।

ऐसी परिस्थिति से निपटने के लिए लोगों ने कठिया गेंहू की खेती करने का विचार बनाया, जो कम पानी वाली या मात्र नमी चाहने वाली प्रजाति होती है। यह सामान्य गेंहू के दाने से थोड़ी छोटी होती है, परन्तु खाने में स्वादिष्ट होती है। अतः इससे खाद्य का संकट भी टाला जा सकता है।

प्रक्रिया

भूमि का प्रकार

इसकी खेती के लिए कावर भूमि अधिक उपयुक्त होती है।

खेत की तैयारी

बरसात के मौसम में बारिश हो जाने के बाद तुरन्त तीन बार जुताई की जाती है और बुवाई के पूर्व ट्रैक्टर/कल्टीवेटर से खेत में पाटा लगाया जाता है, जिससे खेत में नमी बनी रहे।

बीज

कठिया गेंहूं गेंहूं की देशी प्रजाति का बीज है।

मिश्रण

कठिया गेंहूं के साथ चना व अलसी को भी न्यून मात्रा में मिलाते हैं।

बीज की मात्रा

प्रति एकड़ (40 किग्रा0 गेंहूं, 7.5 किग्रा0 चना व 2.5 किग्रा0 अलसी, तीनों को मिलाकर) 50 किग्रा0 के हिसाब से बुवाई की जाती है।

बुवाई का समय व विधि

स्वाति नक्षत्र (अक्टूबर माह) में देशी हल के द्वारा इसकी बुवाई लाइनवार दो से ढाई अंगुल की गहराई पर की जाती है।

खाद

बुवाई के पूर्व खेत में 4 ट्राली देशी (घूरगढ्ढा की खाद) खाद को फैला दिया गया।

निराई–गुड़ाई

हालांकि इसमें निराई–गुड़ाई की विशेष आवश्यकता नहीं होती है, परन्तु कभी–कभी बथुआ व हिरनखुरी नामक खर–पतवार दिखता है, जिसकी निराई कर उसे पशुओं को खिलाने के काम में लाते हैं। बथुआ का प्रयोग साग के रूप में भी बहुतायत से किया जाता है।

सिंचाई

सिंचाई के लिए बुवाई से पूर्व ही खेत में नमी बनाई जाती है, जिसके लिए खेत की चारों तरफ से मेड़बन्दी कर उसमें नमी संरक्षित किया जाता है।

रोग नियंत्रण

गेंहू में होने वाले गेरूआ व कण्डुआ रोगों के नियन्त्रण के लिए 12 ली0 मट्ठा, 125 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़काव करते हैं।

पकने की अवधि

कठिया गेंहू 120 से 125 दिन में पक कर कटने के लिए तैयार हो जाता है।

कटाई व मड़ाई

इसकी कटाई हाथ से दराती की सहायता से की जाती है तथा बैलों की सहायता से मड़ाई की जाती है।

उपज

एक एकड़ में 4.38 कुन्तल गेंहू, 50 किग्रा0 चना व 30 किग्रा0 अलसी प्राप्त होती है।

120 से 125 दिन में तैयार होने वाला कठिया गेहूँ सामान्य गेहूँ के दाने से छोटा, परन्तु खाने में स्वादिष्ट होने के कारण खाद्य सुरक्षा में सहायक होता है।

लागत-लाभ विवरण (एक एकड़ हेतु)

लागत विवरण	मात्रा/दर	मूल्य	उत्पादन	मूल्य	शुद्ध लाभ
जुताई	तीन बार दर रु० 300.00	रु० 900.00	गेहूँ 4.38 कु० दर 1000 प्रति कुन्तल	रु० 4380.00	रु० 7530.00 – 3125.00 = 4405.00
बुवाई		रु० 300.00	चना 50 किग्रा० दर 22.00 प्रति किग्रा	रु० 1100.00	
बीज	50 किग्रा०दर गेहूँ : 15.00 x 40 किग्रा चना : 25.00 x 7.5 किग्रा अलसी–35.00 x 2.5 किग्रा	रु० 600.00 रु० 187.50 रु० 87.50	अलसी 30 किग्रा० दर 35.00 प्रति किग्रा	रु० 1050.00	
कटाई व मड़ाई		रु० 300.00	भूसा 5 कु० दर 200/– प्रति कु०	रु० 1000.00	
खाद	2.5 ट्राली दर 300/– प्रति ट्राली	रु० 750.00			
योग		**रु० 3125.00**		**रु० 7530.00**	**रु० 4405.00**

सफल अनुभव

48 वर्षीय श्री शिवनन्दन पुत्र श्री करन सिंह ग्राम मुगौरा, विकास खण्ड – कबरई, जनपद – महोबा के निवासी हैं। इनके परिवार में सदस्यों की संख्या 6 तथा खेती योग्य भूमि 3.6 एकड़ है। इन्होंने बताया कि लगातार पड़ रहे सूखे के कारण खेती करनी मुश्किल हो गयी। ऐसे समय में गांव के बुजुर्गों से बात करने पर पता चला कि पहले भी जब सूखा पड़ता था, तब उस समय में हम लोग कठिया गेंहू की खेती करते थे, जिसके लिए न्यूनतम सिंचाई की आवश्यकता होती है अर्थात् यदि खेत में सिर्फ नमी हो, तो भी काम चल जाता है। तब हमने अपने 3.6 एकड़ खेत में इस गेंहू की खेती की। मिश्रण के तौर पर हमने बहुत थोड़ी मात्रा में चना व अलसी को भी मिला दिया। 120 दिनों के बाद हमें 3.6 एकड़ खेत से 15.50 कुन्तल गेंहू, 1.80 कुन्तल चना व 80 किग्रा0 अलसी की प्राप्ति हुई, जिसका बाजार मूल्य 22960.00 हुआ। हमारे पशुओं के खाने के लिए 18 कुन्तल भूसा भी मिला। इस प्रकार लागत रू0 10,000.00 के सापेक्ष हमें सालभर खाने के लिए अनाज मिल गया, दलहन, तिलहन की पूर्ति भी हमारे इसी खेत से हो गयी। इस प्रकार सूखे की स्थिति में भी श्री शिवनन्दन ने अच्छा उत्पाद प्राप्त किया और अपने परिवार के भरण–पोषण में सफलता पाई। इनके इस प्रयास को देखकर गांव के अन्य किसान भी इस तरह की खेती करने को उन्मुख हो रहे हैं।

चने की खेती : सूखे में भी बेहतर उपज

उबड़-खाबड़ एवं ऊसर प्रवृत्ति के खेतों में सिंचाई का न होना एक प्रमुख समस्या हो जाती है। ऐसे में स्वयं सेवी संगठन द्वारा जल संरक्षण के लिए किये जा रहे कार्यों ने सूखे में भी चने की खेती की आस जगाई।

परिचय

जनपद महोबा बुन्देलखण्ड का सूखा प्रभावित क्षेत्र है, जहां की जमीन उबड़–खाबड़ एवं जमीन की प्रवृत्ति ऊसर है। सिंचाई के साधनों का अभाव होने की वजह से यहां पर खेती पूर्णतया वर्षा आधारित होने की परिस्थिति में खरीफ मौसम में पूरी कृषि योग्य भूमि के तीन चौथाई भाग में तिल व उर्द बोया जाता है जबकि रबी मौसम की मुख्य फसल गेंहू, चना, मसूर व मटर है।

इसी जनपद के कबरई विकास खण्ड का गांव चुरबरा जो पूर्व व उत्तर में ग्रेनाइट के पहाड़ों से घिरा है तथा दूसरी तरफ पश्चिम में एक किमी0 की दूरी पर सलारपुर नहर स्थित है। वर्ष 2003 में वर्षा बहुत कम मात्रा में हुई और उसके बाद के वर्षों में भी यही निरन्तरता बनी रही, जिस कारण संचित भूमिगत जल समाप्त होने से स्थिति विकट होने लगी। कबरई बांध में पानी खत्म होने के कारण नहर भी सूख गयी। ऐसी स्थिति में खरीफ की फसल तो एकदम ही खत्म हो गयी, रबी पर भी इस सूखे का असर स्पष्ट दिखने लगा। गांव में स्थित 20–25 निजी बोरों ने भी ऐसी स्थिति में पानी देना बन्द कर दिया था।

सूखे में मुकाबला हेतु प्रयास

ग्राम चुरबरा में सूखा मुक्ति अभियान के अन्तर्गत एक किसान समूह का गठन किया गया है। पिछले वर्ष 2008 माह सितम्बर में किसान समूह की एक बैठक में श्री आशाराम पांचाल ने प्रस्ताव रखा कि ग्रामोन्नति संस्थान के माध्यम से चलाई गयी योजना के द्वारा कुओं का गहरीकरण तथा खेतों में मेड़बन्दी का कार्य चल रहा है। जिसके तहत् गांव के पंचम पुत्र धर्मदास के कुओं का गहरीकरण एवं खेत की मेड़बन्दी हुई है, जिससे इनके कुएँ का जलस्तर पिछले वर्ष की अपेक्षा 2 मीटर बढ़ा है। इस बढ़े पानी से 2 एकड़ खेत की सिंचाई की जा सकती है और मेड़बन्दी के द्वारा खेतों में नमी भी संरक्षित हुई है। अतः परीक्षण के तौर पर इनके खेत में चने की खेती की जा सकती है, क्योंकि चने की खेती सूखे में भी होती है, बशर्ते बुवाई के समय खेत में पर्याप्त नमी हो।

प्रक्रिया

खेत की तैयारी

चने की खेती करने के पहले ट्रैक्टर के कल्टीवेटर में नुकीले तार लगाकर एक गहरी जुताई की जाती है। तत्पश्चात् पानी चलाकर पलेवा कर दिया जाता है। पुनः बुवाई के समय एक जुताई कल्टीवेटर में फरूआ लगाकर किया जाता है।

बीज की प्रजाति

चने की देशी प्रजाति के बीजों का प्रयोग करते हैं।

बीज की मात्रा

एक एकड़ में 40 किग्रा0 बीज लगता है।

बुवाई का समय व विधि

माह नवम्बर में इसकी बुवाई की जाती है। इसकी बुवाई सीडड्रिल से की जाती है।

निराई-गुड़ाई

चने के खेत में पोला नामक खर–पतवार दिखता है, जो आम तौर पर 30–35 दिनों बाद दिखना शुरू हो जाता है। इसकी निराई समय–समय पर करके इसे नष्ट करते रहना चाहिए।

सिंचाई

सिंचाई के लिए बुवाई से पूर्व ही खेत में नमी बनाई जाती है, जिसके लिए खेत की चारों तरफ से मेड़बन्दी कर उसमें नमी संरक्षित किया जाता है।

रोग नियंत्रण

चने में होने वाले उकठा रोग व इल्ली/सूड़ी न लगे इसके लिए प्रत्येक 15 दिनों पर 12 ली0 मट्ठा, 125 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़काव करते हैं, जिससे रोग नियन्त्रण भी होता है और कीटों का प्रकोप भी नहीं होता है।

पकने की अवधि

मार्च माह के प्रारम्भ में चने की फसल पककर तैयार हो जाती है।

कटाई-मड़ाई

इसकी कटाई हाथ से दरांती की सहायता से की जाती है व मड़ाई थ्रेसर से की जाती है।

उपज

एक एकड़ में 5.20 कुन्तल चने की उपज होती है।

लागत-लाभ विवरण (एक एकड़ हेतु)

लागत विवरण	मात्रा/दर	मूल्य	उत्पादन	मूल्य	शुद्ध लाभ
जुताई	दो बार दर रु० 200.00	रु० 400.00	चना 5.20 कु० दर 2000.00 प्रति कु०	रु० 10400.00	रु० 10900.00 – 3050.00 = 7850.00
बुवाई		रु० 250.00	भूसा 5 कु० दर 100.00 प्रति कुन्तल	रु० 500.00	
सिंचाई	एक बार	रु० 500.00			
बीज	40 किग्रा०दर रु० 25.00	रु०1000.00			
कटाई		रु० 500.00			
मड़ाई		रु० 400.00			
योग		**रु० 3050.00**		**रु० 10900.00**	**रु० 7850.00**

खेतों की मेड़बन्दी नमी संरक्षण का एक बेहतर माध्यम है और ऐसे में जैविक विधि से देशी चना की खेती लाभप्रद होगी, इसे किसानों ने सिद्ध भी किया है।

सफल अनुभव

35 वर्षीय श्री पंचम अहिरवार पुत्र श्री धर्मदास अहिरवार ग्राम चुरबरा, विकास खण्ड – कबरई, जनपद – महोबा के निवासी हैं। 7 सदस्यीय परिवार के जीवन यापन हेतु आजीविका के स्रोत के रूप में इनके पास कुल 2 एकड़ खेत है। लगातार पड़ रहे सूखे के कारण जब खेती करनी मुश्किल हो गयी, तब इन्होंने आजीविका के स्रोतों पर बुजुर्गों से चर्चा की, जिसमें इन्हें पता चला कि चने की खेती सूखा में भी की जा सकती है। परन्तु बुवाई के समय खेत में पर्याप्त नमी होनी चाहिए। तब इन्होंने अपने खेत में स्थित कुएं का गहरीकरण कराया व खेत में नमी सुरक्षित रखने हेतु मेड़बन्दी भी कराई। इतना करने के बाद इन्होंने अपने 2 एकड़ खेत में चना की बुवाई की, जिसके लिए एक जुताई के बाद अपने कुएं में पम्पिंग सेट लगाकर खेत में पलेवा कर दिया। पुनः एक जुताई करने के बाद सीडड्रिल मशीन से चने की बुवाई की। फसल में उकठा रोग व इल्ली/सूड़ी से बचाव हो सके, इसके लिए इन्होंने 15 दिनों के अन्तराल पर 12 ली0 मट्ठा, 125 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव किया। मार्च मे फसल पककर तैयार हो गयी, जिसे दरांती की सहायता से काटकर थ्रेसर से मड़ाई की गयी। मड़ाई के उपरान्त 10.40 कुन्तल चना मिला, जिसका बाजार मूल्य रू0 20800.00 हुआ, जिसे बेचकर इन्होंने 15 कुन्तल गेंहू खरीदा, जिससे इनके परिवार की खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित हुई, साथ ही इन्होंने अपने परिवार के खाने में भी चने का उपयोग किया। इनके इस प्रयास को देखकर गांव के अन्य किसान भी इस तरह की खेती करने को उन्मुख हो रहे हैं।

खरीफ ऋतु में मिश्रित फसलें
(देशी बाजरा + देशी तिल + देशी मूंग + देशी अरहर)

मिश्रित फसलें एक तरफ जहाँ किसान की खाद्य सुरक्षा व पोषकता को बढ़ाती है, वहीं अलग-अलग जड़ व प्रकृति की होने के कारण मृदा उर्वरता व नमी को संरक्षित करने में भी सहायक होती हैं।

परिचय

मिश्रित खेती सदैव लाभदायक होती है और यदि छोटी जोत हो, तो उस पर सोने पर सुहागा वाली कहावत चरितार्थ होती है, क्योंकि मिश्रित खेती करके किसान कम जोत में अधिक फसल लेकर बाजार पर अपनी निर्भरता कम कर सकता है। ऐसे क्षेत्र में जहां आमतौर पर सूखा रहता हो, उन स्थानों पर यदि मिश्रित खेती की जाये तो अधिक लाभकर होता है।

मिश्रित खेती में यह भी ध्यान देने योग्य होता है कि जिन फसलों की बुवाई कर रहे हैं, उनमें अनाज, दलहन, तिलहन सभी का प्रतिनिधित्व हो। एक तो यह सभी अलग–अलग समय की फसल होने के कारण किसान के घर में हमेशा कुछ–न–कुछ उपज आती रहेगी और दूसरे अलग–अलग प्रकृति की फसल होने से खेत की उर्वरता व नमी भी बराबर मात्रा में सभी को मिलती रहेगी। बाजरा, तिल, मूंग व अरहर चारों क्रमशः अनाज, तिलहन व दलहन की फसलें हैं, जो कम पानी में हो जाती हैं। यदि देशी प्रजाति की ये फसलें हों, तो सूखा को सहन करने की क्षमता इनके अन्दर अधिक होती है। इसके साथ ही ये सभी फसलें किसान की खाद्यान्न आपूति के लिए भी सहायक होती हैं।

चित्रकूट सूखे बुन्देलखण्ड का अति पिछड़ा जनपद है। अन्य क्षेत्रों की तरह कम व अनियमित वर्षा, सिंचाई के अभाव में सूखती खेती और बदहाल होता किसान चित्रकूट की भी नियति है। यहीं का एक ग्राम पंचायत है – रैपुरा, जिसके अन्तर्गत तीन राजस्व गांव गहोरा खास, गहोरापाही व कैरी कटनाशा हैं। तीनों गांव की कुल आबादी 5794 है, जिसमें लगभग सभी जातियों के लोग निवास करते हैं। मुख्यतः ब्राम्हण, कुर्मी, यादव, कुम्हार, गुप्ता, लोहार, बढ़ई, साहू, मुस्लिम, चमार, नाई जातियां यहां पर निवास करती हैं। यहां के लोगों की आजीविका का मुख्य स्रोत खेती है। परन्तु उबड़–खाबड़ जमीन एवं सिंचाई के साधनों के अभाव के चलते वर्षा आधारित खेती होने के कारण पिछले 10 वर्षों से सूखा पड़ने की स्थिति में लोगों की आजीविका भी प्रभावित हो रही है।

ऐसी स्थिति में ग्राम गहोरा पाही के कुछ किसानों ने खरीफ के मौसम में मिश्रित खेती करके सूखे का मुकाबला करने का विचार किया।

प्रक्रिया

खेत की तैयारी

सर्वप्रथम माह जून के तीसरे–चौथे सप्ताह तक खेत में पड़ा कूड़ा–करकट साफ कर देते हैं। तत्पश्चात् बारिश होने के बाद खेत की पहली जुताई ट्रैक्टर से कराते हैं। पुनः दो से तीन जुताई हल से अथवा ट्रैक्टर से करते हैं।

फसल चयन

ऐसी फसल बोने को प्राथमिकता देते हैं, जिनमें पानी की आवश्यकता कम हो। साथ ही एक फसल चक्र पूरा होने के बाद दूसरे फसल चक्र में अलग फसलों की बुवाई करते हैं। प्रतिवर्ष फसल बदल–बदल कर बोते हैं, जिससे खेत को पर्याप्त पोषक तत्व व नमी मिलती रहे।

बीज की प्रजाति

घर पर संरक्षित व सुरक्षित देशी बीजों का प्रयोग करते हैं।

बीज की मात्रा

एक एकड़ खेत में मिश्रित बुवाई करने के लिए अरहर 5 किग्रा0, बाजरा 2 किग्रा0, मूंग 2 किग्रा0 व तिल डेढ़ किग्रा को मिलाकर बुवाई करते हैं।

बुआई का समय व विधि

अगस्त माह के प्रथम सप्ताह में छिटकवां विधि से बुवाई करते हैं। इसके लिए खेत की आखिरी जुताई ट्रैक्टर से करने के पश्चात् 3 से 5 इंच की गहराई पर इसकी बुवाई ट्रैक्टर की सहायता से सीडड्रिल मशीन से ही कराते हैं।

खाद

एक एकड़ हेतु एक ट्राली देशी खाद की आवश्यकता होती है, जिसे पहली जुताई के समय खेत में मिला दिया जाता है।

निराई

फसल की बढ़वार होती रहे, इसके लिए समय–समय पर खेत की निराई की जाती है। इससे एक तरफ तो हमारा खेत साफ रहता है और दूसरी तरफ जानवरों के लिए चारा भी उपलब्ध हो जाता है।

पकने की अवधि

बाजरा, मूंग व तिल के पकने की अवधि 60–90 दिनों की होती है, जबकि अरहर 8–9 महीने की फसल होती है, जो मार्च में पक जाती है।

कटाई का समय व मड़ाई

- तिल की फसल की कटाई सितम्बर के अन्तिम सप्ताह या फिर अक्टूबर के प्रथम सप्ताह तक हो जाती है। तिल की कटाई करके एक जगह सुखा कर डण्ठल को हिलाकर इसका बीज झाड़ लिया जाता है।
- मूंग की एक–एक फली की तुड़ाई की जाती है। यह तुड़ाई सितम्बर के प्रथम सप्ताह से प्रारम्भ हो जाती है। इसकी कुटाई करके बीज निकाला जाता है।
- बाजरा की कटाई अक्टूबर के अन्तिम सप्ताह या नवम्बर के प्रथम सप्ताह तक हो जाती है। बाजरा की मड़ाई बैलों से करते हैं। इसके दाने निकालने के लिए थ्रेसर का प्रयोग भी किया जा सकता है।
- मार्च में अरहर पकने के बाद इसकी कटाई कर लेते हैं। अरहर को काटकर सुखाते हैं। तब कुटाई करके इसका बीज निकालते हैं।

उपज

- देशी बाजरा : 4 कुन्तल
- देशी अरहर : 1 कुन्तल
- देशी तिल : 50 किग्रा0
- देशी मूंग : 30 किग्रा0

अरहर, बाजरा, मूंग व तिल की मिश्रित खेती एक तरफ जहाँ लम्बी अवधि तक उपज देती है, वहीं इससे बैलों का चारा, जलावनी लकड़ी आदि सभी की उपलब्धता आसानी से हो जाती है।

लागत-लाभ विवरण (एक एकड़ हेतु)

लागत विवरण	मात्रा/दर	मूल्य	उत्पादन	मूल्य	शुद्ध लाभ
देशी बाजरा	2 किग्रा रु० 10.00	रु० 20.00	4 कुन्तल दर रु० 700.00/कुन्तल	रु० 2800.00	रु० 9750.00 – 3510.00 = 6240.00
देशी अरहर	5 किग्रा रु० 35.00	रु० 165.00	1 कुन्तल दर रु० 3500.00/कुन्तल	रु० 3500.00	
देशी तिल	1.5 किग्रा रु० 50.00	रु० 75.00	50 किग्रा दर रु० 5000.00/कुन्तल	रु० 2500.00	
देशी मूंग	2 किग्रा रु० 25.00	रु० 50.00	30 किग्रा दर रु० 2500.00	रु० 750.00	
जुताई	6 दिन/ रु० 200.00	रु० 1200.00	भूसा/नरई	रु० 200.00	
बुवाई निराई कटाई मड़ाई		रु० 400.00 रु० 600.00 रु० 600.00 रु० 400.00			
योग		**रु० 3510.00**		**रु० 9750.00**	**रु० 6240.00**

खेत का आधार (रेखा चित्र)

208 फीट चौड़ाई

196 फीट चौड़ाई

चित्रकूट के गहोरा पाही के किसान कमलेश कुर्मी ने मिश्रित फसल करते हुए खेती को लाभप्रद व्यवसाय बनाया।

सफल अनुभव

राजस्व गांव गहोरा पाही चित्रकूट जनपद के मानिकपुर विकास खण्ड का ग्राम पंचायत रैपुरा का एक टोला है, जो चित्रकूट से इलाहाबाद के राष्ट्रीय राजमार्ग पर स्थित है। इसी गांव के किसान श्री कमलेश प्रसाद कुर्मी पुत्र श्री रामनरेश कुर्मी ने सूखे का मुकाबला करने हेतु खरीफ में मिश्रित फसल की खेती की। इनके पास खेती योग्य भूमि 2 बीघा और परिवार में सदस्यों की संख्या 4 है। इनकी आजीविका का मुख्य स्रोत खेती है। इनका कहना है कि मिश्रित फसलों की खेती पहले भी होती थी, परन्तु बीच में हम बाजार आधारित फसलों एवं हाइब्रिड बीजों के मोह में आ गये थे। वर्ष 2004 में बारिश कम हुई और इसके बाद लगातार सूखा पड़ता गया, तब हमें मिश्रित फसल की याद आई। किस फसल के साथ कौन सी फसल लगानी है, इसकी जानकारी हमें अपने बड़ों से हुई। हमने वर्ष 2007 में इस तरह की खेती का प्रयोग किया, जिसमें हमें अपेक्षित सफलता मिली और तब से हम लगातार फसल चक्र में परिवर्तन करते हुए मिश्रित खेती कर रहे हैं और सूखे से निपटने में बहुत हद तक सफलता पाई है।

रबी ऋतु में मिश्रित फसलें
(कठिया गेहूँ + देशी चना + अलसी + सरसों)

अनाज, दलहन, तिलहन सभी का प्रतिनिधित्व करने वाली मिश्रित खेती किसान के खेत व घर दोनों को पोषक तत्वों व खाद्यान्न से प्रचुर बनाये रखती है।

परिचय

मिश्रित खेती जोखिम को कम करने का एक गुरू मंत्र है। छोटी जोत वाले किसानों के लिए मिश्रित खेती करना लाभ के प्रतिशत को बढ़ाना है। इसके साथ ही ऐसी जगहों पर जहां सिंचाई के साधनों की उपलब्धता अति न्यून मात्रा में हो और वर्षा भी बहुत कम अथवा अनियमित हो, तो वहां पर मिश्रित फसलों की खेती इस सोच के साथ की जाती है कि यदि एक फसल नहीं हुई तो दूसरी फसल हो जायेगी और नुकसान कम होगा।

मिश्रित खेती में यह भी ध्यान देने योग्य होता है कि जिन फसलों की बुवाई कर रहे हैं, उनमें अनाज, दलहन, तिलहन सभी का प्रतिनिधित्व हो। एक तो यह सभी अलग–अलग समय की फसल होने के कारण किसान के घर में हमेशा कुछ–न–कुछ उपज आती रहेगी और दूसरे अलग–अलग प्रकृति की फसल होने से खेत की उर्वरता व नमी भी बराबर मात्रा में सभी को मिलती रहेगी।

कठिया गेंहू, देशी चना, अलसी व सरसों चारों क्रमशः अनाज, दलहन व तिलहन की फसलें हैं, जो कम पानी में हो जाती हैं। यदि ये फसलें देशी प्रजाति की हों, तो सूखा को सहन करने की क्षमता इनके अन्दर अधिक होती है। इसके साथ ही ये सभी फसलें किसान की खाद्यान्न आपूर्ति के लिए भी सहायक होती हैं। फसलों की विविधता होने से किसान को जोखिम भी कम उठाना पड़ता है अर्थात् जोखिम की संभावना कम हो जाती है।

चित्रकूट सूखे बुन्देलखण्ड का अति पिछड़ा जनपद है। अन्य क्षेत्रों की तरह कम व अनियमित वर्षा, सिंचाई के अभाव में सूखती खेती और बदहाल होता किसान चित्रकूट की भी नियति है। यहीं का एक ग्राम पंचायत है – रैपुरा, जिसके अन्तर्गत तीन राजस्व गांव गहोरा खास, गहोरापाही व कैरी कटनाशा हैं। इन गावों की कुल आबादी 5794 है, जिसमें लगभग सभी जातियों के लोग निवास करते हैं। मुख्यतः ब्राम्हण, कुर्मी, यादव, कुम्हार, गुप्ता, लोहार, बढ़ई, साहू, मुस्लिम, हरिजन, नाई जातियां यहां पर निवास करती हैं। यहां के लोगों की आजीविका का मुख्य स्रोत खेती है, परन्तु उबड़–खाबड़ जमीन एवं सिंचाई के साधनों के अभाव के चलते वर्षा आधारित खेती होने के कारण पिछले 10 वर्षों से सूखा पड़ने की स्थिति में लोगों की आजीविका भी प्रभावित हो रही है।

ऐसी स्थिति में ग्राम रैपुरा के कुछ किसानों ने रबी के मौसम में मिश्रित खेती करके सूखे का मुकाबला करने का विचार किया, उसे अपनाया और अपने नुकसान को कम किया।

प्रक्रिया

खेत की तैयारी

सर्वप्रथम माह जून के अन्तिम सप्ताह में बारिश होने के बाद दो बार खेत की जुताई करते हैं तथा सितम्बर में एक बार व अक्टूबर में दो बार जुताई करते हैं।

फसल चयन

सूखा क्षेत्र होने के कारण वर्ष में एक ही बार फसल की बुवाई करते हैं। फसल का चयन करते समय अलग–अलग लम्बाई की जड़ों (मूसला व जकड़ा जड़) वाली फसल जैसे – गेंहू, चना, अलसी, सरसों आदि की बुवाई एक साथ करते हैं। क्योंकि कठिया गेंहू की जड़ दो से तीन इंच लम्बी होती है, चना की जड़ 6 से आठ इंच तक लम्बी होती है, जबकि अलसी एवं सरसों की मूसला जड़ें चार से पांच इंच तक लम्बी होने के कारण पौधों को निरन्तर नमी मिलती रहती है और उत्पादन अधिक होता है।

बीज की प्रजाति

घर पर संरक्षित व सुरक्षित देशी बीजों का प्रयोग करते हैं।

बीज की मात्रा

एक एकड़ खेत में मिश्रित बुवाई करने के लिए कठिया गेंहू 20 किग्रा0, देशी चना 20 किग्रा0, अलसी 6 किग्रा0 व सरसों 2 किग्रा0 को मिलाकर बुवाई करते हैं।

बुवाई का समय व विधि

अक्टूबर माह के अन्तिम सप्ताह या दीपावली के पहले बुवाई करते हैं। इसके लिए सभी बीजों कठिया गेंहू, देशी चना व अलसी तथा डी0ए0पी0 खाद को एक साथ मिलाकर हल में बांसा बांधकर बुवाई करते हैं। बुवाई के लिए एक मजदूर भी लगाते हैं। अर्थात् एक मजदूर हल को पकड़ता है तथा दूसरा बीज को बांसा में डालता जाता है तब बुवाई होती है। बीज की बुवाई 3 से 4 इंच की गहराई पर करते हैं। इसके बाद सरसों की बुवाई कूंड अर्थात् लाइन में करते हैं। लाइन से लाइन की दूरी 5 से 6 फीट की होती है।

यदि जाड़े में वर्षा नहीं हुई तो भी घर पर संरक्षित बीजों की बुवाई करके अच्छी उपज मिलती है। इन फसलों की मड़ाई थ्रेसर से नहीं करते, क्योंकि दाने फूटने का भय रहता है।

खाद

10 किग्रा0 डी0ए0पी0 खाद का प्रयोग बीज की बुवाई करते समय ही करते हैं।

रोग व कीट नियंत्रण

शीत काल में हुई वर्षा को महावट कहते हैं। जाड़े मे जब महावट अधिक होती है, तब कठिया गेंहू में खैरा रोग लग जाता है। इससे बचाव के लिए बाजार से मिल्ड्यू पाउडर लेकर राख के साथ मिलाकर छिड़काव कर देते हैं। अगर महावट एक भी नहीं होती है, तब कठिया गेंहू, देशी चना के साथ सरसों, अलसी की भी पैदावार अच्छी हो जाती है।

निराई व देख-रेख

फसल की बढ़वार होती रहे, इसके लिए समय–समय पर खेत की निराई–गुड़ाई की जाती है। इससे एक तरफ तो हमारा खेत साफ रहता है और दूसरी तरफ जानवरों के लिए चारा भी उपलब्ध हो जाता है। साथ ही इसी बहाने खेत की देख–रेख एवं छुट्टा पशुओं से बचाव भी होता रहता है तथा निराई–गुड़ाई करने से उपज भी अच्छी प्राप्त होती है।

कटाई का समय व मड़ाई

फसल की कटाई फरवरी के अन्तिम सप्ताह से लेकर मार्च के अन्तिम सप्ताह तक हो जाती है। कटने के बाद फसल को खुब अच्छी तरह सुखाते हैं, तब मड़ाई करते हैं। एक एकड़ फसल की मड़ाई पांच से छ दिनों में होती है। थ्रेसर से

खेत का आधार (रेखा चित्र)

260 फीट लम्बाई

163 फीट चौड़ाई

इसकी मड़ाई नहीं करते हैं, क्योंकि एक तो चना फूट जाता है और अलसी भूसा के साथ उड़ जाने से किसान का नुकसान होता है, दूसरे मड़ाई से निकला भूसा मुलायम होता है, जिसे पशु बड़े चाव से खाते हैं। मड़ाई करने के बाद हाथ से ओसाई करके भूसा व अनाज अलग करते हैं।

उपज

- देशी चना : 3 कुन्तल
- कठिया गेंहू : 3 कुन्तल
- अलसी : 70 किग्रा0
- सरसों : 40 किग्रा0

लागत-लाभ विवरण (एक एकड़ हेतु)

लागत विवरण	मात्रा/दर	मूल्य	उत्पादन	मूल्य	शुद्ध लाभ
कठिया गेहूँ	20 किग्रा रु० 10.00	रु० 200.00	3 कुन्तल दर रु० 1000.00/कुन्तल	रु० 3000.00	रु० 12950.00 – 5446.00 = 7504.00
देशी चना	20 किग्रा रु० 22.00	रु० 440.00	3 कुन्तल दर रु० 2200.00/कुन्तल	रु० 6600.00	
अलसी	6 किग्रा रु० 25.00	रु० 150.00	70 किग्रा दर रु० 2500.00/कुन्तल	रु० 1750.00	
सरसों	2 किग्रा रु० 28.00	रु० 56.00	40 किग्रा दर रु० 2500.00	रु० 1000.00	
खाद	10 किग्रा/ रु० 10.00	रु० 100.00	भूसा 6 कु० दर रु० 100.00/कु०	रु० 600.00	
जुताई	10 दिन/ रु० 300.00	रु० 3000.00			
बुआई	2 दिन/ रु० 300.00	रु० 600.00			
मड़ाई	6 दिन/ रु० 100.00	रु० 600.00			
ओसाई	3 दिन/ रु० 100.00	रु० 300.00			
योग		**रु० 5446.00**		**रु० 12950.00**	**रु० 7504.00**

रैपुरा के काशी प्रसाद कुर्मी ने सूखे की निरन्तरता को देखते हुए वर्ष 2007 से मिश्रित फसलों की खेती पुनः अपनाई और अपेक्षित सफलता पा रहे हैं।

सफल अनुभव

राजस्व गांव रैपुरा चित्रकूट जनपद के मानिकपुर विकास खण्ड के ग्राम पंचायत रैपुरा का एक टोला है, जो चित्रकूट से इलाहाबाद के राष्ट्रीय राजमार्ग पर स्थित है। इसी गांव के किसान श्री काशी प्रसाद कुर्मी पुत्र श्री भूरेलाल कुर्मी ने सूखे का मुकाबला करने हेतु रबी में मिश्रित फसल की खेती की। इनके पास खेती योग्य भूमि 8 बीघा और परिवार में सदस्यों की संख्या 13 है। इनकी आजीविका का मुख्य स्रोत खेती है। 67 वर्षीय श्री काशी प्रसाद का कहना है कि मिश्रित फसलों की खेती पहले भी होती थी, परन्तु बीच में बाजार आधारित फसलों एवं हाइब्रिड बीजों के मोह में आ जाने के कारण यह पद्धति छूट सी गयी थी, परन्तु वर्ष 2004 में बारिश कम हुई और इसके बाद लगातार सूखा पड़ता गया, तब अपने–आप को व अपने परिवार को बचाये रखने के लिए हम पुनः मिश्रित फसलों की तरफ उन्मुख हुए। एक लम्बे समय बाद हमने वर्ष 2007 में इस तरह की फसलों की खेती का प्रयोग किया, जिसमें हमें अपेक्षित सफलता मिली और तब से हम लगातार फसल चक्र में परिवर्तन करते हुए मिश्रित फसल लगा रहे हैं और सूखे से निपटने में बहुत हद तक सफलता पाई है।

दलहन फसल के साथ मिश्रित खेती
(ज्वार + मूंग + अरहर + रोसा + कचरिया)

दलहनी फसलें जहाँ मानव जीवन के लिए प्रोटीन का काम करती है, वहीं उनकी जड़ों में फिक्स नाइट्रोजन मृदा उर्वरता को बढ़ाता है व सुखाड़ की स्थिति में भी ये फसले कुछ बेहतर उपज दे जाती हैं।

परिचय

दलहनी फसलें एक तरफ जहां मानव स्वास्थ्य के लिए प्रोटीन का काम करती हैं, वहीं उनकी जड़ों में बने राइजोबियम गांठ में नाइट्रोजन फिक्स रहता है, जिस कारण भूमि की उर्वरता भी बढ़ती है, खाद की आवश्यकता कम होती है और इस प्रकार खेती की लागत कम होती है। बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत आने वाले सभी जनपदों में ज्यादातर जमीनें ऊंची–नीची, असमतल होने की वजह से यहां पर खरीफ की फसल को ही प्रमुखता दी जाती है। इसलिए यह क्षेत्र दलहनों के लिए मशहूर है। दलहनी फसलों में अरहर, उड़द, मूंग, चना, मटर, मसूर इत्यादि की खेती बड़े पैमाने पर की जाती है।

मिश्रित खेती यहां परम्परा से रही है, जिसका मुख्य उद्देश्य यही रहा है कि – एक परिवार के जरूरत की सभी फसलों का उत्पादन एक ही खेत से हो जाये। इसके अन्तर्गत मुख्य मिश्रित फसल में ज्वार, अरहर, मूंग, रोसा, कचरिया की खेती की जाती थी। लेकिन विगत 20–25 वर्षों में आई हरित क्रान्ति के साथ लोगों ने नई–नई नगदी फसलों को लेना शुरू किया और परम्परागत खेती को छोड़कर नई तकनीक से खेती करके अपनी उपज बढ़ाने लगे। इसमें लोगों को सफलता भी मिली, लेकिन कुछ समय बाद प्राकृतिक स्रोतों के अन्धाधुन्ध दोहन एवं बदलते मौसम के कारण क्षेत्र में सुखाड़ की स्थिति बनने लगी। तब लोगों को पुनः सूखा सहने वाली परम्परागत मिश्रित खेती की याद आई और इन्होंने इसे पुनः अपना कर अच्छा उत्पादन प्राप्त किया।

प्रक्रिया

खेत की तैयारी

मिश्रित खेती करने हेतु सर्वप्रथम जून में पहली जुताई देशी हल एवं बैल से करते हैं। पुनः बक्खर से खेत की जुताई कर खेत तैयार किया जाता है। ताकि खेत में खर–पतवार कम मात्रा में निकले। बक्खर से जुताई करने के दौरान ही गोबर की खाद को खेत में बिखेर दिया जाता है, जिससे खेत में नमी बनी रहे।

फसल चयन

मिश्रित खेती में फसलों का चयन करते समय कई सावधानियां बरतते हैं –

- विभिन्न लम्बाई की जड़ वाली फसलें हों।
- अनाज, दलहन, तिलहन सभी का प्रतिनिधित्व करती हों।

बीज की प्रजाति

घर पर संरक्षित व सुरक्षित देशी बीजों का प्रयोग करते हैं। देशी बीजों को कीड़ों से बचाने के लिए राख में मिलाकर रखने से बीज सुरक्षित बने रहते हैं और बुवाई के समय सभी बीज अंकुरित हो जाते हैं।

बीज की मात्रा एवं बुआई विधि

1.5 किग्रा0	ज्वार	प्रति एकड़
1 किग्रा0	अरहर	
750 ग्राम	मूंग	
250 ग्राम	रोसा	
200 ग्राम	कचरिया	

नोट : ज्वार के बीज अधिक इसलिए रखते हैं, क्योंकि बहुत से पौधों में भुट्टे नहीं आते हैं और वे पौधे जानवरों के लिए चारा के रूप में काम आते हैं।

बुआई का समय व विधि

15 जून से 15 जुलाई के मध्य सभी बीजों को मिलाकर छिटकवां विधि से बुवाई करते हैं।

रोग व कीट नियंत्रण

ज्वार में कुण्डवा नामक रोग होता है, जिससे भुट्टा खराब हो जाता है। यह खराब फसल जानवरों के खाने योग्य भी नहीं रहती, क्योंकि उनको भी नुकसान पहुंचता है। अरहर में कभी–कभी उकठा रोग लग जाता है। इन रोगों से बचाव के लिए नीम की पत्ती को सड़ाकर गाय के मूत्र के साथ मिलाकर छिड़कने से रोग नहीं लगता है।

फसल की देखरेख

सूखा के समय काफी जानवर खुले घूमते हैं। ऐसे में फसल की रखवाली करना कठिन होता है। ऐसी स्थिति में एक व्यक्ति को हमेशा ही खेतों पर रहना पड़ता है अथवा खेत के चारों तरफ बाड़ बनानी पड़ती है।

कटाई का समय

मिश्रित फसल की कटाई अलग–अलग समय पर की जाती है, जिसे निम्नानुसार देख सकते हैं–

- मूंग व रोसा की कटाई 15 सितम्बर से 15 अक्टूबर (आधे भादों से आधे क्वार) के बीच हो जाती है।
- अरहर की कटाई चैत्र एवं बैशाख के मध्य होती है।
- कचरिया एवं रोसा के बेलों में 45 दिनों बाद फल लगना शुरू हो जाता है। उनकी समय–समय पर तुड़ाई कर घर पर सब्जी के रूप में उपयोग किया जाता हैं।

मौसमी विश्लेषण

इन मिश्रित फसलों की बुवाई व कटाई के समय को निम्न मौसमी विश्लेषण के आधार पर देख सकते हैं–

	बुआई का समय					कटाई का समय						
फसल	जून	जुलाई	अगस्त	सित०	अक्टू०	नव०	दिस०	जन०	फर०	मार्च	अप्रैल	मई
ज्वार	↔					↔						
मूंग	↔			↔	↔							
रोसा	↔			↔	↔							
कचरिया	↔			↔	↔	↔	↔	↔	↔			
अरहर	↔										↔	

दलहनी मिश्रित फसलों को हालांकि छुट्टा पशुओं से सर्वाधिक नुकसान होता है, फिर भी थोड़ी सी देख-रेख में इनसे अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है।

उपज

- ज्वार : 1.5 – 2 कुन्तल
- अरहर : 1.5 – 2 कुन्तल
- मूंग : 50 – 70 कुन्तल
- रोसा एवं कचरिया : घरेलू उपयोग के लिए पर्याप्त मात्रा में निकल आता है।

लागत-लाभ विवरण (एक एकड़ हेतु)

लागत विवरण	मात्रा/दर	मूल्य	उत्पादन	मूल्य	शुद्ध लाभ
ज्वार	3 किग्रा/ रु० 10.00	रु० 30.00	2 कुन्तल दर रु० 750.00/कुन्तल	रु० 1500.00	रु० 14,140.00 – 4,875.00 = रु० 9,265.00
अरहर	3 किग्रा/ रु० 50.00	रु० 150.00	2 कुन्तल दर रु० 3500.00/कुन्तल	रु० 7000.00	
मूंग	1.5 किग्रा/ रु० 40.00	रु० 60.00	70 किग्रा दर रु० 2200.00/कुन्तल	रु० 1540.00	
रोसा	750 ग्राम/ 40 रु० किग्रा	रु० 30.00	80 किग्रा दर रु० 2000.00	रु०1800.00	
कचरिया	250 ग्राम/ 100 रु० किग्रा	रु० 25.00	4 कुन्तल दर रु० 100 प्रति कुन्तल	रु० 400.00	
जुताई, बुवाई	4 दिन/ 320 रु०	रु० 1,280.00	भूसा व चारा 9 कु० 500 किग्रा० दर 200/– प्रति कु०	रु० 1900.00	
कटाई	2 दिन/ 500 रु०	रु० 1,000.00			
बाड़ा बनाने में खर्च	1500 रु०	रु० 1,500.00			
निराई इत्यादि	800 रु०	रु० 800.00			
योग		**रु० 4875.00**		**रु० 14,140.00**	**रु० 9,265.00**

देशी बीज कम पानी की स्थिति में भी इतना उपज तो दे ही जाती हैं कि परिवार के खाने का इन्तजाम हो जाये और इसीलिए कमठा के गोविन्द जी ने सूखा की स्थितियों में इसे पुनः अपनाया।

सफल अनुभव

ग्राम कमठा, विकास खण्ड डकोर, जनपद जालौन के 34 वर्षीय श्री गोविन्द जी के पास खेती योग्य कुल भूमि 5 एकड़ है, जिसमें ये सभी फसलें आसानी से ले रहे थे, परन्तु सूखा की अवधि बढ़ने के साथ इनकी मुश्किलें भी बढ़ती गयीं और तब इन्होंने अपनी परम्परागत खेती को पुनः अपनाया और वर्ष 2008 में इन्होंने अपने खेत में परम्परागत बीजों को लेकर मिश्रित खेती की और कम पानी की स्थिति में भी इन्होंने अच्छी उपज प्राप्त की। इन्होंने बताया कि हमने अरहर, मूंग, ज्वार, रोसा, कचरिया की देशी प्रजाति के बीजों को अपने खेत में बोया, चूंकि इन सभी में कम पानी की आवश्यकता होती है। अतः ये सभी फसलें हमें अच्छी उपज दे गयीं और इस प्रकार हमारी घरेलू आवश्यकता के साथ–साथ हमारे जानवरों के चारे का भी इन्तजाम हो गया।

जल संचयन करके चना व अलसी की खेती

पहले से ही सूखे बुन्देलखण्ड में अनियोजित व अदूरदर्शी सरकारी अनुदानों व योजनाओं ने स्थिति को और भी विकट ही बनाया है।

परिचय

अपनी भौगोलिक बनावट एवं जलवायुविक सन्दर्भ के चलते बुन्देलखण्ड शुरू से ही कम वर्षा वाला क्षेत्र रहा है। तिस पर विकास के बढ़ते क्रम में लोगों ने भौतिक संसाधनों को जुटाकर उसके सहारे प्राकृतिक संसाधनों का दोहन अन्धाधुन्ध तरीके से करना शुरू कर दिया। सरकार ने भी खेती को बढ़ावा देने के लिए ट्यूबवेल लगाने पर छूट प्रदान किया, जिससे काफी मात्रा में ट्यूबवेल लगाये गये और प्राकृतिक जलस्रोतों की उगाही हुई। नतीजतन विगत 5–6 वर्षों से लगातार सूखा के कारण स्थिति अत्यन्त दयनीय हुई और लोगों की आजीविका गहरी मुश्किल में पड़ गयी।

ऐसी स्थिति में जल के महत्व को समझते हुए खेतों में छोटे–छोटे तालाब बनाकर उनके माध्यम से वर्षा जल संग्रहित कर उनसे खेती करना एक अनूठी पहल साबित हुई। जालौन के विकास खण्ड डकोर के किसानों ने ऐसा ही प्रयास किया और संचित पानी से चना व अलसी की खेती कर सुखाड़ का मुकाबला आसानी से किया। चना व अलसी दोनों ही सिर्फ नमी चाहने वाली फसलें हैं और दलहनी होने के कारण खेत की नमी को अधिक दिनों तक संरक्षित भी रखती हैं।

यहां यह उल्लेखनीय है कि कम पानी की फसलें इस विधि से आसानी से उत्पादित की जा सकती हैं।

प्रक्रिया

खेत की मेड़बन्दी एवं गड्ढा बनाना

खेत के ढलान वाले हिस्से में एक गढ्ढा बनाया गया, ताकि पानी का बहाव आसानी से गढ्ढे की तरफ हो सके। गढ्ढे की लम्बाई 20 मीटर, चौड़ाई 20 मीटर व गहराई 3 मीटर थी। तत्पश्चात् खेत के चारों तरफ मेड़बन्दी की गयी, जिससे पानी बाहर न जा सके और वर्षा का जो भी जल हो, वह उसी गढ्ढे में संचित हो।

वर्षा जल संग्रहण

बारिश का पानी उस गढ्ढे में एकत्र हुआ और इस प्रकार इतना पानी एकत्र हो गया कि एक एकड़ खेत हेतु एक बार के लिए सिंचाई का पानी उपलब्ध हुआ।

चना एवं अलसी की खेती

सबसे पहले खेत में पलेवा कर दिया। तत्पश्चात् चना एवं अलसी की बुवाई सामान्य तरीके से कर दी गयी। खेत में पलेवा के कारण नमी थी और चना व अलसी दोनों ही कम पानी की फसलें हैं। अतः दुबारा पानी के बगैर ही उपज प्राप्त हुई।

देख-रेख एवं मरम्मत कार्य

खेत में बने गढ्ढे की देख–रेख एवं मरम्मत का कार्य किसान स्वयं करते हैं। इस प्रकार एक साथ दो कार्य होता है। खेती–बाड़ी की देख–भाल भी होती है और तालाब की मरम्मत भी होती रहती है ताकि अगले वर्ष जल–संचयन के लिए गढ्ढा पर्याप्त रहे।

खेत के ढालू वाले भाग में गड्ढा खोदकर वर्षा जल संचयन करना और उससे कम पानी चाहने वाली चना, अलसी की खेती कमठा के दिनेश के लिए बहुत ही लाभप्रद सिद्ध हुई।

लागत-लाभ विवरण

कार्य की प्रकृति	आकार/ क्षेत्रफल	लगने वाला मानव श्रम	कुल मूल्य	लाभ
गड्ढे की खुदाई	20 ×20 ×3 मीटर (लम्बाई, चौड़ाई,गहराई)	रु० 600 × 100	रु० 60,000	◆ खेत में गड्ढा एवं मेड़बन्दी करने से खेत का पानी खेत में ही रोक कर वर्षा जल को बरबाद करने से बचाया जा सका है। ◆ खेत में पानी रुकने से भू-गर्भ जल के स्तर को स्थिर करने की प्रक्रिया को बढ़ावा दिया जा रहा है। ◆ खेती के लिए सिंचाई हेतु पानी उपलब्ध होने से खेती की तरफ लोगों का रूझान फिर से बढ़ने लगा है। ◆ इस तरह के कार्य को नरेगा जैसी योजनाओं से जोड़ा जाने लगा है, जिससे काम की सार्थकता बढ़ी है। ◆ किसान सिर्फ खेती से अपने परिवार का भरण-पोषण आसानी से कर रहा है। ◆ कार्य का प्रसार हो रहा है।
मेड़बन्दी	200 डिसमिल	20 ×100	2000	
योग			**रु० 62,000**	

सफल अनुभव

जनपद जालौन, विकास खण्ड – डकोर, गांव कमठा के निवासी 28 वर्षीय श्री दिनेश पुत्र श्री बलखण्ड जाति से चमार हैं। इनके पास कुल दो एकड़ खेती तथा परिवार में सदस्यों की संख्या 5 है। खेती ही इनकी आजीविका का मुख्य आधार है, परन्तु विगत 6–7 वर्षों से लगातार पड़ रहे सूखा की वजह से खेती बाधित होने लगी। खेती की जमीन उबड़–खाबड़ होने के कारण रबी की फसल तो पहले ही नहीं हो पा रही थी, खरीफ की फसल भी अब न होने से इनके सामने परिवार चलाने का संकट उत्पन्न हो गया। ऐसी परिस्थिति से मुकाबला करने के लिए इन्होंने वर्ष 2009 में अपने 100 डिसमिल खेत में ढालू की तरफ वाली जमीन में एक गढ्ढा खोदा और खेत की मेड़बन्दी भी चारों तरफ से कर दी। इसका लाभ यह हुआ कि इनके खेत में वर्षा जल संचित हुआ और एक एकड़ की एक सिंचाई के लिए पर्याप्त पानी उपलब्ध हो गया। तब इन्होंने खेत में पलेवा करके कम पानी चाहने वाली फसल चना व अलसी की खेती की। बीच–बीच में लाइन बनाकर उसमें सरसों की बुवाई भी कर दी। इस वर्ष इन्हें अच्छी उपज प्राप्त हुई। इसे इन्होंने स्वयं प्रयास व पत्नी के सहयोग से किया। जाति के आधार पर इनको नरेगा की योजनाओं से भी जोड़ा गया और अगले वर्ष इनके शेष बचे 100 डिसमिल की मेड़बन्दी और गढ्ढे को तालाब का रूप प्रदान करने के लिए नरेगा के तहत् कार्य किया गया, जिससे इनको कई लाभ हुए –

- पहला तो यह कि अपने खेत पर ही काम करने के लिए सरकार से मजदूरी मिली।
- खेती की जा सकी, जिससे परिवार का भरण–पोषण आसान हो गया।

अब ये अपने खेत की मेड़ों पर कुछ फलदार वृक्षों को लगाने के साथ–साथ सब्ज़ी उत्पादन भी शुरू कर रहे हैं। इनका कहना है कि वर्षा जल संचयन से हमें तो फायदा हो ही रहा है, साथ ही अपने आस–पास के किसानों को भी इसका लाभ मिल रहा है।

सूखे में तिल की खेती

तिल हमीरपुर के किसानों की परम्परागत फसल है, जिसने न सिर्फ किसानों को सूखे से मुक्ति दिलाई, वरन् उनकी पौष्टिकता भी बढ़ाई है।

संदर्भ

बुन्देलखण्ड में अनेक वर्षों से सूखे की स्थिति उत्पन्न होती चली आ रही है। वर्षा कम होना, समय पर न होना आदि और इन्हीं के चलते अब स्थिति यह आ गयी है कि ''किसान कहता है कि पहले केवल ऊपर का सूखा पड़ता था, अब नीचे का भी सूखा है।'' सूखा से सुखाड़ बनने के कारण खेती करना बेहद घाटे का सौदा साबित हो रहा है। फसल के लिए जो बीज बोते हैं, वह भी मारा जाता है। इसी गम्भीर समस्या से निजात पाने के लिए हमीरपुर जनपद के विकासखण्ड मौदहा के गांव पिपरौंदा, असुई, तिंदुही, सायर गांव के किसानों ने अपनी उन परम्परागत फसलों, जिनमें पानी समय से व अधिक मात्रा में चाहिए, को छोड़कर कम पानी वाली फसलें बोने का निर्णय लिया, जो आसानी से उपज देने वाली हों। इसके साथ ही पशुधन के लिए भी चारा उपलब्ध हो सके। इसीलिए पूर्व के अनुभवों के आधार पर किसानों ने तिल की खेती करने का निश्चय किया। यह इसलिए भी सुविधाजनक था, क्योंकि तिल बुन्देलखण्ड की परम्परागत फसलों में शामिल रही है। एक ओर छोटे किसान तिल की खेती करके जहां सूखे की स्थिति का प्रभाव कम कर रहे हैं, वहीं बड़े किसान भी इससे लाभ कमा रहे हैं।

परिचय

तिल मुख्यतः दो प्रकार की होती है – काली तथा सफेद। तिल का प्रयोग मुख्य रूप से तेल निकालने, विभिन्न प्रकार के पकवान बनाने, व्रत के समय एवं अनेकों प्रकार के सुगन्धित तथा औषधीय तेल बनाने में किया जाता है। तिल की खली पशुओं को भी खिलाई जाती है। यह स्वाद में मीठी तथा चिकनी होती है। शीतलता तथा पौष्टिकता के गुणों से भरपूर होने के कारण स्वास्थ्यवर्धक मानी जाती है। काले तिल का प्रयोग हवन, पूजन, यज्ञ, आदि में किया जाता है। जबकि सफेद व काले दोनों तिलों का प्रयोग तेल निकालने, व्रत के दौरान फलाहार आदि में किया जाता है। गुजरात, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र इसके प्रमुख उत्पादक राज्य हैं।

प्रक्रिया

भूमि का प्रकार

तिल के लिए पडुआ तथा मार मिट्टी (स्थानीय नामानुसार) दोनों ही मुफीद हैं।

खेत की तैयारी

गर्मी में रबी की फसल कटने के बाद खेत की दो–तीन बार जुताई करने के बाद मिट्टी की जांच करवानी पड़ती है। उसके बाद सम्भव हो तो जिप्सम का प्रयोग करते हैं, जिससे खेत की मिट्टी भुरभुरी हो जाती है।

बीज की प्रजाति व मात्रा

तिल मुख्यतः पी–12, चौमुखी, छःमुखी व आठ मुखी चार प्रकार की होती है। किसान बीज की उपलब्धता के आधार पर किसी भी प्रकार का बीज बोते है। एक एकड़ में डेढ़ किग्रा0 बीज की आवश्यकता होती है।

बीज का शोधन

बुवाई के पूर्व बीज का शोधन करना आवश्यक होता है। पानी में ट्राइकोडर्मा नामक दवा मिलाकर बीज के ढेर में छिड़काव कर उसे छांव में सूखने दिया जाता है। जैसे ही बीज सूखकर तैयार हो जाता है, उसकी बुवाई कर देते हैं।

बुवाई का समय व विधि

जून के अन्त में या जुलाई के प्रारम्भ मे जैसे ही थोड़ी सी भी बरसात होती है, उसके बाद एक जुताई करके तिल की बुवाई छिंटकवा विधि से कर देते हैं।

खर-पतवार नियंत्रण

बुवाई के पश्चात् जैसे ही फसल ऊपर आती है, तो सावधानी बरतते हुए लासो नामक रसायन पाउडर का छिड़काव कर दिया जाता है। इससे खर–पतवार की सम्भावना समाप्त हो जाती है। निराई–गुड़ाई करने से खर–पतवार भी नियन्त्रित होता है और अच्छी पैदावार भी मिलती है।

सिंचाई

तिल की खेती में सिंचाई आदि की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

फसल की सुरक्षा

फसल के बढ़ने पर उसकी सुरक्षा आवश्यक होती है अन्यथा आवारा व जंगली पशु तिल की फसल को सबसे अधिक नुकसान पहुंचाते हैं।

मात्र नमी चाहने वाली तिल को सर्वाधिक खतरा आवारा व जंगली पशुओं से है। सुरक्षा उपायों को अपनाते हुए तिल से बेहतर उपज मिल सकती है।

तैयार होने की अवधि

30–40 दिनों में फसल 15 इंच से 18 इंच तक लम्बी हो जाती है तथा इसी के बाद इसके पकने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। 90 से 120 दिनों के बीच फसल तैयार हो जाती है, जिसकी कटाई की जाती है।

कटाई व झराई

तिल की कटाई हाथ से की जाती है। काटने के बाद चार से सात दिनों तक आवश्यकतानुसार कटी हुई फसल को सुखाया जाता है। उसके बाद कटी हुई फसल से तिल को झाड़ लिया जाता है। यह प्रक्रिया तीन बार की जाती है। पहली बार तिल झाड़ने के बाद उसे फिर सूखने के लिए छोड़ दिया जाता है तथा दो–तीन दिन के अन्तर में उसे पूरी तरह पौधों से निकाल लिया जाता है।

उपज

एक एकड़ में 5 कुन्तल तिल की उपज प्राप्त होती है।

अन्य प्रामियाँ

तिल के दाने निकालने के पश्चात् बचे हुए झाड़–झंखाड़ को जलाने के काम में लाया जाता है। जाड़े या बरसात की स्थिति में यह अधिक उपयोगी जलौनी है।

लागत-लाभ विवरण (एक एकड़ हेतु)

लागत विवरण	मात्रा/दर	मूल्य	उत्पादन	मूल्य	शुद्ध लाभ
जुताई	2 बार/ 300 प्रति बार	रु० 600.00	3 कुन्तल दर रु० 5000.00/कुन्तल	रु० 15000.00	रु० 15500.00 – 3225.00 = रु० 12275.00
बीज	1.5 किग्रा/ रु० 100.00	रु० 150.00	जलौनी	रु० 500.00	
जिप्सम 3 (एक बार मिलाने पर दो वर्ष के लिए)	2 बोरी	रु० 225.00			
मजदूरी (बखराई, बुवाई, कटाई, झरियाई आदि)		रु० 2000.00			
सुरक्षा व पाउडर		रु० 250.00			
योग		**रु० 3225.00**		**रु० 15500.00**	**रु० 12275.00**

वर्षा कम होने से किसानों ने बदली फसल और की अरण्डी की खेती

बारिश की कमी से परेशान किसानों के समक्ष पलायन ही एक मात्र विकल्प था, परन्तु क्योंटरा में किसानों ने अरण्डी की खेती और उसके पत्तों पर रेशम कीट पालन का विकल्प तलाशा।

संदर्भ

विकास खण्ड अमरौधा जनपद कानुपर देहात के किसान गेंहू, काली–पीली सरसों, जौ आदि की खेती बहुतायत मात्रा में करते थे किन्तु विगत कई वर्षों से क्षेत्र में पर्याप्त वर्षा न होने के कारण लोगों के लिए खेती एक संकट बन गयी। लोग खेती से मुंह मोड़कर दिल्ली, गुजरात, मुम्बई आदि शहरों में जाकर मजदूरी करने लगे। क्योंटरा गांव में इस समस्या से संघर्ष कर रहे लोगों को बुजुर्गों ने अरण्डी की खेती करने की प्रेरणा दी और शुरू हुई अरण्डी की खेती एवं अरण्डी रेशम कीट पालन।

परिचय

अरण्डी के तेल का औषधीय उपयोग है। अनेक बीमारियों आदि में अरण्डी का तेल अचूक दवा के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। इसके अतिरिक्त अरण्डी का तेल व खली का साबुन बनाने के लिए उपयोग किया जाता है। अरण्डी का तना कीटनाशक बनाने के काम में आता है तथा पत्ते एवं जड़ें दवाओं के निर्माण में प्रयोग की जाती हैं। अरण्डी की फसल मिश्रित बोने पर नीचे वाली फसल में नमी बनी रहती है और सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। पौधे को काटकर जैविक खाद बनायी जाती है। इस प्रकार अरण्डी एक बहुउपयोगी फसल है।

प्रक्रिया

भूमि का चयन

अरण्डी की खेती के लिए ऊंची–नीची जमीन तथा जहां पानी का जमाव न होता हो, ऐसा खेत उपयुक्त होता है। इसे कम पानी वाले सूखे एवं गर्म जलवायु वाले स्थानों पर उगाया जा सकता है।

खेत की तैयारी

मई के अन्तिम सप्ताह व जून के प्रथम सप्ताह में खेत की दो बार जुताई करते हैं, जिससे तेज सूर्य के प्रकाश से मृदा का शोधन हो तथा बरसात का पानी समुचित रूप से भूमि के अन्दर तक जा सके और खेत की तैयारी करने में सरलता हो। जबकि बीज बोने से पहले भूमि को 2–3 बार हल या ट्रैक्टर द्वारा 20–25 सेमी0 की गहराई तक जुताई करनी चाहिए तथा खेत से फसलों के अवशेष को भी निकाल देना चाहिए।

बीज की बुवाई एवं बीज मात्रा

अरण्डी की बुवाई मुख्यतः दो प्रकार से की जाती है। एक तो इसे अन्य फसलों के साथ मिश्रित करके बोया जाता है, दूसरे इसे खेतों की मेड़ों पर लगाते हैं। सामान्यतः इसकी बुवाई मिश्रित फसल के रूप में ही करते हैं। एक एकड़ में 7 किग्रा0 बीज की आवश्यकता होती है।

बुवाई का समय व विधि

अरण्डी की बुवाई सामान्यतया वर्षा होने पर उचित रहती है, लेकिन बोने का उचित समय जुलाई, अगस्त एवं सितम्बर माह माना जाता है। इसका अंकुरण बुवाई के 7–10 दिनों के अन्दर होता है।

बुवाई की विधि

सामान्यतः अरण्डी की बुवाई गढ्ढों में की जाती है। मगर किसान इसे छिटकवां अथवा कतार में भी बोते हैं। कतार से कतार की दूरी 5x5 फीट की होती है। कतार में बोने पर एक एकड़ में 1050 पौध लगते हैं। गढ्ढों में बुवाई करने की दशा में प्रत्येक गढ्ढों में 2–3 किग्रा0 सूखी गोबर की खाद मिट्टी के साथ अच्छी तरह मिलाकर प्रयोग करना चाहिए।

निराई-गुडाई
बुवाई के तीन सप्ताह बाद यानी 21 दिन बाद पहली निराई व विरलीकरण करके पौधे की दूरी ठीक कर ली जाती है। अरण्डी के जीवन काल में तीन बार निराई की जाती है।

सिंचाई
वर्षा होने पर सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती, मगर बिल्कुल सूखे की स्थिति में कभी–कभार सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है।

तैयार होने का समय व तुड़ाई
सामान्यतः अरण्डी की फसल 5–6 माह में पक कर तैयार हो जाती है। इसके पकने का समय मार्च होता है। पकने के बाद इसकी फली को तोड़ लेते हैं, जिसे स्थानीय भाषा में बरूआ कहते हैं। पुनः इसे गोबर में दबा कर रख देते हैं। जब यह अच्छी तरह सड़ जाता है, तो फली अपने–आप निकल आती है। फली तोड़ने के बाद डण्ठल की कटाई कर लेते हैं।

5-6 माह में तैयार होने वाली अरण्डी के पत्तों पर 3 बार रेशम कीट पालन किया जाता है और एक एकड़ खेत से 21 किग्रा० रेशम ककून प्राप्त होती है। साथ ही रेशम कीटों से निकली खाद सब्जियों के लिए मुफीद होती है।

उपज
एक बीघे में औसतन 4–5 कुन्तल अरण्डी प्राप्त होती है। इसके एक किग्रा0 बीज से 550 ग्राम तेल प्राप्त होता है।

अरण्डी से अन्य लाभ
- **रेशम कीट पालन से अतिरिक्त आय**
  अरण्डी बोने के दो माह बाद जब पत्तों की उपलब्धता हो जाती है। तब उस पर रेशम कीट पालन किया जाता है। रेशम कीट पत्तों से ही अपना भोजन लेता है। अरण्डी के पत्ते और कोई भी जानवर नहीं खाते। एकमात्र रेशम कीटों का भोजन होने से ये सुरक्षित रहते हैं। एक एकड़ खेत में अरण्डी के पत्तों पर 14000 कीट पाले जाते हैं। एक कीट रेशम बनाने में 25 दिन का समय लेता है। इस प्रकार अपने पूरे जीवन काल में एक अरण्डी पौधे से तीन बार रेशम कीट पालन किया जाता है। एक एकड़ खेत में पाले गये रेशम कीट से 21 किग्रा0 रेशम ककून प्राप्त होता है।

- **बीट से खाद बनाना**
  रेशम के कीटों से निकली बीट का प्रयोग खाद के रूप मे किया जाता है। इसका प्रयोग सब्ज़ी की फसल में किया जाता है। एक एकड़ अरण्डी पर किये गये रेशम कीट पालन से एक कुन्तल बीट की प्राप्ति होती है।

लागत-लाभ विवरण (एक एकड़ हेतु)

लागत विवरण	मात्रा/दर	मूल्य	उत्पादन	मूल्य	शुद्ध लाभ
जुताई	तीन बार दर रु० 300	रु० 900.00	बीज 4 कुन्तल दर रु० 2250 प्रति कु०	रु० 9000.00	रु० 16104.00 – 2240.00 = रु० 13864.00
बीज	7 किग्रा/ दर रु० 20 प्रति किग्रा	रु० 140.00	रेशम ककून 21 किग्रा दर रु० 324 प्रति किग्रा	रु० 6804.00	
निराई	3 बार दर रु० 400	रु०1200.00	बीट 1 कुन्तल दर रु० 300 प्रति कु०	रु० 300.00	
योग		**रु० 2240.00**		**रु० 16104.00**	**रु० 13864.00**

अरहर की खेती व पशुओं के लिए चारा
(अरहर व बाजरा की मिश्रित खेती)

अरहर के साथ बाजरे की खेती दलहन के साथ जानवरों को चारा भी देती है। वैसे तो अरहर की फसल लम्बी अवधि की होती है, फिर भी बारिश की बाट जोहते किसान के लिए यह फसल लाभप्रद है।

संदर्भ
सूखाग्रस्त कानपुर देहात जनपद का विकास खण्ड अमरौधा अत्यन्त पिछड़ा इलाका है, जहां सरकार की योजनाएं अपने असली स्वरूप में नहीं पहुंच पाती हैं। ऐसे में वर्ष–दर–वर्ष बनती सूखा की स्थितियों ने इसे दुर्गम बना दिया है। यहां की मुख्य फसल धान, गेंहूं होने के बाद भी लोगों की नाजुकता बनी रही, क्योंकि इन दोनों के लिए पानी की आवश्यकता होती है। ऐसे में लोगों ने अरहर के साथ बाजरे की मिश्रित खेती करने का मन बनाया, क्योंकि एक तो यह कम लागत वाली फसल होती है, जिसमें पानी की आवश्यकता न के बराबर होती है। दूसरे अरहर के साथ बाजरे की खेती करने से दलहन के साथ–साथ जानवरों का चारा भी मिल जायेगा। हालांकि अरहर लम्बी अवधि की फसल होने के कारण मात्र एक ही फसल ली जा सकेगी, फिर भी सूखे की स्थिति में जबकि किसान वर्षा की बाट जोहता बैठा रहता है, ऐसे में यह फसल लाभप्रद सिद्ध होती है।

प्रक्रिया
खेत की तैयारी
मई माह में सूखी जुताई करके खेत को छोड़ दिया जाता है। इससे उसके अनावश्यक खर–पतवार सूख जाते हैं। जुलाई माह में पहली वर्षा के पश्चात् दो बार जुताई की जाती है और उसमें एक ट्राली गोबर खाद डालकर खेत तैयार किया जाता है।

फसल चयन
अरहर व बाजरा की खेती।

बीज की प्रजाति
मुख्यतः देशी बीजों का ही उपयोग किया जाता है।

बीज की मात्रा
एक एकड़ खेत के लिए 2 किग्रा0 अरहर एवं 500 ग्राम बाजरा का बीज आवश्यक होता है।

बुवाई का समय व विधि
अरहर की बुवाई लाइनवार की जाती है। पंक्ति से पंक्ति की दूरी एक मीटर रखी जाती हैं और इनके बीच में दो कतार में बाजरा की बुवाई की जाती है, जिनकी आपस में दूरी 1.5 फीट होती है।

निराई व विरलीकरण
एक माह पश्चात् खेत की निराई की जाती है। निराई के समय जो पौधे कमजोर होते हैं, उन्हें निकाल कर पौध से पौध की दूरी 1.5 मीटर कर दी जाती है। इससे पौधों की बढ़वार अच्छी होती है। बिरलीकरण के दौरान निकाले गये ये पौधे हरे चारे के रूप में इस्तेमाल किये जाते हैं।

खाद
बुवाई के 33–34 दिन बाद खेत में खाद डाली जाती है। एक एकड़ खेत में 25 किग्रा0 यूरिया, 10 किग्रा0 डी0ए0पी0 मिलाकर डाली जाती है।

तैयार होने की अवधि व कटाई
बाजरा तीन माह पश्चात् कट जाता है। जबकि अरहर की कटाई मार्च के अन्त से शुरू हो जाती है।

उपज
एक एकड़ खेत से 2.18 कुन्तल बाजरा एवं 3.22 कुन्तल अरहर की प्राप्ति होती है। जबकि 4 कुन्तल हरा चारा एवं 3.31 कु0 जलौनी लकड़ी भी मिल जाती है।

लागत-लाभ विवरण (एक एकड़ हेतु)

लागत विवरण	मात्रा/दर	मूल्य	उत्पादन	मूल्य	शुद्ध लाभ
जुताई	तीन बार/ रु०150.00 प्रति	रु० 450.00	अरहर 3.22 कु० दर रु० 4000 कुन्तल	रु० 12880.00	रु० 16671.00 – 2057.00 = रु० 14614.00
बीज अरहर	2 किग्रा/ रु० 60 प्रति किग्रा	रु० 120.00	बाजरा 2.18 कु० दर रु० 1100 कुन्तल	रु० 2398.00	
बाजरा	500 ग्राम/ रु० 40 प्रति किग्रा	रु०20.00			
यूरिया व डी.ए.पी.	35 किग्रा	रु० 267.00	4 कुन्तल हरा चारा	रु० 400.00	
गोबर की खाद	2 ट्राली	रु० 600.00	जलौनी लकड़ी 3.31 कु० 300 प्रति गट्ठर	रु० 993.00	
निराई व विरलीकरण		रु० 600.00			
योग		**रु० 2057.00**		**रु० 16671.00**	**रु० 14614.00**

बाजरे से जहाँ पशुओं के लिए चारा मिल जाता है, वहीं अरहर से दलहन मिलने के साथ ही जलौनी लकड़ी भी मिलती है, जो अतिरिक्त आमदनी होती है।

सफल अनुभव

ग्राम नगीना विकास खण्ड अमरौधा, कानपुर देहात की निवासिनी 38 वर्षीय श्रीमती माया देवी ने बताया कि हमारे पास कुल एक एकड़ खेत एवं परिवार में पांच सदस्य हैं। पूरे परिवार की आजीविका खेती पर ही टिकी हुई है। लगातार पड़ रहे सूखा ने स्थिति को बदहाल किया। पूरा परिवार खेती से जुड़ा हुआ था, परन्तु खाने के लिए पर्याप्त अनाज नहीं मिल पाता था। आजीविका के अन्य स्रोतों को इन्होंने जानना प्रारम्भ किया और उसी क्रम में इनकी मुलाकात अर्पित ग्रामीण विकास संस्थान के कृषि सलाहकार डा0 सतीश सूबेदार से हुई। इन्होंने खेती में कुछ परिवर्तन करने की सलाह दी और तब माया देवी ने उनके बताये अनुसार काम करना प्रारम्भ किया है। माया देवी ने बताया कि हमने अपने एक एकड़ खेत में अरहर व बाजरा की मिश्रित खेती इस सोच के साथ की कि हमारे साथ–साथ हमारे पशुओं के लिए चारा भी उपलब्ध हो जायेगा। उपज के बारे में चर्चा करते हुए बताया कि जब 120 दिन में बाजरा कट गया तब अरहर को फैलने एवं पर्याप्त धूप मिलने के कारण पौधों का समुचित विकास हुआ। पौधों में नीचे की भी अनेक टहनियों में फूल–फलियां लगीं और पौधा स्वस्थ होने के कारण फूलों का झरना नहीं के बराबर था। इस प्रकार हमें एक एकड़ में 3.22 कुन्तल अरहर व 2.18 कुन्तल बाजरा मिलने के साथ ही जलौनी लकड़ी के रूप में अरहर का डण्ठल व पशुओं के चारा के रूप में हरा बाजरा भी मिल गया, जिससे हमें सूखे से निपटने में सहायता मिली। आज हमारी खेती देखकर गांव के अन्य लोग इसे अपना रहे हैं।

सूखे बुन्देलखण्ड में कम पानी में पैदा हो सकती है : ज्वार

परम्परागत फसलों में 3-4 महीनों में तैयार होने वाली ज्वार एक ऐसी फसल है, जिसे यदि एक बारिश भी न मिले तो भी उपज प्रभावित नहीं होती है।

संदर्भ

सूखा प्रभावित बुन्देलखण्ड के जनपद ललितपुर का विकासखण्ड विरूधा मुख्यतः उबड़–खाबड़ भूमि एवं ऊसर भूमि वाला क्षेत्र है, जहां लोगों की आजीविका का मुख्य साधन खेती होने के बावजूद सिंचाई साधनों की अनुपलब्धता एवं सरकारी उदासीनता के कारण खेती से अपना जीवन–यापन करने में सक्षम नहीं हो पाते हैं। इसी विकास खण्ड का एक गांव है – कपासी। जहां सूखा के चलते लोगों को जीवन यापन करने में काफी कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है। यह क्षेत्र पिछले 10 वर्षों से लगातार सूखा की परिस्थिति को झेल रहा है। एक तो कम वर्षा हो रही है, दूसरे अनियमित एवं कम समय में अधिक वर्षा भी हो रही है। यही कारण है कि पिछले वर्ष कम पानी की फसलें अधिक बारिश के कारण गल गयीं, लोगों को बीज भी वापस नहीं मिला। ऐसी स्थिति में लोगों ने अपनी परम्परागत फसलों ज्वार, बाजरा आदि को याद किया और उसे पुनः अभ्यास में लाकर उससे अपनी आजीविका सुनिश्चित करने का प्रयास किया।

प्रक्रिया

खेत की तैयारी

जून में ही खेत की एक जुताई कर छोड़ दिया जाता है।

बीज की प्रजाति

ज्वार की देशी प्रजाति का प्रयोग करते हैं।

बीज की मात्रा

एक एकड़ खेत हेतु 10 किग्रा0 बीज की आवश्यकता पड़ती है।

बुवाई का समय व विधि

ज्वार की बुवाई एक बरसात होने के बाद जुलाई प्रथम सप्ताह में छिंटकवा विधि से करते हैं।

सिंचाई

अगर एक बरसात हो जाती है, तो ज्वार की खेती के लिए अति उत्तम होता है। यदि बारिश न भी हो, तो उपज पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है।

फसल की सुरक्षा

छुट्टा पशुओं से फसल की सुरक्षा करनी पड़ती है। साथ ही चारा के रूप में फसल चोरी हो जाने का भी भय रहता है। अतः फसल की सुरक्षा अति आवश्यक हो जाती है।

निराई–गुड़ाई

समय–समय पर इसकी निराई–गुड़ाई करते रहना पड़ता है। अन्यथा फसल की बढ़वार एवं उपज पर विपरीत असर पड़ता है।

कटाई का समय

ज्वार की फसल अवधि 120–130 दिनों की होती है। अक्टूबर अन्तिम सप्ताह से लेकर नवम्बर प्रथम सप्ताह तक इसकी कटाई की जाती है।

उपज

एक एकड़ में लगभग 15 कुन्तल उपज होता है।

लागत-लाभ विवरण (एक एकड़ हेतु)

लागत विवरण	मूल्य	उत्पादन	मूल्य	शुद्ध लाभ
जुताई एक बार/ रु० 300.00	रु० 300.00	अनाज 10 कुन्तल दर रु० 1400 प्रति कुन्तल	रु० 14,000.00	रु० 14,500.00– 3,500.00 = रु० 11,000.00
बीज 10 किग्रा/दर रु०20.00 प्रति किग्रा	रु० 200.00	भूसा	रु० 500.00	
बुवाई, निराई, गुड़ाई आदि	रु० 300.00			
कटाई मजदूरों द्वारा	रु० 2500.00			
थ्रेसिंग मशीन से	रु० 200.00			
योग	**रु० 3500.00**		**रु० 14,500.00**	**रु० 11,000.00**

ज्वार की फसल लगाकर कपासी के महेन्द्र सिंह ने जहाँ सूखे से मुकाबला करते हुए परिवार की खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित की, वहीं इसी फसल से कर्ज अदायगी भी की।

सफल अनुभव

ग्राम कपासी के रहने वाले 45 वर्षीय श्री महेन्द्र सिंह पुत्र श्री ओमकार सिंह अपने दो भाइयों 42 वर्षीय श्री सुरेन्द्र सिंह व 57 वर्षीय श्री राजेन्द्र सिंह के साथ रहते हैं। इनका संयुक्त परिवार है। इनके पास पुश्तैनी 5 एकड़ जमीन है।

इन्होंने बताया कि पिछले 10 वर्षों में अधिकांश बार सूखे की स्थिति रही है या फिर बारिश की अनियमितता के कारण भी दिक्कतें आईं। पिछले वर्ष अर्थात् वर्ष 2007 में हमने अपने खेत मे बैंक से कर्ज लेकर मक्का तथा उर्द लगाया था, जो अधिक वर्षा के कारण गल गयी। हम बैक का कर्जा भी वापस नहीं कर पाये। साल–दर–साल नुकसान झेलते हमारी आजीविका का संकट खड़ा हो गया।

इन्हीं सब स्थितियों के चलते हमने इस बार अपने खेत में ज्वार की फसल लगाने का फैसला किया क्योंकि खेत में कुछ तो लगाना ही था। हम इस बार बिना कर्ज लिये खेती करने को तत्पर थे। सो ज्वार के बारे में पता करके बगल के गांव धौर्रा से 20 रू0 किग्रा0 की दर से 50 किग्रा0 ज्वार का बीज खरीदकर अपने 5 एकड़ खेत में बो दिया। मजदूरों से निराई गुड़ाई कराया साथ में हम तीनों भाइयों ने भी काम किया। फसल की सुरक्षा का काम हमने स्वयं किया। बीच–बीच में बारिश हुई तथा नहीं भी हुई, पर हमारे खेत पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा।

फसल तैयार होने के बाद हमने फसल की कटाई की और उपज के तौर पर हमें 60 कुन्तल अनाज एवं लगभग 3000.00 रू0 का भूसा मिला। अनाज को हमने 1400.00 रू0 प्रति कुन्तल की दर से बेचकर रू0 84,000.00 की नगद आमदनी प्राप्त की। हमें अब पता चला कि अपने खेत में परम्परागत अनाज को पैदा करके अच्छी आमदनी प्राप्त कर सकते हैं। हमारे इस प्रयास को देखकर गांव के अन्य लोग भी इस तरह की खेती अपना रहे हैं।

सूखे के दौरान छोटी व मिश्रित खेती ने दिया लाभ

मिश्रित खेती में सब्ज़ियों व मसालों को प्राथमिकता देते हुए किसानों ने न सिर्फ सूखे के कारण हुए नुकसान को कम किया, वरन् शहर की जरूरतों को भी पूरा करने में अहम् भूमिका निभाई।

संदर्भ

मिश्रित खेती के अन्तर्गत किसानों द्वारा औसतन 15–20 फसलें एक साथ ली जाती हैं, जिनके लिए पानी, खाद तथा अन्य जैविक एवं सस्य क्रियाएं समान व एक बार में ही सबको लाभान्वित करने वाली होती हैं।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र वैसे तो नैसर्गिक रूप से सम्पन्न है, किन्तु मौसम के बदलते मिजाज ने क्षेत्र की सम्पन्नता का ह्रास करने में अहम् भूमिका निभाई। पिछले 10 वर्षों में 7 बार पड़ चुके सुखे ने लघु सीमान्त किसानों की कमर ही तोड़ दी थी। ऐसे में इन किसानों को अपनी परम्परागत कृषि पद्धति याद आयी और इन्होंने पुनः उसी तर्ज पर काम करना प्रारम्भ कर दिया। हालांकि कृषि वैज्ञानिक व जानकार खेती में मिश्रित प्रक्रिया की पैरवी लगातार कर रहे हैं, परन्तु इन तकनीकों से दूर छोटे सीमान्त किसानों ने अपनी खेती में अपना जो प्रयोग किया, उससे वे सुखे का मुकाबला करने में अपने–आपको सक्षम पा रहे हैं।

जनपद ललितपुर के विकास खण्ड तालबेहट के दर्जनों गांवों में लघु सीमान्त किसानों के पास इस तरह के परम्परागत ज्ञान हैं, जिन्हें उन्होंने विकास के क्रम में विस्मृत कर दिया था, परन्तु लगातार पड़ रहे सूखे ने इन्हें पुनः पीछे की ओर लौटने पर विवश किया और आज ये सूखा आपदा के बावजूद न केवल अपने को बल्कि शहरों की जरूरत पूरी करने हेतु सब्ज़िया और मसाले उपलब्ध करा पा रहे हैं।

प्रक्रिया

मिश्रित फसलों के नाम एवं फसल चक्र

प्रायः किसानों द्वारा अदरक, हल्दी, अरबी, अमीठा, रतालू, सेम, मिर्च, टमाटर, बैंगन, शकरकन्द, गुलाखरी, टिण्डा, मूली, लौकी, करैला, तरोई, गाजर, गोभी, धनिया, भिण्डी व पपीता की खेती की जाती है। इनके द्वारा कृषि उत्पादन में फसल चक्र को अपनाया जा रहा है। एक वर्ष सब्जी उत्पादन के उपरान्त उसमें दूसरी फसल लगायी जाती है।

फसल विभाजन

फसलों की प्रकृति के आधार पर इनका विभाजन निम्नवत् किया जा सकता है–

लता वाली फसलें : सेम, रतालू, तरोई, करेला, लौकी, अमीठा

कन्द वाली फसलें : गुलाखरी, मूली, गाजर, शकरकन्द, अरबी, हल्दी, अदरक

जमीन के ऊपर की फसलें : धनिया, गोभी, भिण्डी, पपीता, टिण्डा, बैंगन, टमाटर, मिर्च

भूमि उपयोग

15 से 20 डिसमिल भूमि पर ही जमीन के अन्दर कन्द वाली फसल, जमीन के ऊपर मिश्रित व बेल वाली फसल तथा फलदार वृक्ष लगाकर एक साथ कई उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

खेत की तैयारी व पौध रोपण

खेत की तैयारी के अन्तर्गत माह जून से ही हल–बैल से अच्छी तरह जुताई कर देते हैं। एक बरसात होने पर जब जमीन में नमी अच्छी होती है, उसी समय तैयार नर्सरी से पौधों को लाकर खेत में रोपाई कर देते हैं। सभी फसलों को लगाते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि नीचे जड़ों तथा ऊपर बेलों व पौधों को बढ़ने के लिए पर्याप्त सीन मिलता रहे।

ज्वार की फसल लगाकर कपासी के महेन्द्र सिंह ने जहाँ सूखे से मुकाबला करते हुए परिवार की खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित की, वहीं इसी फसल से कर्ज अदायगी भी की।

फसल लगाने की अवधि

धनिया, गाजर, गोभी को छोड़कर शेष फसलें माह जून–जुलाई में लगायी जाती हैं। जबकि धनिया, गाजर, गोभी की बुवाई का समय अक्टूबर से जनवरी तक है।

बीज की प्रजाति

सभी फसलों की देशी प्रजातियों के बीज का प्रयोग किया जाता है।

खाद

गोबर की खाद एवं हरी खाद का प्रयोग करते हैं। 20 डिसमिल खेत में 4 कु0 सड़ी गोबर की खाद का प्रयोग किया जाता है। यदि हरी खाद का प्रयोग करते हैं तो सड़ी गोबर के खाद की आधी मात्रा प्रयोग की जा सकती है।

निराई–गुड़ाई

खेत में खर–पतवार जमने से पौधों की वृद्धि पर असर पड़ता है। इसलिए समय–समय पर खेत की निराई करते रहते हैं, जिससे पौधों को बढ़ने का पूरा समय व जगह मिले। पूरी फसल अवधि में खेत की दो बार गुड़ाई करते हैं।

कीट व्याधि नियंत्रण

किसानों द्वारा आई0पी0एम0 तकनीक से रोग एवं कीट व्याधियों का नियंत्रण किया जाता है।

सिंचाई

किसान रहट द्वारा पारम्परिक सिंचाई पद्धति अपनाकर कम पानी में सिंचाई करते हैं। सब्ज़ियों के खेत में सिंचाई करते समय इस बात का खास ख्याल रखा जाता है कि खेत में पानी न लगने पाये और न ही नमी सूखने पाये।

फसल अवधि एवं उपज

तरोई, धनिया, मूली, गाजर का उत्पादन एक से डेढ़ माह में, मिर्च, सेम, भिण्डी, टमाटर, बैगन, लौकी, गोभी का उत्पादन दो से ढाई माह में, गुलाखरी, टिण्डा, करेला, अरवी, अमीठा, शकरकन्द का उत्पादन तीन से चार माह में तथा रतालू, हल्दी, अदरक का उत्पादन चौथे से पांचवे माह में मिलने लगता है।

लागत–लाभ विवरण (20 डिसमिल खेत)(एक वर्ष में)

फसल	बुवाई का समय	बीज की मात्रा	मूल्य	उपज समय	मात्रा	मूल्य	लगाने का तरीका	लाभ
अदरक	20 जून से 15 जुलाई	40 किग्रा	रु०3200	अन्तिम अक्टूबर से 5 जनवरी	4 कुन्तल	रु० 18000	लाइन से क्यारी में	रु० 112350 – 12715/– = रु० 99635/–
हल्दी	15 जून से 15 जुलाई	5 किग्रा	रु० 150		4 कुन्तल	रु० 12000	क्यारी में	
अरवी		5 किग्रा	रु० 150		8 कुन्तल	रु० 8000	अदरक के साथ लाइन में	
रतालू		5 किग्रा	रु० 50		2 कुन्तल	रु० 3000	अदरक के साथ झाड़ पर 2–3 किमी की दूरी पर	
अमीठा		2 किग्रा	रु० 40		2 कुन्तल	रु० 1500		
सेम	20 जुलाई से 15 अगस्त	250 ग्राम	रु० 80	जनवरी–दिसम्बर	4 कुन्तल	रु० 5000	खेत के किनारे झाड़ पर	
मिर्च	15 जुलाई से 10 अगस्त	50 ग्राम	रु० 50	सितम्बर अन्त से लगातार	3 कुन्तल	रु० 10000	अदरक के साथ क्यारी में	
टमाटर	20 जुलाई से 10 अगस्त	50 ग्राम	रु० 100	अक्टूबर से जनवरी	4 कुन्तल	रु० 4000	अलग क्यारी में	
बैंगन	15 जुलाई से 20 अगस्त	20 ग्राम	रु० 60	सितम्बर अन्त से जनवरी	8 कुन्तल	रु० 4000	टमाटर के साथ क्यारी में	
शकरकंद	20 जून से 15 जुलाई	20 किग्रा	रु० 80	नवम्बर अन्त से दिसम्बर	3 कुन्तल	रु० 3000	अलग क्यारी में	
गाजर	15 जुलाई से 10 अगस्त	50 ग्राम	रु० 70	अक्टूबर से जनवरी	5 कुन्तल	रु० 5000		
मूली	15 जुलाई से 10 सितम्बर	50 ग्राम	रु० 40		70 किग्रा	रु० 250	बैंगन टमाटर के साथ	
टिण्डा	20 जुलाई से 10 अगस्त	50 ग्राम	रु० 40	अक्टूबर से दिसम्बर	3 कुन्तल	रु० 2400		
गुलाखरी		10 ग्राम	रु० 40	दिसम्बर से जनवरी	2 कुन्तल	रु० 2000	सेम के तरीके से	
लौकी		20 ग्राम	रु० 60	अक्टूबर से दिसम्बर	3 कुन्तल	रु० 1200		
करेला		40 ग्राम	रु० 70	सितम्बर से अक्टूबर	3 कुन्तल	रु० 6000		
तरोई		50 ग्राम	रु० 40	अक्टूबर से नवम्बर	डेढ़ कुन्तल	रु०1500		
भिण्डी		50 ग्राम	रु० 70	अक्टूबर से दिसम्बर	2 कुन्तल	रु०1500	टमाटर बैंगन के साथ	
गोभी		50 ग्राम	रु० 50	अक्टूबर से जनवरी	2 कुन्तल	रु०2000	अलग क्यारी में	
धनिया	20 अगस्त से 10 सितम्बर	50 ग्राम	रु० 25	सितम्बर से जनवरी	2 कुन्तल	रु०6000	गाजर टमाटर के साथ	
पपीता	अगस्त से अक्टूबर	15 ग्राम	रु० 70	फरवरी से लगातार	4 कुन्तल	रु०16000	खेत के बीच में	
मानवश्रम			रु० 4000					
खाद मूल्य			रु० 400					
सिंचाई			रु० 3780					
योग			**रु०12715**			**रु०112350**		**रु० 99635/–**

लागत–लाभ विश्लेषण से यह स्पष्ट हो रहा है कि पूरे खेत का नियोजन बेहतर ढंग से करते हुए अच्छा लाभ कमाया जा सकता है।

सूखे बुन्देल में कृषि की एक संभावना "सन"

सूखा क्षेत्र के रूप में जाने वाले बुन्देलखण्ड में किसानों ने यहाँ की जलवायु, मिट्टी के अनुसार स्थानीय ज्ञान को विकसित करते हुए बहु आयामी फसल 'सन' को प्रोत्साहित किया है।

परिचय

बुन्देलखण्ड सदियों से ही सूखा क्षेत्र रहा है, यही कारण है कि यहां के किसानों, कृषक मजदूरों, कृषक शिल्पकारों नें यहां की परिस्थितियों के अनुरूप पद्धतियाँ और तकनीक विकसित कर जीवनशैली इजाद कर ली थी। ये फसलें लोगों को आजीविका और रोजगार तो देती ही थीं, कम पानी में पैदावार भी देती थीं और खेती की उर्वराशक्ति भी बढ़ाती थी।

किसानों नें यहां की जलवायु और मिट्टी के स्वभाव के अनुसार फसलचक्र, उसी के अनुरूप मिश्रित खेती, जरूरत और स्थानीय ज्ञान के अनुसार ही नगदी फसलों के बीजों का भी विकास कर लिया था। उन्ही में से एक बहुआयामी नगदी फसल "सन" भी है।

उपयोगिता

"सन" का उपयोग भोजन के रूप में कभी भी किसी भी प्रकार से नही होता रहा है, पर यह बहुउपयोगी है। एक तरह से देखा जाय तो बिना सन के बुन्देलखण्ड में खेती करना यदि असम्भव नहीं तो बहुत कठिन अवश्य है। यहां रस्सी और सुतली के रूप में सन के रेशों का उपयोग किया जाता है। चारपाई, मचिया आदि की बुनाई में भी सन की बटी हुई रस्सी का ही उपयोग होता है। बैलगाडी में नटबोल्ट की जगह इसी रस्सी का उपयोग किया जाता है। घरों में खपरैल छानी और छप्पर छाने के लिए के लिए सन से रेशे अलग कर लेने के बाद बचे हुए डण्ठल, जिन्हें स्थानीय बोलचाल की भाषा में "सेल्हा" कहते हैं, का उपयोग किया जाता है। सेल्हों के द्वारा बनाए गए छानी छप्पर तीन से पांच साल तक बरसात झेल ले जाते हैं। सन की मुलायम टहनियां, अधपके फल और फूल श्रम करने वाले पशुओं के लिए टॉनिक का काम करते हैं। इन मुलायम टहनियों को किसान चारा कतरने वाली मशीन से कतर कर भूसे में मिला कर बैलों को खिलाते हैं, जिससे बैल हर समय जुताई, बुवाई के लिए तत्पर रहते हैं। जाड़े के समय सन के बीजों को पानी में भिगो कर दाने के रूप में खिलाने से बूढे बैलों में भी ताकत आ जाती है।

सन की जड़ों और पत्तियों में जितनी अधिक नाइट्रोजन मिलती है, उतनी शायद ही किसी अन्य फसल की जड़ों और पत्तियों में मिलती हो। पैलानी डेरा के 93 वर्षीय गयादीन निषाद बताते हैं कि जिस खेत में एक बार सन बो दिया जाता है, उस खेत में अगले दो साल तक किसी प्रकार की खाद आदि डालने की जरूरत नहीं पड़ती, बावजूद इसके फसल बहुत ही अच्छी होती है।

भूमि और समय

"सन" कम वर्षा की सम्भावना पर दोमट तथा पंडुवा में, लेकिन सामान्य बारिश के समय राकड़ भूमि में अच्छी उपज देती है। यदि बहुत कम वर्षा की सम्भावना है और खेत में जलभराव की सम्भावना नहीं है तो सन दोयम दर्जे की मार मिट्टी में भी बोई जा सकती है और अच्छी पैदावार होती है।

बीज

"सन" बुन्देलखण्ड में खरीफ की फसल है, जो बरसात के मौसम की पहली बारिश या पन्द्रह दिन के बाद ही बोई जाती है। यहां इसकी मुख्य रूप से दो ही प्रजातियां प्रचलित हैं। एक तो यहां की देशी बीज और दूसरे को लोग विलायती कहते हैं।

बीज	बीज प्रतिबीघा	समय		लम्बाई फीट			पैदावार प्रति बीघा		
		बुआई	कटाई	पेड़	फसल	व्यास	रेशा	सेल्हा	बीज
देशी	15 किग्रा	जुलाई व अगस्त	अक्टूबर	7	5.5	2.5 से 0	100 कि०	16 बोझ	4 कुन्तल
विलायती	20 किग्रा	जून व जुलाई	सितम्बर	5.5	4.5	2.0	650 कि०	13 बोझ	2 कुन्तल

बुआई

खेत की एक सामान्य जुताई के बाद खेत में सन के बीज छींट कर एक बार पुनः जुताई कर दी जाती है। यदि खेत में पर्याप्त नमी हो, तो सन के बीजों का अंकुरण चौबीस घण्टे बाद ही दिखाई पडने लगता है।

निराई-गुड़ाई

सन तेजी से बढने वाली बहुत ही घनी फसल है इसलिए इसमे निराई, गुडाई और सिंचाई की कोई जरूरत नहीं होती। चूंकि जानवर इसे बहुत चाव से खाते हैं, इसलिए इसकी रखवाली जरूर मशक्कत का काम है।

तैयार होने की अवधि

देशी बीज की बुआई जून, जुलाई के महीने में की जाती है, और कटाई नवम्बर के महीने में जबकि विलायती बीज की बुआई भी जून के ही महीने में की जाती है परन्तु यह सितम्बर अन्त तक कटने के लिए तैयार हो जाती है। इसलिए यदि समय से एक पानी मिल गया तो इसी खेत में गेहूँ की फसल आसानी से बोई जा सकती है।

कटाई

इसकी कटाई दो तरह से की जाती है। एक तो डॅांडी और दूसरा साधारण। जिस फसल से अधपके फल काट लिए जाते हैं उसे डॅांडी और जिस सन से बीज पकने के बाद काटे जाते हैं उसे साधारण कहते हैं। कोई भी किसान अपनी सारी फसल न तो डॅांडी के रूप में काटता है और ना ही साधारण रूप में। घेंटी के अन्दर घुंधुरुओं की आवाज कर सन के बीज फसल के पकने का संदेश देते हैं। सन की कटाई जड़ के दो इंच ऊपर से तथा ऊपर की तरफ शाखाओं के पहले की जाती है। काटने के बाद इसे सूखी जगह पर जहां सीलन आदि ना हो, ऐसी जगह में रखकर छाये में सुखाया जाता है। इसे बरसात के पानी में भीगने से बचाना बहुत आवश्यक है।

सन की तैयारी

फाल्गुन के महीने में सन के बोझ को एक-एक बोझ प्रतिदिन के हिसाब से सड़ाने के लिए गाड़ा जाता है। मौसम की गर्मी के अनुसार सात से दस दिनों में सन सड़ कर धुलाई के लिए तैयार हो जाती है। सन के सड़ जाने के बाद इसकी धुलाई का काम किया जाता है। पानी में फींच फींच कर इसे धोया जाता है, जिससे उसका रेशा (सन) और सेल्हा अलग हो जाता है। ये बहते और ठहरे दोनों ही तरह के पानी में धोया सकता है, लेकिन बहते पानी में धोया गया सन अधिक चमकीला और सुन्दर होता है। धोते समय सन के बोझ को छोट छोटे पूरों में बांट दिया जाता है, जिससे वह आसानी से सुखता भी है और छीलने में भी असानी रहती है। सूखने के बाद जब किसान के पास बरसात के दिनों में फुरसत का समय होता है, तब वह उस सन से सेल्हा अलग करने तथा सन से सुतली कातने काम करता है।

सन आजीविका का मजबूत आधार

बुन्देलखण्ड के लिए सन केवल एक फसल ही नही, वरन् यहां के समाज की अर्थनीति की रीढ़ है, जिसे किसान अपने खेत में फसल के रूप में पैदा करता है। कृषक मजदूर बटाई पर इसकी धुलाई निछाई करते हैं, जिससे उन्हें फुरसत के समय रोजगार उपलब्ध होता है। सन से अलग कर लिए गए सेल्हा और सन का आधा हिस्सा

सन एक ऐसी फसल है, जो किसानों को लाभ देता है, तो मजदूरों की आजीविका का आधार की है। इसके अलग-अलग चरणों के कार्य विभिन्न प्रकृति के लोगों को रोजगार उपलब्ध कराते हैं।

फिर किसान के पास लौट कर आ जाता है, जिसे वह सुतली कातने वाले शिल्पकारों को देता है। एक किलो सुतली कातने पर शिल्पकार को ढाई किलो अनाज मिलता है। कती हुई सुतली फिर लौट कर किसान के घर आ जाती है, किसान अपने जानवरों के लिए, कुएं से पानी निकालने के लिए, बैलगाडी के लिए रस्सी बनाने में माहिर कृषक मजदूरों को देता है। इस काम के बदले दो से पांच सौ रुपया प्रति परिवार प्रतिदिन कमा लेता है। सन की सुतली से बैलगाडी में अनाज ढोने के लिए पाखरी, सर में भूसा ढोने के लिए टपरिया, अन्न भण्डारण के लिए बडे–बडे बोरे (ठेकी) भी बनाये जाते हैं, जिससे कारीगरों को अच्छी कमाई हो जाती है। लघु और सीमान्त किसान सन की धुलाई, सुतली की कताई और रस्सी का निर्माण स्वतः ही कर लेते हैं, जिससे उनकी काफी बचत भी हो जाती। इस प्रकार बुन्देलखण्ड में सन एक फसल ही नहीं कृषि एवं आजीविका का आधार है।

लागत-लाभ विवरण (एक एकड़ हेतु)

लागत विवरण	मात्रा/दर	मूल्य	उत्पादन	मूल्य	शुद्ध लाभ
जुताई	दो बार दर रु० 350.00	रु० 700.00	सन (रेषा) 5 कु० दर 2000 प्रति कुन्तल	रु० 10000.00	रु० 19062.50 – 7050.00 = 12012.50
बीज	50 किग्रा दर रु०15 प्रति किग्रा	रु० 750.00	सेल्हा	रु० 1562.50	
रखवाली	4 माह दर रु० 400 प्रति माह	रु०1600.00	सन के बीजों अथवा पौष्टिक हरे चारे की कीमत	रु० 5000.00	
धुलाई और छिलाई		रु० 4000.00	गैर रासायनिक खाद की अनुमानित कीमत	रु० 2500.00	
योग		**रु० 7050.00**		**रु० 19062.00**	**रु० 12012.50**

शुद्ध बाजारू रूप में इसका लागत लाभ विश्लेषण थोड़ा मुश्किल है, लेकिन गाँवों में हो रहे पलायन को रोकने में यह सक्षम है। फिर भी सरकारी नीतियाँ इसे उपेक्षित कर रही है।

हालांकि एक एकड़ सन की फसल से होने वाली उपरोक्त आय व लाभ शुद्ध रूप से बाजार आधारित है, लेकिन गाँव के पलायन को राकने के लिए, सबको रोजगार देने तथा गाँव के आपसी रिश्तों को मजबूत रखने के लिए पारस्परिक निर्भरता में जो योगदान इस अदना सी फसल का होता है, उसे पैसों में नहीं आंका जा सकता। यह लाभ बाजार की सोच से परे है।

कुछ समस्याएं

सन की खेती के सामनें कुछ समस्याएं भी हैं जिस कारण अब इसकी खेती में ग्रहण लगता जा रहा है।

- अन्नाप्रथा ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था की समझदारी कानून और व्यवस्था के पास शून्य है, इस लिए असरदार लोगों के जानवर फसलों को अत्यधिक हानि पहुंचाते हैं।
- कृषि विश्वविद्यालयों ने बाजार के लिए लाभकारी फसलों को किसानों पर अनावश्यक रूप से थोप कर 'सन' जैसी तमाम फसलों को हतोत्साहित किया है।
- सरकारी नीतियां भी 'सन' की खेती को हतोत्साहित करने में असरकारी भूमिका निभा रही हैं। सरकारी प्रश्रय पाकर बाजार किसानों के खेत और खलिहान तक में अपनी घुसपैठ बनाये हुए है, इस कारण भी किसानों को इस खेती का बहुत लाभ नहीं मिल पाता है।

7 जंगल पहाड़ आधारित आजीविका

सूखा के दौर में आजीविका बनी बागवानी

बागवानी लगाकर एक तरफ तो खेती में हो रहे नुकसान को पूरा कर सकते हैं। वहीं दूसरी तरफ पेड़-पौधों की बढ़ती संख्या पर्यावरण सुरक्षा की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम साबित होगा।

संदर्भ

बागवानी न सिर्फ आजीविका की दृष्टि से वरन् पर्यावरण सुधार की दृष्टि से भी एक महत्वपूर्ण कार्य है। बुन्देलखण्ड प्राकृतिक संपदा से भरपूर क्षेत्र रहा है, परन्तु जल और जमीन की तरह ही यहां पर जंगल का भी खूब दुरूपयोग हुआ और खामियाज़ा किसानों को भुगतना पड़ रहा है। हालात यह है कि जब कहीं पर पानी की अधिकता के कारण खेती नहीं हो पा रही है, तो कहीं पर पानी की कमी के चलते लोग खेती नहीं कर पाते हैं।

ऐसे समय में बागवानी कार्य को शुरु करना, उसे प्रोत्साहन देना एक ऐसा कार्य है, जो परिवार की आजीविका चलाने में तो सक्षम है ही, उससे जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने में भी सफलता मिलेगी। शायद यही सोच हरसिंगपुर वासियों की है, जिसके चलते उन्होंने बागवानी को अपनी खेती का प्रमुख अंग बना लिया है। इस प्रकार वे इस प्रक्रिया के माध्यम से जलवायु परिवर्तन से भी परोक्ष रूप से निपट रहे हैं।

प्रक्रिया

खेत का चयन

ऐसे खेत का चयन किया गया, जो गांव के किनारे हों, जहां पर पौधों को फलने–फूलने का पर्याप्त स्थान व वातावरण मिले।

पौधों का चयन

बागवानी लगाने हेतु ऐसे पौधों का चयन किया गया, जो फलदार व छायादार दोनों हों, जिससे खाने व बेचने के लिए फल भी आसानी से मिलता रहे।

बागवानी हेतु पौध

बाग में देशी आम, अमरूद, आंवला, कटहल, करौंदा, नीबू, बेर, केला, अनार, बेल के पौधे लगाये गये।

खेत का क्षेत्रफल व पौधों की संख्या

100 डिसमिल क्षेत्रफल में लगभग 120 पौधे लगते हैं।

अन्त: खेती

बाग लगाने के बाद बीच के बचे खाली स्थान पर सब्ज़ियों की खेती करते हैं। इन में लतादार सब्ज़ियां तथा छायादार स्थान पर होने वाली सब्ज़ियां प्रमुख हैं। मुख्य तौर पर लौकी, तोरई, मिर्चा, टमाटर, पालक, धनिया, हल्दी इत्यादि हैं।

खाद

देशी खाद का प्रयोग करते हैं, जिससे एक तो इनकी लागत कम होती है, क्योंकि खाद ये घर पर ही बना लेते हैं। दूसरे जमीन में नमी भी बनी रहती है।

सिंचाई

पौधे लगाने के बाद शुरूआती दौर में पेड़ों की सिंचाई करनी पड़ती है। सब्ज़ियों के लिए नमी की आवश्यकता होती है।

उपज

प्राप्त उपज को निम्न तरीके से देख सकते हैं –

- फलदार वृक्षों से प्राप्त फल
- सब्ज़ियों से प्राप्त उपज

मौसमी विश्लेषण

फलदार वृक्षों से प्राप्त होने वाले फलों की अवधि को जानने के लिए किये गये मौसमी विश्लेषण के आधार पर निकला कि –

फसल	जन०	फर०	मार्च	अप्रैल	मई	जून	जुलाई	अगस्त	सित०	अक्टू०	नव०	दिस०
आम	←—	—→		←—	—→	←→						
अमरूद	←—	—→		←—	—→							
कटहल	←—	—→		←—	—→							
आंवला	←—	—→		←—	——	——	——	——	—→			
बेर	←—	—→									←→	
नीबू												
करौंदा												
अनार												
पपीता												
केला												
जामुन												
बेल												

लागत-लाभ विवरण- एक एकड़ हेतु

लागत विवरण	लागत मूल्य	प्राप्त उपज	मूल्य	शुद्ध लाभ
120 पौध दर 41/– प्रति पौध	रु० 4920.00	20 कु० फल दर 1000/– कु०	रु० 20000.00	रु० 26000.00 – 6420.00 = 19580.00
सब्जियों के बीज	रु० 1500.00	4 कु० सब्ज़ी दर 1500/– कु०	रु० 6000.00	
योग	**रु० 6420.00**			**रु० 19,580.00**

व्यवहार के आधार पर लगाये गये पेड़ों ने आज अच्छी खासी संख्या में सेवाराम को सब्ज़ियों व फलों की उपलब्धता कराई है।

सफल अनुभव

श्री सेवाराम तिवारी, जो जनपद जालौन के विकास खण्ड कुठौन्द ग्राम हरसिंगपुर के रहने वाले एक बड़े किसान हैं। इनके पास अगर 16 एकड़ जमीन है, तो चार बेटों–बहुओं सहित भरा–पूरा परिवार भी है। परिवार तो बढ़ा ही साथ में बिगड़ता गया मौसम का मिजाज और खेती करना व खेती से परिवार को पालना एक दुष्कर कार्य सिद्ध होने लगा। ऐसे में श्री सेवाराम ने गांव के बाहर अपनी एक बीघा जमीन (30 डिसमिल) में 31 फलदार पौधों के साथ (आम–5 पेड़, आंवला–5 पेड़, कटहल–2 पेड़, आंवला–2 पेड़, नीबू–4 पेड़, बेर–2, केला–2 पेड़, करौंदा–2 पेड़, अनार–1 पेड़, पपीता–4 पेड़, जामुन–1 पेड़, बेल–1 पेड़) कुछ पौधे फूलों के भी लगाये। बीच में बचे खाली स्थान पर इन्होंने लतादार सब्जियों एवं मिर्चा, टमाटर, धनिया आदि की खेती भी की। इससे इनके परिवार को फल–फूल व सब्जियां खाने भर के लिए पर्याप्त मिलने लगी। बागवानी लगाने में इन्होंने इस बात का खास ध्यान रखा कि प्रत्येक मौसमी फल की उपलब्धता परिवार को रहे। बाग लगाने हेतु पौधों की उपलब्धता के बारे में इन्होंने बताया कि शुरु–शुरु में हमने आस–पास के क्षेत्रों में उपलब्ध पौधों को एकत्र किया, कुछ पौधे वन विभाग एवं उरई से भी खरीदे। पर उनकी संख्या बहुत न्यून है। अधिकांशतः आपस में लेन–देन के आधार पर बाग लगा। इन्होंने बताया कि विगत 5–6 वर्षों से पड़ रहे सूखा की वजह से पूरी खेती में जितनी फसल नहीं हो पाई, उतना उपज हमने सिर्फ फल और सब्ज़ियों से पाया। उल्लेखनीय है कि सभी सब्जियों को हर वर्ष बदलकर अपने बीज तैयार करते हैं और पुनः सब्जी की खेती करते हैं। इस प्रकार सब्जी के बीजों की लागत भी बस एक बार की है। सिंचाई हेतु पानी की व्यवस्था पर इनका कहना है कि शुरूआती दौर में तो हमने 500 मीटर की दूरी पर स्थित तालाब से पानी लिया, उस समय पेड़ों की संख्या भी कम थी, पर अब फलों व सब्ज़ियों को बेचने से इतनी आय होने लगी कि उसी आय से हमने अपने बगीचे में ही ट्यूबवेल लगा लिया, जिससे अन्य खेतों के लिए भी सिंचाई की व्यवस्था हो गयी तथा बगीचे के किनारे पर दो कमरे का मकान भी बना लिया है, जहां से रहकर हम अपनी खेती की देख–भाल कर लेते हैं। इस प्रकार गर्मियों में जब खेत की रखवाली एक कठिन कार्य होता है, उस समय हमें इस बगीचे और यहां स्थित घर के होने का विशेष लाभ मिलता है। आज हमारी देखा–देखी गांव के अन्य किसान दो–चार पेड़ ही सही, पर अपने खेत में वृक्ष अवश्य लगा रहे हैं, जिससे उनकी आय वृद्धि के साथ पर्यावरण सुरक्षा में भी एक महत्वपूर्ण कदम साबित होगा।

अनुपयोगी धूल (क्रेशर से निकली) से आजीविका संवर्धन

ऐसे स्थानों पर जहाँ प्रकृतिगत विरोध के कारण खेती संभव नहीं हो पा रही है, वहाँ पर आजीविका के अन्य विकल्पों की तलाश कर लोग उन पर अपनी निर्भरता बना रहे हैं।

संदर्भ

वैसे तो पूरा बुन्देलखण्ड ही सूखा प्रभावित क्षेत्र है, परन्तु जनपद जालौन का विकास खण्ड कुठौन्द कई दृष्टि से विशेष प्रभावित इलाका है। एक तो यहां सिंचाई के बहुत से विकल्प नहीं हैं, दूसरे क्षेत्र में ईंट–भट्ठों की संख्या अधिक होने के कारण खेती योग्य भूमि अनुपयोगी होती जा रही है। चिमनियों से निकलता धुंआ निरन्तर आकाश में छाया रहता है। इसके साथ ही दस्यु प्रभावित इलाका होने के कारण यहां पर रोजगार के अवसर भी बहुत कम हैं। उपयोगी भूमि होने के बावजूद खेती की लागत अधिक होने के कारण लोग खेतों की मिट्टी ईंट बनाने के लिए बेचने में अधिक फायदा महसूस कर रहे हैं।

इस पूरी प्रक्रिया में लोगों को तात्कालिक लाभ तो हो रहा है, परन्तु समयान्तराल में इसके कई नुकसान हैं। जैसे –

- खेत खराब हो जायेगा तो उसे ठीक करने के लिए लम्बा समय और लम्बा खर्च लगेगा।
- चिमनियों से निरन्तर निकलने वाला धुंआ मानव, पशु स्वास्थ्य को हानि पहुंचाने के साथ ही पूरे पर्यावरण को प्रभावित कर रहा है, जिसके दूरगामी परिणाम निश्चित तौर पर बेहद खतरनाक होंगे।

इन सारी स्थितियों के मद्देनजर यहाँ लोगों द्वारा स्वयं के स्तर पर सुधार के कई प्रयास किये गये, जिसके तहत् पहला कदम वृक्षारोपण का था। इसके अन्तर्गत सामुदायिक रूप से वृक्ष लगाये गये, परन्तु यह महसूस किया गया कि वृक्ष खेती और पशुपालन तीनों एक दूसरे के पूरक है और खेती से तो यहां के लोगों का मोह भंग हो चुका था। अतः आवश्यकता थी कि आजीविका के ठोस विकल्पों पर विचार किया जाये। इसी कड़ी में एक ऐसी तकनीक विकसित की गयी, जिसके तहत् पहाड़ों को तोड़ने से क्रेशर के द्वारा निकलने वाली महीन धूल से ईंट, टाइल्स आदि का निर्माण कर लोगों को रोजगार मुहैया कराया गया।

प्रक्रिया

प्रारम्भ

ग्राम पंचायत नाहली के गांव मदनेपुर के श्री मुरली मनोहर ने अगुवाई कर गांव वालों के साथ एक बैठक की, जिसमें उनकी समस्याओं पर चर्चा करने के साथ ही इस विकल्प को सुझाया। बैठक में मौजूद लोगों ने पैसा लगाने में असमर्थता जाहिर की साथ ही यह भी प्रश्न किया कि ऐसा किस प्रकार किया जा सकता है।

प्रशिक्षण

कई स्थानों पर जानकारी करने के बाद हुडको से सम्पर्क स्थापित कर कम लागत में भवन निर्माण करने हेतु प्रशिक्षण दिलाया गया। इस आठ दिवसीय प्रशिक्षण को शुरूआत में 5 लोगों ने लिया। बाद में रोजगार सृजित होने पर और लोगों को प्रशिक्षण देने लगे।

इकाई की स्थापना व कच्चा माल

टाइल्स तैयार करने हेतु हुडको के निर्देशन में बंगलौर से मशीन लाकर लगायी गयी। उत्पाद बनाने हेतु कच्चे माल के रूप में क्रेशर से निकलने वाली धूल व फ्लाईएश (बिजली संयंत्र में प्रयोग किये जाने वाले कोयले की राख), 0 साइज गिट्टी व सीमेण्ट का उपयोग किया गया और 5 लोगों को लगाकर ईंट बनाने का कार्य प्रारम्भ किया गया।

उत्पादन का विवरण

शुरूआत में सिर्फ एम0सी0आर0 टाइल्स व फिनशिंग पोल का निर्माण किया गया, जिसमें आशातीत सफलता मिलने के बाद इण्टरलाकिंग ईंट की निर्माण का कार्य प्रारम्भ किया गया है।

बाजार व्यवस्था

इस उद्योग द्वारा निर्मित सामग्री के लिए स्थानीय बाजारों के साथ पंचायत में खडण्जा निर्माण, नगर पंचायतों में सी0सी0 रोड की जगह इण्टरलाकिंग ईंट का उपयोग किया जा रहा है। आस–पास स्थित पेट्रोल टैंक, स्कूल ग्राउण्ड, अस्पताल ग्राउण्ड तथा अन्य पार्किंग स्थानों पर इस ईंट को बिछाने का काम होता है।

लागत–लाभ विवरण– एक एकड़ हेतु

निर्माण वस्तु	मात्रा	सामग्री	लागत रु०	बिक्री रु०	शुद्ध लाभ
एम०सी०आर० टाइल्स	60	सीमेण्ट 1 बोरी, गिट्टी 9 फुट, डस्ट 6 फुट, फ्लाई एश 3 फुट	रु० 1000	रु० 1500.00	रु० 500.00
फिनशिंग पोल	04	सरिया 8 किग्रा०, सीमेण्ट 1 बोरी, गिट्टी 8 फुट, डस्ट 6 फुट, गिट्टी आधा इंच की 3 फुट	रु० 1500	रु० 3750.00	रु० 2250.00
इण्टरलाकिंग ईंट	100	सीमेण्ट 1 बोरी, गिट्टी 7 फुट, डस्ट 8 फुट, गिट्टी आधा इंच 4 फुट, फ्लाई एश 2 फुट	रु० 10000	रु० 18000.00	रु० 18000.00
कुल योग			**रु० 12500.00**	**रु० 23350.00**	**रु० 10750.00**

मानक के अनुसार उपरोक्त सामग्री तैयार की जाती है तथा 40 टन के प्रेशर मशीन द्वारा प्रेस कर पानी में पकाया जाता है। कम से कम 6 घण्टे बाद यह बिक्री के लिए तैयार हो जाता है। लागत – लाभ विश्लेषण को देखते हुए कहा जा सकता है कि लोगों को रोजगार मिलने के साथ ही इकाई के खर्चे निकालकर लाभ भी हुआ।

परिणाम

इस उद्योग के निम्नलिखित परिणाम परिलक्षित होते हैं –

- एक व्यक्ति द्वारा किये गये प्रयास से गांव के 32 लोगों को अच्छा रोजगार मिल सका।
- सूखे के समय स्वरोजगार का एक स्थाई साधन मिला।
- लोगों का पलायन रुका है।
- पर्यावरण सुधार सम्भव हो सका।
- उपजाऊ मिट्टी के खनन को रोकने में मदद मिली है।
- कम लागत में भवन निर्माण की तकनीक लोगों को स्थानीय स्तर पर ही मिल गयी।

इस प्रकार थोड़ी सूझ–बूझ एवं मेहनत से इस बीहड़ क्षेत्र में एक ऐसा उद्योग लगाया जा सका, जिससे पर्यावरण को शुद्ध बनाते हुए लोगों को स्थानीय स्तर पर रोजगार उपलब्ध कराया गया है।

खदानों से निकलने वाले धूल का बेहतर इस्तेमाल करते हुए इण्टर लांकिंग ईंटों का निर्माण लाभ का सौदा साबित हो रहा है।

सूखे के प्रभाव को अमरूद की बागवानी ने कम किया

नदी किनारे की पडुई जमीन आमतौर पर खेती लायक नहीं होती। इसमें अमरूद की बागवानी लगाकर आजीविका के बेहतर स्रोत पाने की साथ ही पेड़-पौधों से पर्यावरण संरक्षण में भी सहायता मिलती है।

संदर्भ

जनपद हमीरपुर के मौदहा तहसील के मदारपुर छिमौली के किसान आमतौर पर रबी की फसल को ही मुख्य फसल के रूप में परम्परागत तरीके से लेते चले आ रहे थे, किन्तु अपनी आमदनी को कुछ और बढ़ाने के लिए पौध जिनमें टमाटर, मिर्चा आदि शामिल हैं, भी तैयार करते रहते थे, जिसको बेचकर उनके खर्च पूरे होते थे। वर्ष 2000 से लगातार कम व असमय वर्षा के कारण रबी की खेती प्रभावित हुई और मध्यम व छोटी जोत के किसानों के सामने जहां आर्थिक संकट खड़ा हुआ वहीं मजदूरी करने वाले ग्रामीण भी पलायन करने लगे। ऐसी परिस्थिति में किसानों के सामने कोई न कोई विकल्प तलाशने का रास्ता बचा और अन्ततः कुछ लोगों ने अमरूद की बागवानी लगाने का निर्णय लिया।

परिचय

अमरूद विटामिन 'सी' का प्रमुख स्रोत होता है और इसीलिए इसे गरीबों का सेब कहा जाता है। इसका उपयोग फल, सब्जी, सलाद तथा पूर्ण भोजन के रूप में किया जाता है। अमरूद के बीज का उपयोग औषधि के रूप में भी किया जाता है। अमरूद के बाग लगाकर किसानों ने सूखे से उत्पन्न संकट को कम कर अपने परिवारों का जीवन यापन किया। अमरूद की बागवानी करके किसानों ने सूखे की मार से उत्पन्न संकट का सामना ऐसे समय किया, जब पानी का संकट लगातार गहराता जा रहा था और किसानों के लिए परम्परागत खेती करनी मुश्किल हो गयी थी। तब मदारपुर, छिमौली गांव के किसानों ने चन्द्रावल नदी के किनारे पडुई जमीन में अमरूद के पौध लगाकर बागवानी तैयार की।

प्रक्रिया

खेत की तैयारी

अमरूद के पौधे रोपने के लिए मई माह में गढ्ढे खोद दिये जाते हैं। गढ्ढे की गहराई एवं व्यास 60–60 सेमी0 तथा गड्ढों व पौधों के बीच में 6–6 मीटर का अन्तर रखा जाता है। ताकि बड़े होने पर जड़ों को पूरी तरह फैलने का स्थान मिल सके। गढ्ढा खोदते समय इस बात का भी ध्यान रखा जाता है कि गढ्ढे की ऊपर की मिट्टी एक तरफ तथा नीचे की मिट्टी दूसरी तरफ रखी जाये। एक माह तक गढ्ढे को खुला छोड़ देते हैं। पुनः खुदी हुई मिट्टी में कम्पोस्ट खाद मिलाकर गढ्ढे में एक अंगुल ऊपर तक भर देना चाहिए। भराई के समय भी ध्यान से नीचे की मिट्टी नीचे और ऊपर की मिट्टी ऊपर की तरफ ही भरना चाहिए।

पानी की व्यवस्था

गढ्ढे खोदने के बाद उसमें पर्याप्त नमी के लिए वर्षा का जल अथवा अन्य किसी साधन से पानी भर दिया जाता है। इस प्रक्रिया को दो–तीन बार दुहराया जाता है, ताकि नमी गहरे तक पहुंच जाये और पौध के लिए पानी की कमी न होने पाये।

बीज की तैयारी

बाजार से अच्छे किस्म की अमरूद लाकर उसका बीज निकालकर गोबर के साथ मिलाकर उन्हें कण्डों के रूप में पाथ देना पड़ता है, उसके बाद उन्हें सूखने दिया जाता है। लगभग 6 माह बाद यह उत्तम श्रेणी का बीज पौध के रूप में तैयार हो जाता है।

पौधरोपण

पौधरोपण का उपयुक्त समय जून के अन्तिम सप्ताह से अगस्त तक होता है। जब गढ्ढे में भरपूर नमी हो, तभी उपरोक्त पौध को गीला करके रोपित कर देना चाहिए। पौधे की जड़ों में मिट्टी लगी होती है, गढ्ढे में पिण्डी के आकार की खुदाई करके उस मिट्टी की सहायता से पौधे को गढ्ढे में रोप दिया जाता है।

किस्म

यहां लोग प्रायः इलाहाबादी सफेदा प्रजाति के पौध लगाने को प्रमुखता देते हैं।

फसल उत्पादन

अमरूद का एक पौध ढाई से तीन वर्षों में फल देने लगता है। एक पेड़ में दो कुन्तल तक फल निकलते हैं। कोई–कोई पेड़ इससे अधिक फल देने वाले भी होते हैं। फल की प्राप्यता अमरूद की किस्म पर निर्भर करती है। विशेषतया आकार में बड़े फल देने वाले वृक्ष अधिक उपज देते हैं। अमरूद की मुख्यतया दो फसलें होती हैं– भदैली अमरूद तथा अगहनी अमरूद।

भदैली अमरूद बरसाती होता है। इसके फल जून से सितम्बर तक पकते हैं। इसका स्वाद कुछ कसैला, कम मीठा किन्तु स्वास्थ्य की दृष्टि से उत्तम होता है। जबकि अगहनी अमरूद के पकने का समय नवम्बर से जनवरी तक होता है। इसका फल सुस्वाद, मीठी, गुदार तथा सुपाच्य औषधि के रूप में माना जाता है। दोनों प्रजातियों के लिए किसानों को अधिक पानी, पूंजी व श्रम लगाने की आवश्यकता नही होती है, जबकि उपज के लिए अच्छा बाजार मिलता है व पूर्णतया नगदी फसल के रूप में जाना जाता है।

लागत–लाभ विवरण– एक पौधे का

लागत विवरण	लागत मूल्य	उत्पादन	मूल्य	शुद्ध लाभ
गढ्ढा नमी आदि में व्यय	रु० 150.00	2 कुन्तल दर 1000 प्रति कुन्तल	रु० 2000.00	रु० 2000.00 – 300.00 = 1700.00
पौध रक्षण कीटनाशक आदि पर व्यय	रु० 150.00			
योग	रु० 300.00		रु० 2000.00	रु० 1700.00

एक पौध में मात्र रु० 300 की लागत लगाकर रु० 1700/– का शुद्ध लाभ कमाना निश्चित तौर पर सूखाग्रस्त क्षेत्र के किसानों के लिए आय का बेहतर विकल्प है।

सफल अनुभव

जनपद हमीरपुर, विकास खण्ड मौदहा, ग्राम मदारपुर के रहने वाले 68 वर्षीय श्री हातिम ने बताया कि हमारे पास कुल 2 एकड़ खेती है। हम परम्परागत ढंग से खेती करते थे, परन्तु सूखा के कारण उसमें व्यवधान उत्पन्न हुआ और फिर हमने नकदी फसल अमरूद के बारे में पता किया और वर्ष 2003 में हमने अमरूद की खेती चन्द्रावल नदी के किनारे स्थित अपने एक एकड़ खेत में प्रारम्भ किया। शुरूआत में हमने 100 पौधे लगाये। इसके लिए मई में ही गढ्ढा खोद कर छोड़ दिया। पुनः गढ्ढे में अन्दर तक नमी बनाये रखने के लिए तीन से चार बार गढ्ढे में पानी भर दिया। तत्पश्चात् जुलाई माह में पहले से तैयार पौध का रोपण गढ्ढे में किया। इन्होंने बताया कि एक पौधे से कम से कम 2 कुन्तल फल निकलता है, जिसे बाजार में बहुत कम पर बेचने पर भी रू0 10.00 प्रति किग्रा0 के हिसाब से बेचा जाता है। जबकि पौध लगाने में कोई विशेष खर्च नहीं होता है। मात्र 300.00 रुपया लगाकर रू0 1700.00 का शुद्ध लाभ हो जाता है। इस प्रकार कम पानी, कम पूंजी और कम श्रम के बावजूद यह एक लाभकारी फसल है। इनका कहना है कि परम्परागत कृषि में इतना लाभ कभी नहीं मिला, जितना अमरूद की बागवानी से प्राप्त हो रहा है। सूखे के समय परिवार चलाने में दिक्कत हो रही थी, परन्तु पेड़ ने जैसे ही फल देना प्रारम्भ किया, हमें आर्थिक लाभ होने लगा। हमारे इस काम में महिलाओं की भी पूरी भागीदारी रहती है। बागों की रक्षा, फलों की तुड़ाई के बाद छंटाई तथा बिक्री सभी कामों में महिलाओं का पूरा योगदान रहता है।

सूखे में आजीविका का साधन बना डलिया निर्माण कार्य

बुन्देलखण्ड में पड़ रहे सूखे का मुकाबला करने के क्रम में परम्परागत धन्धे डलिया निर्माण को पुर्नजीवित करना एक बेहतर विकल्प दिखा जो इस बार जंगल से मिलने वाले संसाधनों पर आधारित था।

परिचय

खेती किसानी के साथ आजीविका के अन्य विकल्पों में डलिया निर्माण बुन्देलखण्ड की प्राचीन परम्परा रही है। पहले अरहर और बांस की डलिया बनाई जाती थी। बांस की डलिया का उपयोग मुख्यतः घरेलू उपयोग में तथा अरहर की डलिया का उपयोग खेती–किसानी से जुड़े कार्यों के साथ–साथ निर्माण कार्यों के लिए किया जाता था। प्रारम्भतया अरहर की खेती खूब होने के कारण गांवों में अरहर की डलिया बड़े पैमाने पर बनाई जाती थी। कालान्तर में लोगों का झुकाव बाजार आधारित खेती की तरफ होने के कारण अरहर की फसल का उत्पादन कम हो गया और डलिया बनाने का काम भी ठप हुआ।

पिछले पांच–छ वर्षों से इस क्षेत्र में पड़ रहे सूखा की वजह से किसानों के सामने जीवन–यापन करने की भी समस्या खड़ी हो गयी। विकल्प ढूंढने के क्रम में ग्राम बरी का पुरवा, विकास खण्ड कुठौन्द, जनपद जालौन के लोगों ने परम्परागत डलिया व्यवसाय का कार्य प्रारम्भ किया और अरहर के स्थान पर जंगल से चापट नामक की लकड़ी को लाकर उससे डलिया बनाई, जो लोगों के लिए आय का एक अच्छा माध्यम बनी।

प्राप्यता

चापट की लकड़ी बीहड़ क्षेत्रों में अत्यधिक मात्रा में पाई जाती है। इसके जमाव पर सूखा पड़ने का कोई असर नहीं होता है। अतः यह आसानी से उपलब्ध हो जाती है। इस लकड़ी से बनाई गयी डलिया अरहर की डलिया से अधिक मजबूत होने के कारण बाज़ार में इसका मूल्य अच्छा मिलता है।

डलिया निर्माण की प्रक्रिया

सबसे पहले जंगल जाकर चापट की लकड़ी लाते हैं। फिर उसकी सफाई का काम किया जाता है। तत्पश्चात् डलिया बनाते हैं। एक दिन में 4–5 डलिया बन जाती है। दो गठ्ठर चापट से 8–10 डलिया बन जाती है। जिसमें परिवार के लोगों को मिल कर काम करना पड़ता है। इस पूरी प्रक्रिया में कोई अतिरिक्त खर्च नहीं होता। सिर्फ श्रम लगता है।

रख–रखाव

चापट की डलिया बनाकर रखने में अधिक रख–रखाव की आवश्यकता नहीं होती है। चूंकि हरी चापट से डलिया बनाकर सूखा ली जाती है। अतः इसको अपने घर के आस–पास खुले में या छप्पर इत्यादि पर रख सकते हैं। क्योंकि पानी में भीगने से भी यह बहुत जल्दी खराब नहीं होती है।

लाभ

- इस समय गांव में 10 परिवार से 50 लोग इस कार्य से जुड़े हुए हैं।
- यह स्वयं का कार्य है, जो निश्चित है। लोगों को रोजाना मजदूरी नहीं तलाशनी पड़ती है।
- आजीविका के साधन गांव में ही उपलब्ध हो जाने के कारण सूखे की परिस्थिति में पलायन नहीं करना पड़ा।
- कच्चे माल की उपलब्धता स्थानीय स्तर पर आसानी से हो जाती है।

कठिनाईयां

- यह लकड़ी जंगल में पाई जाने के कारण वन विभाग के अधीन होती है। अतः चोरी–छिपे लाना पड़ता है। पकड़े जाने पर जुर्माना देना पड़ता है।
- बीहड़ इलाका होने के कारण जंगली जानवरों का खतरा बना रहता है।
- डाकुओं का क्षेत्र होने के कारण उनकी तरफ से भी नुकसान का भय बना रहता है।
- यहां पर कोई निश्चित बाज़ार न होने के कारण उचित मूल्य नहीं मिल पाता है।

संभावनाएं

अगर वन विभाग से बिना मूल्य के चापट की लकड़ी आसानी से उपलब्ध कराई जाये एवं तैयार माल को बाज़ार तक आसानी से पहुंचाने की व्यवस्था हो तो बड़ी संख्या में परिवारों को रोजी–रोटी उपलब्ध कराई जा सकता है और यह एक अच्छे व्यवसाय के रूप में पनप सकता है।

लागत–लाभ विवरण– एक एकड़ हेतु

लागत विवरण	मात्रा	मूल्य	लगने वाला कार्य दिवस	उत्पादन	मूल्य	शुद्ध लाभ
कच्चा माल	एक गट्ठर लकड़ी	रु० 0.00	1 दिन	5 डलिया दर रु० 30 प्रति डलिया	150.00	रु० 150.00
योग		रु० 0.00			**150.00**	**रु० 150.00**

सफल अनुभव

विकास खण्ड मुख्यालय से 12 किमी0 की दूरी पर यमुना नदी के बीहड़ में बसा बरी का पुरवा मुख्यतः ठाकुर एवं चमार जाति बहुल गांव है, जहां ठाकुरों की आजीविका का साधन खेती और चमारों की आजीविका ठाकुरों के खेतों में मजदूरी करना है। यहीं के निवासी 58 वर्षीय श्री अयोध्या प्रसाद पुत्र श्री रघुबर ने बताया कि हम हमेशा से मजदूरी करते आ रहे हैं। डलिया बनाना भी हम पहले से ही करते हैं। विगत 5–6 वर्षों से लगातार पड़ रहे सूखा की वजह से खेती किसानी का कार्य प्रभावित हुआ और अरहर का उत्पादन कम होने के कारण डलिया के लिए लकड़ी की समस्या आने लगी। बाज़ार से खरीदने पर लकड़ी के एक गठ्ठर का मूल्य रू0 20 होने के कारण मेहनत भी बेकार जाने लगी। तब विकल्प के तौर पर हमने जंगल से चापट की लकड़ी को चुना और उससे डलिया बनाने लगे।

प्रयोग में यह भी सिद्ध हुआ कि चापट से बनी डलिया अरहर की डलिया से अधिक मजबूत है। इस काम में हम पति–पत्नी मिलकर 2 दिन में 10 डलिया तैयार कर लेते हैं और एक डलिया का मूल्य रू0 30.00 मिलने से लाभ रू0 300.00 हो जाता है। घर पर ही रहकर हमारी आमदनी का यह एक अच्छा स्रोत है।

जंगल से मिलने वाले चापट नामक वृक्ष की लकड़ी एक तो बिना पैसे के मिलने के कारण लागत शून्य होती है, दूसरी तरफ यह अरहर से बनी डलिया के मुकाबले मजबूत होने के कारण मांग में भी है।

सूखे में सहारा बनी पलाश : बनाया दोना-पत्तल

जाति-विशेष से सम्बन्धित दोना, पत्तल बनाने को व्यवसाय के रूप में अब छोटी जोत के किसानों ने मंहगी होती खेती लागत के विकल्प के तौर पर भी अपनाना प्रारम्भ कर दिया है।

परिचय

वैसे तो पूरा बुन्देलखण्ड ही सूखा प्रभावित क्षेत्र है। पर यह सूखा अब सुखाड़ बनती जा रही है, ऐसे में लोगों की आजीविका का मुख्य स्रोत खेती सर्वाधिक प्रभावित हो रही है। मीलों तक खेत खाली ही दिखते हैं, क्योंकि महंगी होती खेती लागत के साथ पानी की अनुपलब्धता ने लोगों को पंगु बना दिया। इसका सबसे अधिक प्रभाव ऐसे परिवारों पर पड़ा, जिनके पास खेती न्यून मात्रा में होती थी, अथवा नहीं होती थी। ऐसी स्थिति में लोगों ने आजीविका के अन्य साधनों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया और इसी के प्रतिफल के तौर पर पलाश के पत्ते से दोना–पत्तल बनाने की शुरूआत की। दोना–पत्तल तो परम्परा में शामिल है, पर पहले यह सिर्फ जाति विशेष से सम्बन्धित थी। अन्य लोग शर्म, संकोच के कारण चोरी से पत्तल बनाते थे और बाहर के खरीददारों को ही बेचते थे, परन्तु धीरे–धीरे लोगों ने इसे व्यवसाय के रूप में अपना लिया और अपनी आजीविका आपदा के दिनों में भी सुरक्षित की।

पलाश को ग्रामीण भाषा में ''ढाक'' या ''छियूल'' कहते हैं। इसके तीन पत्ते एक साथ निकलते हैं। इसलिए इसे ''त्रिपत्रक'' या ''त्रिपर्णक'' भी कहते हैं। इसका फूल लाल रंग का होने के कारण इसे ''रक्तपुष्पक'' की संज्ञा भी दी जाती है। पलाश का औषधीय महत्व अधिक है। इस पौध का प्रत्येक भाग किसी न किसी रूप मे अन्यान्य बीमारियों के लिए औषधि का काम करता है। पलाश के पौधे से दोना–पत्तल बनाने के अतिरिक्त इसकी जड़ को कूटकर उसके रेशे से रस्सी, सिकहर, गुण्डी आदि वस्तुएं बनती हैं।

प्रक्रिया

कच्चा माल

- नीम की सींक
- पलाश का पत्ता

प्राप्यता

यह महोबा में ही नहीं वरन् बुन्देलखण्ड के कई जनपदों में आसानी से खेतों की मेड़ों पर, सड़क के किनारे एवं जंगल में आसानी से प्राप्त होता है। साल के ग्यारह महीने इसकी उपलब्धता रहती है। मात्र एक माह अप्रैल में यह नव पत्तों के आने की स्थिति में नहीं मिल पाता है।

नीम की सींक गर्मियों में मिलती है, जिसे गांव वाले एकत्र कर बोरियों में रखते हैं। फिर पूरे सीजन पलाश के पत्ते तोड़ कर दोना–पत्तल तैयार करते हैं।

कच्चा माल एकत्र करना

पलाश के पत्ते तोड़ने का काम अक्सर सुबह होता है। कभी–कभी लोग दोपहर को भी पत्ते तोड़ते हैं।

दोना–पत्तल तैयार करना

तत्पश्चात् एक पत्ते से दूसरे पत्ते को सींक के सहारे जोड़ते हुए थाली के आकार का पत्तल तथा कटोरी की शक्ल का दोना तैयार करते हैं। इस काम के लिए किसी विशेष तकनीक की आवश्यकता नहीं होती है। 6–7 साल के बच्चे से लेकर 60–70 साल तक का बुजुर्ग इस काम को बैठे–बैठे कर सकता है।

बाजार उपलब्धता

इसे बेचने के लिए कहीं जाना नहीं पड़ता है। खरीददार गांव से उत्पाद खरीदकर ले जाते हैं। दिसम्बर से जून तक इसकी मांग विशेष रूप से होती है। क्योंकि यही समय पर्व, त्यौहार एवं शादी–ब्याह अथवा मांगलिक कार्यों का उपयुक्त समय होता हैं और उस दौरान गांव–देहात में आगतों, अतिथियों को खाना खिलाने के लिए इन पत्तलों का उपयोग बहुतायत में किया जाता है।

लागत–लाभ विवरण (प्रति व्यक्ति प्रतिदिन)

उत्पादन का नाम	कच्चा माल तोड़ने में लगने वाला समय	बनने में लगने वाला समय	तैयार माल	दर	कुल आय	कार्य में प्रतिदिन लगने वाला समय	कुल प्राप्ति
दोना	2–3 घण्टे	1 घण्टा	200 पीस	रु० 10 सैकड़ा	20.00	4 घण्टे	80.00
पत्तल	2–3 घण्टे	1 घण्टा	200 पीस	रु० 10 सैकड़ा	20.00	4 घण्टे	80.00
रस्सी	जड़ खोदना 5 घण्टे	4 घण्टा	5 किग्रा० बंधक	रु० 10 प्रति किग्रा	50.00	4 घण्टे	200.00
योग							**360.00**

सफल अनुभव

जनपद छतरपुर के गांव पठा के श्री शंकर सेन पुत्र श्री बैजनाथ ने बताया कि पहले यह काम सिर्फ नाई जाति से जुड़े लोग ही करते थे, परन्तु निरन्तर पड़ते सूखे के कारण अन्य लोगों ने भी यह काम आजीविका के विकल्प के रूप में अपना लिया है। श्री शंकर सेन की आजीविका का मुख्य साधन खेती आधारित मजदूरी है, परन्तु सूखे के कारण खेती बहुत कम हुई और नतीजतन इनकी आजीविका प्रभावित हुई। ऐसी स्थिति में इन्होंने परिवार के भरण–पोषण के लिए दोना–पत्तल बनाने का उपक्रम किया और इसमें इन्हें आशातीत सफलता भी मिली। इनका कहना है कि सूखा हो या सामान्य दिन हमारे काम व बिक्री पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है। हमारी बिक्री तो सूखे के समय बढ़ जाती है, क्योंकि उस समय लोग महंगे होने के कारण प्लास्टिक से बने उत्पाद खरीद पाने में असमर्थ होते हैं। पलाश के पत्तों से बना हमारा उत्पाद सस्ता होने के साथ ही लाभकारी, शुद्ध व पर्यावरण सम्मत होता है। प्रयोग के बाद इसे खेतों मे डाल देने पर खेतों की उर्वरा शक्ति भी बढ़ती है। इसके साथ ही उन्होंने कहा कि हमारा व्यवसाय बिना पूंजी के सिर्फ श्रम आधारित होता है। अतः नुकसान की संभावना नहीं के बराबर होती है। इनका कहना है कि अगर सरकार स्थानीय संसाधनों पर आधारित व्यवसायों पर ध्यान दे और हमें थोड़ी तकनीकी सुविधा प्रदान हो, तो हमारा व्यवसाय और अधिक लाभप्रद सिद्ध हो सकता है। आज हम इसी की बदौलत अपने परिवार का भरण–पोषण, बच्चों की शिक्षा–दीक्षा सुचारु ढंग से निपटा ले रहे हैं। हमारे इस प्रयास की सफलता देखकर 70–80 परिवार और इस प्रयास को अपनाकर अपनी आजीविका सुनिश्चित कर रहे हैं।

पलाश के पत्तों से बना दोना पत्तल लाभकारी, शुद्ध व पर्यावरण सम्मत होने के साथ सिर्फ श्रम आधारित होने के कारण इसमें नुकसान की संभावना नहीं के बराबर होती है।

बकरी पालन : सूखे में आजीविका का सहारा

खेती में पशुपालन एक महत्वपूर्ण अवयव के रूप में हमेशा से उपयोगी रहा है। सूखे के क्षेत्र में इसका महत्व और बढ़ जाता है और उसमें भी बकरी पालन सूखे की दृष्टिकोण व छोटे किसानों के लिहाज से काफी प्रभावी है क्योंकि इसमें लागत कम होने के साथ ही साथ आजीविका के विकल्प भी बढ़ जाते है।

परिचय

खेती और पशु दोनों एक दूसरे के पर्याय हैं। उत्तर प्रदेश की आजीविका इन्हीं दो के इर्द–गिर्द अधिकांशतः घूमती रहती है। खेती कम होने की दशा में लोगों की आजीविका का मुख्य साधन पशुपालन हो जाता है। गरीब की गाय के नाम से मशहूर बकरी हमेशा ही आजीविका के सुरक्षित स्रोत के रूप में पहचानी जाती रही है। बकरी छोटा जानवर होने के कारण इसके रख–रखाव का खर्च भी न्यूनतम होता है, सूखे के दौरान भी इसके खाने का इन्तज़ाम आसानी से हो सकता है, इसके साज–संभाल का कार्य महिलाएं एवं बच्चे ही कर सकते हैं और साथ ही आवश्यकता पड़ने पर इसे आसानी से बेच कर अपनी जरूरत भी पूरी की जा सकती है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र में अधिकतर लघु एवं सीमान्त किसान होने के कारण यहां पर सभी परिवार एक या दो जानवर अवश्य पालते हैं, ताकि उनके लिए दूध की व्यवस्था होती रहे। इनमें गाय, भैंस, बकरी आदि होती हैं। विगत कुछ वर्षों से पड़ रहे सूखे की वजह से और बड़े जानवरों के लिए चारा आदि की व्यवस्था करना एक मुश्किल कार्य होने के कारण लोग बकरी पालन को अधिक तरजीह दे रहे हैं। जंगल एवं बीहड़ के किनारे बसे गांवों के लिए यह एक उपयुक्त एवं आसानी से हो सकने वाली आजीविका है, क्योंकि जंगलों में चराकर ही इनको पाला जा सकता है और गरीब परिवारों की रोजी–रोटी आसानी से चल सकती है। इस प्रकार बकरी पालन सूखाग्रस्त क्षेत्रों के लिए एक मुफीद स्रोत है।

नस्लें

वैसे तो बकरी की जमुनापारी, बरबरी एवं ब्लेक बंगाल इत्यादि नस्लें होती हैं। लेकिन यहां पर लोग सूखा की स्थिति में देशी एवं बरबरी नस्ल की बकरियों का पालन करते हैं, जिनकी देख–रेख आसानी से हो जाती है।

प्रक्रिया

बकरी को पालने के लिए अलग से किसी आश्रय स्थल की आवश्यकता नहीं पड़ती। उन्हें अपने घर पर ही रखते हैं। बड़े पैमाने पर यदि बकरी पालन का कार्य किया जाये, तब उसके लिए अलग से बाड़ा बनाने की आवश्यकता पड़ती है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र में अधिकतर लोग खेती किसानी के साथ बकरी पालन का कार्य करते हैं। ऐसी स्थिति में ये बकरियां खेतों और जंगलों में घूम–फिर कर अपना भोजन आसानी से प्राप्त कर लेती है। अतः इनके लिए अलग से दाना–भूसा आदि की व्यवस्था बहुत न्यून मात्रा में करनी पड़ती है।

यह उल्लेखनीय है कि देशी बकरियों के अलावा यदि बरबरी, जमुनापारी इत्यादि नस्ल की बकरियां होगीं तो उनके लिए दाना, भूसी, चारा की व्यवस्था करनी पड़ती है, पर वह भी सस्ते में हो जाता है। दो से पांच बकरी तक एक परिवार बिना किसी अतिरिक्त व्यवस्था के आसानी से पाल लेता है। घर की महिलाएं बकरी की देख–रेख करती हैं और खाने के बाद बचे जूठन से इनके भूसा की सानी कर दी जाती है। ऊपर से थोड़ा बेझर का दाना मिलाने से इनका खाना स्वादिष्ट हो जाता है। बकरियों के रहने के लिए साफ–सुथरी एवं सूखी जगह की आवश्यकता होती है।

प्रजनन क्षमता

एक बकरी लगभग डेढ़ वर्ष की अवस्था में बच्चा देने की स्थिति में आ जाती है और 6–7 माह में बच्चा देती है। प्रायः एक बकरी एक बार में दो से तीन बच्चा देती है और एक साल में दो बार बच्चा देने से इनकी संख्या में वृद्धि होती है। बच्चे को एक वर्ष तक पालने के बाद ही बेचते हैं।

बकरियों में प्रमुख रोग

देशी बकरियों में मुख्यतः मुंहपका, खुरपका, पेट के कीड़ों के साथ – साथ खुजली की बीमारियां होती हैं। ये बीमारियां प्रायः बरसात के मौसम में होती हैं।

उपचार

बकरियों में रोग का प्रसार आसानी से और तेजी से होता है। अतः रोग के लक्षण दिखते ही इन्हें तुरन्त पशु डाक्टर से दिखाना चाहिए। कभी–कभी देशी उपचार से भी रोग ठीक हो जाते हैं।

बकरी पालन हेतु सावधानियाँ

बीहड़ क्षेत्र में बकरी पालन करते समय निम्न सावधानियां बरतनी पड़ती हैं –

- आबादी क्षेत्र जंगल से सटे होने के कारण जंगली जानवरों का भय बना रहता है, क्योंकि बकरी जिस जगह पर रहती है, वहां उसकी महक आती है और उस महक को सूंघकर जंगली जानवर गांव की तरफ आने लगते हैं।
- बकरी के छोटे बच्चों को कुत्तों से बचाकर रखना पड़ता है।
- बकरी एक ऐसा जानवर है, जो फसलों को अधिक नुकसान पहुंचाती है। इसलिए खेत में फसल होने की स्थिति में विशेष रखवाली करनी पड़ती है। वरना खेत खाने के चक्कर में आपसी दुश्मनी भी बढ़ने लगती है।

बकरी पालन में समस्याएं

हालांकि बकरी गरीब की गाय होती है, फिर भी इसके पालन में कई दिक्कतें भी आती हैं –

- बरसात के मौसम में बकरी की देख–भाल करना सबसे कठिन होता है। क्योंकि बकरी गीले स्थान पर बैठती नहीं है और उसी समय इनमें रोग भी बहुत अधिक होता है।
- बकरी का दूध पौष्टिक होने के बावजूद उसमें महक आने के कारण कोई उसे खरीदना नहीं चाहता। इसलिए उसका कोई मूल्य नही मिल पाता है।
- बकरी को रोजाना चराने लेकर जाना पड़ता है। इसलिए एक व्यक्ति को उसकी देख–रेख के लिए रहना पड़ता है।

फायदे

- सूखा प्रभावित क्षेत्र में खेती के साथ आसानी से किया जा सकने वाला यह एक कम लागत का अच्छा व्यवसाय है, जिससे मोटे तौर पर निम्न लाभ होते हैं –
- जरूरत के समय बकरियों को बेचकर आसानी से नकद पैसा प्राप्त किया जा सकता है।
- इस व्यवसाय को करने के लिए किसी प्रकार के तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता नहीं पड़ती।
- यह व्यवसाय बहुत तेजी से फैलता है। इसलिए यह व्यवसाय कम लागत में अधिक मुनाफा देने वाला है।
- इनके लिए बाजार स्थानीय स्तर पर ही उपलब्ध है। अधिकतर व्यवसायी गांव से ही आकर बकरी–बकरे को खरीदकर ले जाते हैं।

निश्चित तौर पर बकरी गरीब की गाय के रूप में जानी जाती है। अतः इसके पालन में थोड़ी सी सावधानी बरत कर होने वाली दिक्कतों से बचा जा सकता है। विशेष रूप से वर्षा के दिनों में इनका पालन कठिन होता है परन्तु बकरी पालन से होने वाले फायदे के सापेक्ष यह कठिनाईया नगण्य लगती हैं।

लागत–लाभ विवरण– (एक बच्चे का)

लागत विवरण	मूल्य	लाभ विवरण	मूल्य	शुद्ध लाभ
बच्चा 1	रु० 500.00	एक वर्ष के दो बच्चों की बिक्री दर रु० 1500.00	रु० 3000.00	रु० 4350.00 – 2000.00 = 2350.00
6 माह तक रख–रखाव, टीकाकरण आदि	रु० 1500.00	90 लीटर दूध दर 15/– प्रति लीटर	रु० 1350.00	
योग	**रु० 2000.00**		**रु० 4350.00**	**रु० 2350.00**

सूखे के क्षेत्र में विशेषत: देशी बकरियाँ आसानी से पाली जा सकती है और उनके लिए बाज़ार भी स्थानीय गाँव के स्तर पर उपलब्ध हो जाता है। थोड़ा सा जोखिम जरूर है, परन्तु आजीविका के अन्य विकल्पों से बेहतर होने की वजह से लोग इसे अपना रहे हैं।

सफल अनुभव

ग्राम कोटा मुस्तकिल, विकास खण्ड कुठौन्द, जनपद – जालौन के निवासी 65 वर्षीय श्री बाला प्रसाद के 7 सदस्यों वाले परिवार की आजीविका चलाने के लिए इनके पास चार बीघा खेती योग्य भूमि है। एक तो कम खेती ऊपर से सूखा की स्थितियों ने रोजी–रोटी की समस्या को विकट बना दिया। ऐसी स्थिति में इन्होंने वर्ष 2004 में 5 बकरियों को खरीदकर बकरी पालन का कार्य प्रारम्भ किया और आज इनके पास 40–50 की संख्या में बकरियां एवं भेड़ हैं। बात–चीत के दौरान इन्होंने बताया कि जब कम बकरियां थी, तब तो उन्हें घर में ही रख लेते थे, परन्तु अधिक संख्या में हो जाने पर इनके लिए बाड़ा बनाना पड़ा है ताकि वे वहां सुरक्षित रह सकें। शुरूआत में इन्होंने देशी नस्ल की बकरियों को पाला। पुनः बरबरी नस्ल की बकरियों को खरीद कर लाये, परन्तु उनमें रोग प्रतिरोधी क्षमता कम होने के कारण इन्होंने पुनः देशी बकरियों को ही प्राथमिकता दी। बकरियों को निरोग रखने के लिए इन्हें काफी साफ–सफाई करनी पड़ती है। चूंकि इनका गांव बीहड़ के किनारे है, इसलिए बकरियों को चराने की अच्छी व्यवस्था है। ये बकरियों को चराने के लिए जंगल लेकर जाते हैं। जहां छोटे बेर की पत्तियों, बरगद, पीपल, पाखर, महुआ, आदि की पत्तियों को खाकर रहती हैं। घर पर जूठन के साथ बेझर का दाना मिला भूसी खिलाते हैं। बकरी के बच्चे जब तक छोटे रहते हैं, तब तक देख–भाल की अतिरिक्त आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि कुत्तों आदि का भय रहता है। साथ ही इन्हें जंगली जानवरों से भी बचाना पड़ता है। इन्होंने बताया कि हालांकि थोड़ा सा जोखिम तो है, फिर भी इसके खरीददार गांव में ही उपलब्ध हो जाने के कारण यह एक फायदेमन्द व्यवसाय है, जिससे आज हमने खेती योग्य कुछ जमीन भी खरीद ली और हमारे पास बकरियां भी बढ़ गयीं। आज हमने इसे बड़े पैमाने पर व्यवसाय के रूप में प्रारम्भ कर लिया है, जिससे हमारी आजीविका सूखे के दौरान भी सुरक्षित हुई है।

सूखे में आजीविका का साधन बनी बागवानी

अपनी भौगोलिक बनावट व विपरीत जलवायुविक परिस्थितियों के चलते बुन्देलखण्ड कृषि के लिहाज से बहुत मुफीद नहीं रहा है। लिहाजा लोग अन्य विकल्पों की तलाश में रहते हैं। ऐसे में कुछ लोगों ने बागवानी को अपना कर एक नयी शुरूआत की है, जो क्षेत्र को हरा-भरा कर एक नयी शुरूआत की है। यह क्षेत्र को हरा-भरा रखने के साथ ही आजीविका का साधन भी रही है।

परिचय

ललितपुर के विकास खण्ड जखौरा का ग्राम नदनवार मुख्यतः आदिवासियों की बस्ती है, जहां लोगों का मुख्य व्यवसाय खेती एवं मजदूरी है। उबड़–खाबड़ जमीनें व सिंचाई के साधनों का अभाव तो यहां है ही, विगत दशक से कम होती जा रही वर्षा ने छोटी जोत के किसानों के सामने और भी संकट खड़ा किया है। यहां खेती पूर्णतः वर्षा आधारित होने के कारण सिर्फ एक ही फसल हो पाती है। ऐसी स्थिति में लोगों को आजीविका के अन्य विकल्पों की तलाश करनी पड़ती है, जिसमें सबसे मुफीद स्रोत पलायन है।

जंगल और पहाड़ शुरू से ही बुन्देलखण्ड की पहचान रहे हैं और लोगों ने इसका संरक्षण परम्परागत तौर पर किया। पर बीच के कुछ वर्षों में विकासोन्मुख प्रवृत्ति तेजी से पनपने के कारण लोग जंगलों, पेड़ पौधों से विमुख होते गये। उनका संरक्षण तो दूर, उन्हें काटने, विनष्ट करने में भी लोगों को हिचकिचाहट नहीं हुई और नतीजतन बुन्देलखण्ड सूखे से सुखाड़ की तरफ बढ़ने लगा। जब लोगों की खेती पर संकट आया, तो लोगों ने सुध ली और थोड़े–थोड़े परिक्षेत्र में बागवानी के तौर पर हरियाली को जिन्दा रखने की कवायद शुरू हुई।

इस कवायद में ग्राम नदनवार के आदिवासी भी शामिल हुए, जिन्होंने फलदार वृक्षों को लगाकर न सिर्फ पर्यावरण सुरक्षा के प्रति अपनी आस्था जताई, वरन् इसे अपनी आजीविका से भी जोड़ा।

प्रक्रिया

खेत की तैयारी

फलदार वृक्षों को लगाने के लिए मई माह में ही खेत की तैयारी की जाती है, जिसके तहत् गढ्ढे खोद दिये जाते हैं। गढ्ढा 60 सेमी0 गहराई व 60 सेमी0 व्यास का तथा गढ्ढों व पौधों के बीच में 6–8 मीटर का अन्तर रखा जाता है ताकि बड़े होने पर जड़ों को पूरी तरह फैलने का स्थान मिल सके।

पौध

फलदार वृक्षों में मुख्यतः आम, आंवला, अमरूद के पौधों को प्राथमिकता देते हैं।

पौध की मात्रा

एक एकड़ भूमि में 50–55 पौधे लगाये जाते हैं। पौध से पौध की दूरी 6 मी0 होती है।

पौधरोपण

पौधरोपण का उपयुक्त समय जून के अन्तिम सप्ताह से अगस्त तक होता है। जब गढ्ढे में भरपूर नमी हो, तभी उपरोक्त पौध को गीला करके लगा देना चाहिए।

सिंचाई

पौधों में पर्याप्त नमी की आवश्यकता होती है। अतः पौध लगाने के बाद तीन दिनों तक लगातार उसमें पानी डालना चाहिए ताकि जड़ मिट्टी में जकड़ जाये।

खाद

गोबर की सड़ी खाद का प्रयोग पौध लगाने से पहले किया जाता है।

रोग व कीट नियंत्रण

यदि किसी पौध में रोग के लक्षण दिखें अथवा उस पर कीटों का प्रकोप हो, तो तुरन्त वांछित उपचार करते हैं।

फसल उत्पादन

वैसे तो सभी फलदार वृक्षों के फल देने का समय उसकी प्रजाति पर निर्भर करता है। फिर भी औसतन एक पौधा ढाई से तीन वर्षों में फल देने लगता है।

लागत-लाभ विवरण (एक पौधे का)

लागत विवरण	मूल्य	उत्पादन	मूल्य	शुद्ध लाभ
गड्ढा नमी आदि में व्यय	रु० 150.00	2 कुन्तल दर 1000 प्रति कुन्तल	रु० 20000	रु० 2000.00 – 300.00 = 1700.00
पौध रक्षण कीटनाशक आदि पर व्यय	रु० 150.00			
योग	रु० 300.00			रु० 1700.00

बेहतर आजीविका का स्रोत बागवानी कम पानी में भी किया जा सकता है। साथ ही सरकारी योजनाओं का भी इसमें विशेष लाभ प्राप्त हो जाता है और इससे पर्यावरण भी सुदृढ़ होता है। नरेगा में भी बागवानी को बढ़ावा देने के लिए विशेष योजनाएं मौजूद हैं।

सफल अनुभव

जनपद ललितपुर के विकास खण्ड जखौरा स्थित ग्राम नदनवार के रहने वाले 56 वर्षीय श्री बाबूलाल सहरिया के पास 8 एकड़ जमीन एवं परिवार में सदस्यों की संख्या 07 है। इन्होंने बताया कि हम केवल एक फसल ही ले पाते थे। बारिश के समय जब जैसी बारिश हो, वैसी ही खेती कर पाते थे। पिछले साल अर्थात् वर्ष 2004 में आवश्यकता से अधिक बारिश हो जाने पर हमारी उर्द की खेती बिलकुल ही चौपट हो गयी, बीज तक नहीं निकल पाया। उससे पहले वर्ष सूखा के कारण कोई फसल नहीं हो पायी।

सूखे के कारण बार–बार हो रहे नुकसान से उन्होंने कुछ ऐसा उपाय करने का विचार किया, जिससे आजीविका सुरक्षित हो सके और तब इन्होंने अपने पुत्रों के साथ मिलकर अपने खेत में कुंआ खोदने का काम शुरू किया। 4–5 मीटर कुंआ खोदने पर उसमें पानी मिल गया। तब इन्होंने अपने खेत में फलदार वृक्षों को लगाने का निश्चय कर वर्ष 2005 मे अपनी 2 एकड़ भूमि पर आंवला व अमरूद के 100 पौध रोपित कर दिये। कुएं में अधिक पानी न होने के बाद भी पौधों की आवश्यकता पूर्ति के लिए पानी पर्याप्त था। पर फिर भी पानी बचाने की बात सोचते हुए इन्होंने एक नवाचार किया – ''अस्पताल के कबाड़ से ग्लूकोज की खाली बोतलें खरीद कर उसमें पानी भर दिया और पौधे के पास एक लकड़ी के सहारे लटका कर उसकी नली को पौधे की जड़ के पास छोड़ दिया। इससे बूंद–बूंद पानी जड़ में जाने से वहां निरन्तर नमी बनी रहती है और पानी की खपत भी कई गुना कम हो जाती है।''

इनके पेड़ अच्छी तरह बढ़ने लगे। आज उनके लगभग 45 पेड़ आंवला के तथा 55 पेड़ अमरूद के तैयार हो चुके हैं। अमरुद से 1 से 1.25 लाख तथा आंवले से 1.5 लाख तक की इनकी वार्षिक आमदनी है, जिससे उत्साहित होकर इन्होंने अपनी अन्य जमीनों में भी फलदार वृक्षों के पौध लगा दिये हैं। अब उनकी लगभग 1000 वृक्षों की बागवानी तैयार हो रही है, जो उज्जवल भविष्य का संकेत दे रही है। पहले इनके लड़के ललितपुर एवं सीमान्त प्रदेशों में मजदूरी करने के लिए पलायन कर जाते थे, अब अपने ही खेत में काम करके सुखी जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

इनके उत्साह को देखते हुए हाल ही में नरेगा के अन्तर्गत उनके खेत पर बने कुंएं का गहरीकरण करा दिया गया तथा उसे पक्का भी करा दिया गया है, जिससे उनके सामने पानी का संकट खत्म हो गया है। साथ ही नरेगा द्वारा उनकी जमीन में कुछ पेड़ भी लगाया है। उद्यान विभाग द्वारा भी उनके खेत को माडल के रूप में विकसित करने का काम किया जा रहा है।

श्री बाबूलाल सहरिया ने सूखे में परम्परागत फसलों के अतिरिक्त बागवानी को अपनी आजीविका का साधन बनाया, जिसमें वे सफल हुए और उनके इस प्रयास को गांव के अन्य लोग भी अपना रहे हैं।

पर्यावरण संतुलन बनाये रखने हेतु किया वनारोपण

विकास के दौर में वनों के अन्धा-धुन्ध कटान से पर्यावरणीय संकट उत्पन्न हुआ। ऐसी स्थिति में वृहद स्तर पर वृक्षारोपण का कार्य सीधे तौर पर तो किसी को व्यक्तिगत लाभ नहीं देती परन्तु भविष्य के लिए समूचे क्षेत्र को एक बेहतर पर्यावरण के साथ आजीविका भी प्रदान करने में सक्षम है।

परिचय

शहरी विस्तार एवं विकास ने जो पहला काम किया वह यह कि वनों का विनाश तेजी से होने लगा। एक तरफ तो शहर के विस्तार हेतु वन काटे जाने लगे, दूसरी तरफ सजावटी सामानों के लिए भी वनों का कटान तेजी से होने लगा। इस कटान ने कालान्तर में अपना प्रभाव दिखाया और प्रतिकूल मौसम की मार हम सभी झेलने लगे।

सोनभद्र जिले के दक्षिणांचल के विकास खण्ड – दुद्धी के ग्राम पंचायत नगवा की स्थिति भी कुछ यही रही। आदिवासी बहुल इस गांव के 512 परिवारों के 4675 लोगों की आजीविका एवं जीवन–यापन वनोपज पर ही आधारित था। ये आदिवासी परिवार अति निर्धन तथा भूमिहीन होने के कारण आस–पास के जंगलों से ही अपना जीवन यापन करते थे पर वर्ष 1978 से 83 के बीच जंगल का कटान जोरों से हुआ। इसमें वन विभाग, स्थानीय प्रशासन, ठेकेदार, ग्रामीण सभी शामिल रहे। नतीजतन गांव वालों को चूल्हे जलाने के लिए भी लकड़ी मिलनी मुश्किल हो गयी। साथ ही जंगल कटने के दूरगामी परिणाम भी सामने आने लगे, जब लोगों को अनियमित मौसमों का सामना करना पड़ा। ऐसी स्थिति से निपटने के लिए लोगों को पुनः जंगलों की याद आयी और उन्होंने इसे पुनर्स्थापित करने की दिशा में प्रयास करना शुरू किया।

प्रक्रिया

वर्ष 1989 के दशक में नगवा के लोगों ने यह महसूस किया कि वन न होने से बहुत सारी परेशानियों का सामना करना पड़ता है। 1989 के जनवरी माह में नगवा गांव के कोलेसर, रामवृक्ष, हरिचरन, सोमारू आदि अलाव ताप रहे थे और स्थानीय परिस्थितियों पर भी चर्चा कर रहे थे। उसी समय लकड़ियों के अभाव सम्बन्धी विषय सामने आया। इन लोगों ने अभाव से उत्पन्न परिणामों पर चर्चा तो किया ही इस विषय पर भी गहन विमर्श किया कि जंगल नव निर्माण किस प्रकार हो, ताकि हमारी तत्कालीन समस्याओं के साथ पर्यावरणीय समस्याओं को भी कम करने में सहायता मिले। चूंकि यह विषय पूरे गांव से जुड़ा हुआ था। अतः सबने इसे पूरी गम्भीरता से लिया और अगले ही दिन गांव के प्रमुख श्री मोहन सिंह व ईश्वरी प्रसाद से मिलकर पूरे विषयक्रम पर अपने विचारों से उन्हें अवगत कराते हुए सहयोग की मांग की।

खुली बैठव व समिति का गठन

उपरोक्त प्रक्रिया को आगे बढ़ाने की गरज से वर्ष 1989 के मई माह में ग्राम सभा की खुली बैठक का आयोजन किया गया। इस बैठक में पूरे परिवार को आने का न्यौता दिया गया। 70 प्रतिशत जनसंख्या इस बैठक में शामिल हुई। बैठक का मुख्य उद्देश्य समस्या से लोगों को अवगत कराना, समस्या के समाधान पर चर्चा करना एवं समाधान के विकल्पों पर लोगों के विचार लेना था।

श्री ईश्वरी प्रसाद ने जंगल खत्म होने से हो रही समस्याओं की तरफ लोगों का ध्यानाकर्षण करते हुए कहा कि जंगल खत्म होने से जलौनी लकड़ी का अभाव, शवदाह आदि की समस्या हम सभी झेल रहे हैं। ध्यान देने वाली बात है कि ये समस्याएं तो ऐसी हैं, जिनका विकल्प भी हम ढूंढ़ सकते हैं कुछ ऐसी समस्याएं भी हमारे सामने आ रही हैं, जिनका हमारे भविष्य पर दूरगामी प्रभाव पड़ने वाला है। मसलन हमें कम बारिश, अनियमित मौसम, पर्यावरण प्रदूषण की गम्भीर समस्याओं से दो–चार होना पड़ सकता है और यह अवश्यम्भावी है। अतः इसके विकल्प एवं समाधान के लिए हमें अभी से चेतना होगा और तब इसके लिए उन्होंने अपने स्तर पर गांव वालों

के लिए एक अधिसूचना जारी की कि – "अब से गांव का कोई भी व्यक्ति जंगल नहीं काटेगा। जंगल की सुरक्षा करना सबकी जिम्मेदारी होगी साथ ही पेड़ से नये कल्ले निकलने के दौरान विशेष देख–भाल एवं सुरक्षा की जायेगी। अब जो भी व्यक्ति पेड़ काटता हुआ अथवा पेड़ काटने में सहयोग करता हुआ मिल जायेगा उसे 50 रू0 के आर्थिक दण्ड के साथ ही पंचायत के बीच में कान पकड़कर 50 बार उठक–बैठक करने की सजा दी जायेगी।" हालांकि कुछ लोगों ने इसका विरोध भी किया, परन्तु बहुसंख्य लोगों द्वारा इस अधिसूचना का स्वागत एवं समर्थन ही किया गया। तत्पश्चात् जंगल की मानिटरिंग के लिए सर्वसम्मति से समिति का गठन किया गया। चार बीट की निगरानी एवं देख–भाल के लिए चार निगरानी समिति बनाई गयी और उनके पदाधिकारियों का चयन किया गया। ये समितियां निम्नवत् हैं –

1. **भौरहवां पहाड़ टोला समिति**
   अध्यक्ष – मोहन सिंह, कोषाध्यक्ष – कौलेश्वर, सदस्य – सोमारू, हरिकिशुन, वित्तन, शीतला प्रसाद, जानकी प्रसाद, रामवृक्ष, रामप्रसाद, वंश, तेलू, मनराज, मनीजर, पांचू।

2. **नगीनिया पहाड़ टोला समिति**
   अध्यक्ष – देव कुमार, कोषाध्यक्ष – राजकेश्वर पुत्र श्री रामप्रसाद, सदस्य – राजकेश्वर पुत्र श्री कुन्जन, दसई, बीरप्रसाद, जलमन, धनराज, रामफल, रामवृक्ष, राजेन्द्र लोहार।

3. **झुनकहवा झलखड़िया पहाड़ टोला समिति**
   अध्यक्ष – तिलेश्वर, कोषाध्यक्ष – रामपाल, सदस्य – रामबालक, बीरप्रसाद, रामसिंह, राजनारायण, रामकेश्वर, कुबेर सिंह, फुलेश्वर।

4. **रोक्सो टोला**
   अध्यक्ष – धर्मजीत, कोषाध्यक्ष – राजेश्वर पनिका, सदस्य – सोनू पनिका, राधेशंकर, बद्री प्रसाद, छोटे लाल, जलजीत, बाबूलाल, ईश्वर, सोमारू।

इन सभी समितियों का संचालन श्री ईश्वरी प्रसाद को सौंपा गया। इन समितियों को मुख्यतः अपने–अपने बीट की देख–भाल, सुरक्षा एवं विकास की जिम्मेदारी सौंपी गयी।

निरीक्षित बीटों का क्षेत्रफल

1. **भौरहवां पहाड़ टोला**
   30 हेक्टेयर, 1 किमी0 लम्बाई, 600 मीटर चौड़ाई

2. **नगीनिया पहाड़ टोला**
   40 हेक्टेयर जिसकी लम्बाई 1.5 किमी0, 800 मीटर चौड़ाई

3. **झुनकहवा झलखड़िया पहाड़ टोला**
   ये दो फाट में स्थित है। प्रथम फाट का क्षेत्रफल है – 3.2 हेक्टेयर में 500 मीटर लम्बाई तथा 300 मीटर चौड़ाई। जबकि द्वितीय फाट का क्षेत्रफल है – 4.8 हेक्टेयर बीघा में 600 मीटर लम्बाई तथा 400 मीटर चौड़ाई।

4. **रोक्सो टोला**
   अमवार ग्राम सभा के बार्डर से टेढ़ा ग्राम सभा तक जिसकी लम्बाई 7 किमी0 है। जंगल का यह बीट 400 मीटर चौड़ी तथा 30 मीटर गहराई की कनहर नदी के समीप स्थित है। नदी में अनुमान के मुताबिक 1 से डेढ़ लाख तक जामुन के पेड़ हैं, जिसे लोग कठ–जामुन के नाम से पुकारते हैं।

जंगल नव निर्माण की प्रक्रिया

समिति के लोगों ने पूरी तन्मयता के साथ अपने–अपने क्षेत्र में जंगल नव निर्माण की प्रक्रिया में अपनी सहभागिता की। इसके लिए इन्होंने पहला काम यह किया कि जितने भी पेड़ कटे थे, उनका चिन्हीकरण कर उनके कल्ले निकालने के लिए मई व जून माह में स्थानीय स्तर पर मिलने वाली जड़ी–बूटी का लेप लगाकर बोरों से बांध दिया। इस तरह की प्रक्रिया पूरे 200 पेड़ों के साथ अपनाई गयी। पूरे चार माह तक बोरे बंधे रहने के बाद इन पेड़ों में से नये कल्ले निकलने शुरू हो गये। यह कार्य दो–तीन वर्षों तक कर कटे पेड़ों की रक्षा की गयी और जिन पेड़ों पर लेप लगाकर बोरे बांधे गये, एक वर्ष के भीतर वे 2 फीट लम्बे, 6 इंच मोटे हो गये। तीन वर्ष के पश्चात् पेड़ की लम्बाई 12 फीट व मोटाई 12 इंच हो गयी। ग्राम सभा नगवा के लोग 6 वर्षों तक उपरोक्त विधि से पेड़ों की रक्षा करने में जुटे रहे। इन्होंने अधिकांशतः सीधी लम्बाई में बढ़ने वाली प्रजाति

प्रदेश के दक्षिणी भू-भाग का एक बड़ा वर्ग हमेशा से आजीविका के लिए वनों पर ही आरक्षित रहा है। अतः जंलग नव निर्माण की प्रक्रिया ने लोगों के अन्दर एक नई चेतना का संचार किया और ज्यादा से ज्यादा लोग इससे जुड़कर वन संरक्षण हेतु आगे आये।

के पौधों पर ही यह उपचार अपनाया और सफल भी रहा। परिणामतः आज 20 वर्ष बीत जाने के बाद ये पेड़ 30–35 फीट लम्बाई तथा डेढ़ से तीन फीट मोटाई वाले हो गये हैं।

लाभ

जामुन का उपयोग एवं उससे होने वाली आय

कठ जामुन का स्वाद खट्टापन लिये हुए तथा पूरे तौर पर पक जाने पर मीठा हो जाता है। यह आकार में छोटा होता है। एक पेड़ से लगभग 50 किग्रा0 तक फल निकलता है। जबकि पेड़ अधिक बड़े होने की स्थिति में 100 से 200 किग्रा0 तक भी फल निकलते हैं। जिसका बाजार भाव 10 से 15 रू0 प्रतिकिग्रा0 होता है। जबकि इसमें लागत के तौर पर सिवाय फल तोड़ने मे लगे श्रम के अतिरिक्त और कुछ भी व्यय नहीं होता है। जामुन के एक पेड़ से होने वाले लाभ को इस प्रकार देखा जा सकता है – 50 किग्रा0 x 10.00 प्रति किग्रा = 500.00 रू x एक लाख पेड़ = 5 करोड़ रूपये

जामुन तोड़ने एवं बिक्री की स्वतन्त्रता होने के नाते औसतन प्रति व्यक्ति रू0 2000.00 का लाभ जामुन के पेड़ से लेता है। यह पूर्णतया उनकी मेहनत पर आधारित होता है।

बीटवार पेड़ों की संख्या व प्राप्त आय को इस प्रकार देख सकते हैं –

बीट	पेड़ों की संख्या	मानक रेट	प्राप्त आय
प्रथम बीट	1.50 लाख	600 प्रति पेड़	9 करोड़
द्वितीय बीट	2 लाख	600 प्रति पेड़	12 करोड़
तृतीय बीट	1 लाख	600 प्रति पेड़	6 करोड़
चतुर्थ बीट	50 हजार	600 प्रति पेड़	3 करोड़
कुल	5 लाख पेड़		30 करोड़

इस प्रकार इन आदिवासियों ने अपनी सोच एवं कार्य व्यवहार में परिवर्तन लाकर 5 लाख वृक्षों से परिपूर्ण जंगल का निर्माण करते हुए शुद्ध आबो–हवा बनाये रखने में पर्यावरणीय मदद की है। साथ ही –

- यदि किसी परिवार में घर मकान आदि बनाने के लिए बल्ली आदि की आवश्यकता पड़ती है, तो वह उसे सम्बन्धित समिति के सामने रखता है। समिति मांग की प्राथमिकता व उपयुक्तता को निर्धारित करते हुए उसे बल्ली आदि उपलब्ध कराती है।
- अब लोगों को जलावनी लकड़ी की समस्या भी नहीं है। क्योंकि स्वतः सूख कर गिरने वाली टहनियां व शाखाएं ही इतनी अधिक होती हैं कि लोगों की समस्या का समाधान हो जाता है।

वर्तमान परिदृश्य

लगभग 20 वर्षों पूर्व बनाये गये समिति के नियम आज भी लागू हैं। उनमें इतना संशोधन अवश्य कर दिया गया है कि जुर्माना की राशि काटे गये पेड़ की लम्बाई व मोटाई के आधार पर निर्धारित होती है और अब यह रू0 1000.00 से 2000.00 तक हो जाती है। इसके साथ ही पंचायत के बीच में उठक–बैठक करने की संख्या भी बढ़कर 100 हो गयी है।

कठिनाईयां

हालांकि यह सभी कार्य बहुत आसान नहीं था। कई बार वन विभाग के अधिकारी, कर्मचारी आये। इन गांव वालों का डराया धमकाया गया। इन्हें गिरफ्तार करने तक की धमकियां दी गयीं। फिर भी इन्होंने अपना साहस व संकल्प नहीं छोड़ा और आज इनके पास 5 लाख पेड़ों की अकूत सम्पत्ति खड़ी है, जो इन्हें पर्यावरणीय दृष्टि से अन्य लोगों की अपेक्षा उन्नत व प्रगतिशील साबित करती है।

वनों का संरक्षण व वनारोपण न सिर्फ पर्यावरणीय दृष्टि से उत्तम है, अपितु यह आजीविका का भी एक बेहतर विकल्प है। बावजूद इसके कुछ स्वार्थी तत्व अपने निजी हितों के चलते ऐसी प्रक्रिया को आगे ले जाने से रोकते हैं, लेकिन समुदाय की संगठित व दृढ़ इच्छा शक्ति ने इस प्रक्रिया को बनाए रखा है।

8 फसल के तरीके व उपादान आधारित आजीविका

पर परागत बीजों का भण्डारण

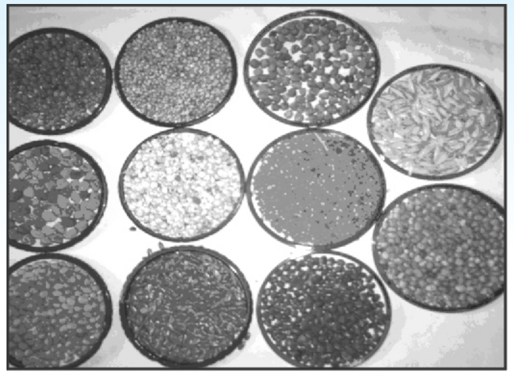

विकास की बयार से खेती खूब प्रभावित हुई। लोग हाइब्रिड बीजों एवं आधुनिक खेती की ओर आकर्षित हुए परन्तु धीरे-धीरे विकास ने विनाश का रूप धारण किया और इन बीजों से लागत बढ़ती गई व उपज घटती गई, तब लोगों ने पुनः परम्परागत बीजों के भण्डारण की ओर रूख किया।

परिचय

बुन्देलखण्ड के लोगों की आजीविका का स्रोत मुख्यतः खेती और पशुपालन है। उबड़–खाबड़ जमीनों एवं सिंचाई के साधनों की अनुपलब्धता यहां की खेती को उन्नत बनाने की दिशा में बाधक होते हैं। ऐसी स्थिति में किसान वर्षा आधारित खेती करते हैं।

यहां की प्रमुख फसलें चना, मटर, सरसों, अरहर, ज्वार, बाजरा, मूंग, उड़द है। प्रारम्भ में लोग परम्परागत बीजों से खेती करते थे और निश्चित तौर पर उपज भी पाते थे। कालान्तर में यहां भी विकास की बयार बही और लोग हाइब्रिड बीजों व आधुनिक खेती की तरफ उन्मुख हुए। स्वयं का उत्साह, मेहनत और सरकारी अनुदान ने शुरूआती दौर में सफलता दिलाई। छूट पर लगे सिंचाई साधनों के चलते लोगों ने हाइब्रिड बीजों को बोकर अच्छी फसल प्राप्त की। परन्तु सूखे बुन्देलखण्ड को अनियोजित सरकारी नीतियां एवं लोगों की लिप्सा दोनों ने और भी सूखा बनाया, उस पर निरन्तर बढ़ते तापमान और कम व अनियमित होती बारिश ने रही–सही कसर भी पूरी कर दी। लोगों की खेती बंजर रहने लगी, क्योंकि परम्परागत बीज लुप्त हो चुके थे, हाइब्रिड बीजों को अधिक पानी की दरकार थी और पानी यहां था नहीं।

नतीजतन कम होती बारिश व सुखाड़ की दशा के कारण लोगों की खेती प्रभावित हुई। लोगों के सामने आजीविका का संकट खड़ा हो गया। तब लोगों को पुनः अपने देशी, परम्परागत बीजों की याद आई, जो कम पानी में भी अच्छी उपज दे जाते थे और लोग इसे अपनाने की दिशा में उन्मुख हुए। पर इस दिशा में भी इन बीजों की उपलब्धता सुनिश्चित करना बड़ा संकट था, क्योंकि परम्परागत बीज तो बहुत पहले लोगों के खेत व घरों से गायब हो चुके थे। ऐसी दशा में इन्हें एकत्र करना व इनका भण्डारण करना एक महत्वपूर्ण कार्य था, जिसे ग्राम पिथउपुर के किसानों ने किया।

प्रक्रिया

बीजों का एकत्रीकरण

सर्वप्रथम घर में उपलब्ध अथवा आस–पास के अन्य स्थानों से चना, अरहर, मूंग, अलसी, ज्वार, बाजरा, उर्द, मूंग, डढारी, सिंउवा, चटरी आदि के बीजों की देशी प्रजातियों को एकत्र किया गया।

बीजों का भण्डारण

यहां पर इन देशी बीजों का भण्डारण निम्न विधियों से किया जाता है –

- सर्वप्रथम सभी बीजों को भली–भांति धूप में सुखा लिया गया ताकि इनकी नमी खत्म हो जाये। तत्पश्चात् मिट्टी के बने डेहरी / कुठला को (स्थानीय नामानुसार) भी अच्छी प्रकार धूप दिखाकर उसमें नीचे नीम की पत्ती बिछाकर बीज डालते हैं। पुनः ऊपर से भी नीम की पत्ती डालकर डेहरी का मुंह बन्द कर देते हैं।
- बीजों को भली–भांति धूप में सुखा कर जूट के बोरों में नीम की पत्ती एवं खड़ा नमक मिलाकर रखते हैं। पुनः बोरों का मुंह अच्छी तरह सिलकर उन्हें हवादार क्षेत्र में रख दिया जाता है।
- जबकि बालीदार बीजों जैसे – ज्वार, बाजरा आदि को बांधकर छत में कुण्डी के सहारे लटका दिया जाता है। ध्यान रखा जाता है कि यह ऐसी जगह हो, जहां पर नमी, हवा आदि का प्रवेश आसानी से न हो सके। यह विधि थोड़ी मात्रा में बीजों को भण्डारित करने के लिए उपयुक्त होती है। अधिक मात्रा में उपलब्ध बीजों को भण्डारित करने के लिए ऊपर की दोनों विधियां ही प्रयुक्त की जाती हैं।

सावधानियाँ

- बीजों को अच्छी तरह धूप में सुखा लेना चाहिए। यदि उसमें नमी का अंश एक प्रतिशत भी रह गया तो बीज खराब हो सकता है और बुवाई के समय कठिनाई होगी।
- कुठला व डेहरी भी साफ–सुथरी व सूखी होनी चाहिए। क्योंकि यदि इनमें नमी होगी तो भी उसमें रखा अनाज खराब होगा।
- भण्डारण का स्थान पानी की नमी एवं गन्दगी से दूर हवादार होना चाहिए।

समस्याएं

- छत में टांगे गये बोरों व जमीन पर रखे गये बोरों को चूहों एवं नमी से बचाने की प्रमुख समस्या है।
- परम्परागत बीज खत्म हो जाने से ये बीज आसानी से नहीं मिल पाते हैं।
- चूंकि बीज पुराने हैं एवं बीज की दृष्टि से भण्डारित न होने के कारण इनमें कीड़े लगे होने के कारण गुणवत्ता की दृष्टि से उपयुक्त नहीं हैं।
- इनको सुरक्षित रखने के लिए डेहरी व कुठला के अलावा भी कोई अन्य विकल्प चाहिए।

टिप्पणी

सफल अनुभव

जनपद जालौन के विकास खण्ड मुख्यालय महेवा से 18 किमी0 की दूरी पर स्थित ग्राम पिथउपुर के निवासी 36 वर्षीय श्री बृज नारायण पाठक का कहना है कि हमारे पास खेती योग्य भूमि 4.8 एकड़ है, परन्तु पिछले 5–6 वर्षों से पड़ रहे सूखे के कारण खेतों से नमी बिल्कुल गायब हो चुकी थी। हम जो बीज खेतों में बुवाई कर रहे थे, वे भी वापस नहीं मिल पा रहे थे। ऐसी स्थिति में हमने घर में बुजुर्गों से चर्चा की और देशी बीजों के गुण व महत्व को समझते हुए इन्हीं से खेती करने का मन बनाया। वर्ष 2007 में हमने घर में ही उपलब्ध अरहर एवं चना के देशी बीजों की बुवाई की, जिससे उत्पादन ठीक हुआ। तब हमने इसी तरह के अन्य बीजों को ढूंढने व एकत्र करने का मन बनाया। जिसके तहत् पूरे क्षेत्र में जाकर देशी बीजों के बारे में पता किया और जहां होने की जानकारी मिली, वहां से खरीद लिया। इस तरह हमने चना, अरहर, मूंग, अलसी, ज्वार, बाजरा, उर्द, मूंग, डढारी, सिंउवा, चटरी के बीजों को एकत्र किया और अगले वर्ष 2008 में अपने खेत में अरहर के अलावा ज्वार, बाजरा, मूंग की भी बुवाई की और अच्छा उपज मिला। इन्होंने कहा कि हालांकि देशी बीजों से उत्पादन कम मिलता है, परन्तु बाजार भाव अच्छा मिलने के कारण लाभ ही रहता है। इसके साथ ही जिस खेत में हम कुछ भी नहीं लगा पा रहे थे, वहां पर अब इन देशी बीजों से खेती कर ले रहे हैं, जिससे हमें सुखाड़ की स्थिति में भी पलायन नहीं करना पड़ रहा है और 5 सदस्यीय परिवार का भरण–पोषण भी आसानी से हो जा रहा है।

देशी बीजों के महत्व को अनुभव करते हुए अब ये गोबर खाद बनाने की तरफ उन्मुख हुए हैं और अगली खेती उसी से करने का मन बना रहे हैं। इनकी खेती को देखकर गांव के अन्य 5–6 किसान देशी बीजों से खेती कर रहे हैं, जो इनकी सफलता का उदाहरण है।

लागत–लाभ विश्लेषण

लागत विवरण	लाभ
एक कुन्तल बीज के भण्डारण पर लागत के तौर पर 20 रूपये का बोरा व 10 रूपये का खड़ा नमक लगता है। इस प्रकार कुल 30 रूपये का खर्च होता है।	परम्परागत बीज कम पैसे में मिल जाते हैं। इनको भण्डारित करके रखने से बुवाई समय से होती है और जब उपज प्राप्त होती है, उस समय इनकी कीमत बाजार में अन्य बीजों की अपेक्षा अच्छी मिल जाती है। इस प्रकार यह लाभप्रद है।

- इस पूरी प्रक्रिया में भण्डारित करने से पहले बीजों को सुखाने, रखने का काम महिलाएं ही करती हैं।
- भण्डारित किये गये बीजों की नियमित देख–रेख जरूरी होती है।
- देशी अरहर एवं देशी मूंग की दाल गुणवत्ता की दृष्टि से उत्तम होने के कारण इनकी मांग व मूल्य अधिक रहता है।

बदलते मौसम ने हाइब्रिड बीजों की विश्वसनीयता खत्म की है। अतः लोगों ने स्थानीय स्तर पर मिलने वाले पारम्परिक बीजों को एकत्रित व भण्डारित किया, क्योंकि ये अपेक्षाकृत अधिक स्थाई साबित हुए।

गृहवाटिका से महिलाओं ने किया सूखे का मुकाबला

सूखा हो या बाढ़ सर्वाधिक दिक्कत महिलाओं को ही होती है। अतः महिलाओं ने दैनिक उपभोग के पानी के पुनः उपयोग को ध्यान में रखते हुए गृहवाटिका को बढ़ावा देने का काम किया।

परिचय

विगत पांच–छः वर्षों से पड़ रहे सूखे के कारण लोगों की आजीविका प्रभावित हुई। लोग खेती से विमुख होने लगे। ऐसे में महिलाओं ने अपनी सोच का दायरा बदला। खेती के लिए पानी नहीं था, परन्तु लोगों के दैनिक कामों में खर्च होने वाला पानी तो था। महिलाओं ने इसी पानी को अपनी सोच का केन्द्रबिन्दु बनाया और नहाने, कपड़े, बर्तन आदि धोने से निकलने वाले पानी के पुनर्उपयोग के विषय में चर्चा की। इनका मानना था कि गृहवाटिका तो हमारी पारम्परिक क्रिया है, परन्तु उसे थोड़ा और विस्तारित करते हुए उसमें उत्पन्न होने वाली सब्जियों के लिए पानी की आवश्यकता पूर्ति इसी पानी से करके आमदनी बढ़ाई जा सकती है। इसी सोच के तहत् घर के आस– पास खाली पड़ी जमीनों पर इसी बेकार पानी के उपयोग से सब्ज़ियां आदि उगाने का काम ग्राम गौसगंज, विकास खण्ड अमरौधा, जनपद कानपुर देहात की महिलाओं ने शुरू किया।

प्रक्रिया

घर के आस–पास खाली पड़ी जमीन में लौकी, कद्दू, सेम, करेला, नेनुआ, कुंदरू, भिण्डी, पालक, पोई, मूली, शलजम आदि सब्ज़ियों के बीजों को लगा दिया जाता है। लतादार सब्ज़ियों को घर की छान, छत पर चढ़ा देते हैं, उसके लिए अलग से कोई ढांचा बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। सिंचाई के लिए घर में प्रयुक्त होने वाले पानी को एकत्र करने के लिए एक गढ्ढा बना देते हैं। उसी में पानी इकट्ठा होता रहता है और नाली बनाकर क्यारियों में पानी जाने का रास्ता बना देते हैं। समय–समय पर निराई, गुड़ाई व देख–भाल का काम महिलाएं अपने अन्य कार्यों में से समय निकाल कर करती रहती हैं और समय–समय पर तैयार सब्ज़ियों की तुड़ाई, उनका प्रयोग एवं बिक्री कार्य भी महिलाएं ही करती हैं।

बीज रखने का तरीका एवं बिक्री

फल को पूरा पकने के बाद तोड़ कर छाया में सुखा कर उसे ऐसी जगह रखते हैं, जहां चूहा आदि न खा सके। बीज बोने के समय पुनः धूप में सूखाकर तब विक्रय करते हैं।

लागत लाभ विश्लेषण

- इस पूरी प्रक्रिया में महिलाओं का श्रम अधिक लगता है। तकरीबन 1 घण्टे रोज महिलाओं

लागत–लाभ विवरण (प्रति व्यक्ति प्रतिदिन)

लागत विवरण	उत्पादन	मात्रा/दर	बिक्री से प्राप्त धनराशि	उत्पादित बीज	दर प्रति 10 ग्राम	बिक्री से प्राप्त धनराशि	कुल धनराशि	शुद्ध लाभ
सब्जियों के बीज	शलजम	6 किग्रा॰ /45.00	270.00	–	–	–	270.00	4056.00
	कद्दू	27 किग्रा॰ /15.00	405.00	100 ग्राम	04.00	40.00	445.00	
	सेम	25 किग्रा॰ /15.00	375.00	250 ग्राम	10.00	250.00	625.00	
	लौकी	13 किग्रा॰ /16.00	208.00	510 ग्राम	03.00	153.00	361.00	
	तरोई	8 किग्रा॰ /24.00	192.00	120 ग्राम	05.00	60.00	252.00	
	कुंदरू	9 किग्रा॰ /12.00	108.00	–	–	–	108.00	
	करैला	7 किग्रा॰ /30.00	210.00	100 ग्राम	10.00	100.00	310.00	
	भिण्डी	11 किग्रा॰ /40.00	440.00	50 ग्राम	08.00	40.00	480.00	
	पालक	16 किग्रा॰ /25.00	400.00	100 ग्राम	02.00	20.00	420.00	
	पोई	13 किग्रा॰ /35.00	455.00	–	–	–	455.00	
	अरहर	6 किग्रा॰ /55.00	330.00	–	–	–	330.00	
	योग						**4056.00**	

नहाने, कपड़े, बर्तन आदि धोने में बेकार बह रहे पानी का सुनियोजित उपयोग कर ग्राम गौसगंज की महिलाओं ने गृहवाटिका में सब्ज़ियाँ उगाई, जो उनको व परिवार को पोषण प्रदान करने के साथ ही आय का साधन भी बना।

सफल अनुभव

ग्राम गौसगंज की श्रीमती आशा ने आजीविका संवर्धन हेतु घर से बेकार बह रहे पानी से गृहवाटिका तैयार करने की ठानी। इन्होंने बताया कि अपने घर के बगल में एक गढ्ढा खोदकर उसमें नहाने, बर्तन, कपड़ा आदि धोने के बाद वाला पानी एकत्र करती हूं। उसी गढ्ढे से एक नाली निकालकर अपनी गृहवाटिका में सिंचाई का काम करती हूं। इसमें कोई लागत नहीं लगती है। पर फायदा बहुत है। थोड़ी सी मेहनत करनी पड़ती है, पर जब घर में खाने के लिए बिना मूल्य चुकाए इच्छानुसार ताज़ी सब्ज़ियां मिलती हैं, तो बहुत प्रसन्नता होती है। इससे हमारे परिवार के लोगों का स्वास्थ्य भी ठीक रहता है और घर के सामने हरियाली बने रहने से घर की शोभा भी बढ़ती है। उनके इस काम को देखकर पड़ोसी ग्राम साहबापुर, खिरियनपुर, बिबियापुर, चपरेहटा और क्योंटरा की बहुत सी महिलाओं ने गृहवाटिका बनाया और अनुपयोगी पानी से सिंचाई कर सूखे में भी धन अर्जित किया।

बुन्देलखण्ड में सूखा संकट का सामना कर प्रेम सिंह हुए खुशहाल

बुन्देलखण्ड विगत दो दशकों से सूखे का पर्याय बन चुका है। बावजूद इसके दृढ़ इच्छा शक्ति रखने वाले किसानों ने अपने ज्ञान व कौशल का उचित उपयोग कर सूखे में भी अपने लिए बेहतर आजीविका के विकल्प तैयार किये और क्षेत्र के लोगों के लिए प्रेरणा स्रोत बने।

परिचय

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में कुछ ऐसी विशेष बातें हैं, जो इस पूरे परिक्षेत्र को अधिक नाजुक संवर्ग में रखती हैं। जैसे –

- सूखा की स्थिति बराबर बने रहना व उपलब्ध जल का दुरूपयोग।
- विकास के नाम पर अनियंत्रित यंत्रीकरण तथा पहाड़ों व जंगलों के साथ हिंसक व्यवहार।
- रसायनिक खेती को बढ़ावा, बदल रही जमीन की किस्म और कृषि, बीज, जल, संस्कृति पर दबाव
- ग्राम विकास के नाम पर हित–अहित की अनदेखी, सडकों का चौड़ीकरण।
- कृषि योग्य भूमि एवं चारागाहों में परिवर्तन कर शहरीकरण व अन्य उपयोग करना।
- नदियों के साथ छेड–छाड एवं बडे बांधों का निर्माण आदि।

उपरोक्त स्थितियों के चलते बुन्देलखण्ड में हरित क्रान्ति की संकल्पना मुंगेरीलाल के सपनों और सम्पूर्ण क्षेत्र के किसानों को तबाह कर मजूदर बनाने के सिवाय कुछ नहीं है। इस सम्पूर्ण इलाके में गहरी बोरिंग बडे बांध, चौड़ी सडकें, रसायनिक खेती, पहाड़ों के खनन से रोजगार देने का उपक्रम सहित अब तक की नीतियों का अध्ययन विश्लेषण कर उनसे होने वाले प्राकृतिक नुकसान से पड़ने वाले प्रभावों का सम्पूर्ण आकलन करना इस क्षेत्र की प्रथम प्राथमिकता में हो तथा पारम्परिक जल संरक्षण की विधियों मेडबन्दी, तालाब गोचर, वन, उपवन, पहाड़ों के हरा–भरा रहने से इस क्षेत्र की जलवायु ऋतुयें, कृषि, पशुपालन, 5–6 दशक पुराने इतिहास के आधार पर समृद्धि का मापन करना भी लोगों के स्तर से एक महत्वपूर्ण कार्य है। तभी यहां पर बढ़ रहा मौसम परिवर्तन, पलायन, आजीविका संकट, बढ़ता तापमान, भूगर्भ जल संकट, नदियों में बढ़ता सूखा एवं किसानों में बढ़ती निराशा व हताशा तथा उससे उत्पन्न आत्महत्या की प्रवृत्ति के सही कारणों का पता लगाया जा सकता है और तभी इनका समाधान भी पाया जा सकता है। इसके साथ ही यदि एक किसान इस दिशा में पहल करे कि जैव विविधता व रसायन मुक्त खेती की जाये तो एक से अनेक होगें और फिर पूरे क्षेत्र की खुशहाली का सपना साकार होगा। किसान का बेटा जब खेती किसानी को आधार मानकर अपने ध्यान, ज्ञान और श्रम का उपयोग करता हुआ जीवन, शरीर, परिवार, समाज, प्रकृति, अस्तित्व की जरूरतों को समझ कर जीना शुरू करता है तो प्रकृति, प्राणी, पदार्थ, जीव और मानव स्वतः परिपुष्ट होते हैं। यही सोचकर बांदा जनपद के विकास खण्ड बड़ोखर अन्तर्गत ग्राम बड़ोखर खुर्द के किसान प्रेम सिंह ने अपना कदम बढ़ाया और अब तो लोग उनका साथ दे रहे हैं।

किसान का परिचय

जनपद बांदा के विकासखण्ड मुख्यालय बांदा से पूरब–दक्षिण दिशा में बांदा–इलाहाबाद मार्ग पर लगभग 5 कि0मी0 दूरी पर बसा गॉव बडोखर खुर्द है, जिसे वर्तमान में बगीचों का गॉव कहें तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। 47 वर्षीय प्रेम सिंह ने इलाहाबाद से परास्नातक तक की शिक्षा प्राप्त की। तत्पश्चात् महात्मा गॉधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय चित्रकूट, जनपद सतना (म0प्र0) से एम0आर0डी0एम0 के फाउन्डर स्टूडेन्ट के तौर पर शिक्षा ग्रहण कर अपने ज्ञान, ध्यान व श्रम को कृषक के रूप में नियोजित करने का संकल्प लिया। उन्होंने गॉव में रहकर खेती–किसानी को समझा और अपने पिता का हाथ बंटाया।

गॉंव का परिचय

बडोखर खुर्द गांव का कुल क्षेत्रफल लगभग 2900 बीघा है, जिसमें लगभग 400 बीघा में रेलवे लाइन, स्कूल, तालाब, गॉंव, सडकें, चकमार्गों आदि का विस्तार है। शेष 2500 बीघा कृषि प्रयोजन के लिये है। कृषि योग्य भूमि के लगभग 1000 बीघे में धान का रकबा था जो केन नहर प्रणाली से सिंचित था, जबकि शेष 1500 बीघे में अन्य फसलें। उक्त गॉव विकास खण्ड मुख्यालय के नजदीक रहने के कारण रसायनिक खादों, कीटनाशकों और नये बीजों, योजनाओं से गांव की निकटता थी। यही वजह रही कि खेती में दिनों–दिन इनका प्रयोग बढता गया। साथ में नहर से मिलने वाले पानी से बीजों व फसलों की जरूरतें पूरी न हो पाने की स्थिति में टयूबवेलों की संख्या बढी, जो आगे चलकर भू–जल एवं भूमि उर्वरता के लिये घातक सिद्ध हुआ।

प्रक्रिया

वर्ष 1987 से 1989 तक प्रेमसिंह को इन तीन वर्षो में यह बात समझ में आ गई कि खेती में निरन्तर रसायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों का प्रयोग, नये–नये बीजों की जरूरत और बाज़ार में उनकी बढ़ती कीमत के एवज में उत्पादन मूल्य बहुत कम मिल पा रहा है। बाजार की वस्तुओं का मूल्य बढ़ना और किसान द्वारा उत्पादित वस्तुओं के मूल्य निर्धारण पर सरकार का नियंत्रण होना एक विषम परिस्थिति थी, जिसके आधार पर खेती का भविष्य भांपकर उन्होंने जैविक खेती की तरफ रूख करना शुरू किया। चूंकि एकबारगी खेती में रसायनिक खादों के प्रयोग को कम करना संभव नहीं दिखा, तब इसके विकल्प के लिये अपने एक चक, जिसका रकबा 5.44 हेक्टेयर था, में बाग लगाने का निर्णय लिया और 1989 में फलदार वृक्षों आम, अमरूद, आंवला, अमलतास आदि के पौधों को रोपित कर बाड लगाया। बहुत मशक्कत, रैन जागरण, के बावजूद बाग तीन चौथाई से ज्यादा उजड गया। फिर भी इन्होंने हार नहीं मानी और लगातार प्रयास से 1991 तक पूरा बाग अपने अस्तित्व में आना शुरू हो गया। 1993–94 तक पूरे बाग से उत्पादन का अल्प हिस्सा मिलने लगा। इस दौरान जब तक कि फलदार वृक्ष अपनी शैशवावस्था में थे, तब तक उन्होंने उस खेत में फसल भी लगाया। जैसे अमरूद के बगीचे में चने की खेती की, जिससे भी उनको अच्छी आय मिली। आज मौजूदा वर्ष में उस बाग से, जिस पर अन्य परिवार भी आश्रित हैं, उनके भरण –पोषण के अतिरिक्त अच्छा उत्पादन प्राप्त हो रहा है। किसान प्रेम सिंह को कभी सूखा जल संकट तो क्या मौसम की बेरूखी और बाजार का उतार–चढ़ाव भी नहीं। प्रेम सिंह से मिलने पर स्वतः महसूस होता है कि बुन्देलखण्ड में व्याप्त सूखा, जल संकट इनकी सीमा क्षेत्र में प्रवेश ही नहीं कर पा रहा। प्रेमसिंह बुन्देलखण्ड ही नहीं अब देश के जाने पहचाने जैविक कृषि के संरक्षण, सम्वर्धन और उत्पादन सम्बन्धी मूल्य सम्वर्धन वाले अग्रणी किसान के रूप में स्थापित किसान हैं।

इस पूरी प्रक्रिया में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि बुन्देलखण्ड में सूखा के चलते अभिशाप बने पशुओं, गायों आदि के लिए इनके बगीचे सर्वथा, सर्वदा उपलब्ध हैं। यहां पर गायों के चरने का पूरा प्रबन्ध है, गायों/बैलों के लिए चारा आदि ले जाने की भी पूरी व्यवस्था है। इस प्रकार इनके इस पहल से पशुपालन को बढ़ावा मिल रहा है।

प्रसार व प्रभाव

- वर्ष 1989 के प्रारम्भ में किसान प्रेमसिंह की कडी मेहनत से स्थापित बाग और उसके लाभ से प्रभावित/आकर्षित ग्रामीण किसानों ने इनका अनुपालन करना प्रारम्भ कर दिया। इन 20–22 वर्षों में बडोखर खुर्द गांव की कुल कृषि भूमि के एक चौथाई भू–भाग में बाग–बगीचे लग गये हैं ।

- वर्ष 2005 तक इस गांव में 67 ट्यूबवेल स्थापित हुये, जिनका उपयोग अधिक पानी वाली फसलों के लिये होता था। पर मौजूदा समय में इन ट्यूबवेलों का उपयोग बहुत कम और जरूरत वाली फसलों के लिये होना प्रारम्भ हुआ है। प्राकृतिक खेती का चलन बढा है, ईंधन और रोजमर्रा के जरूरतों की आपूर्ति व किसानों की आर्थिक समृद्धि में इज़ाफा हुआ है। क्षेत्रीय किसान भी इस पर अमल कर रहे हैं। सरकारी, गैर सरकारी संगठनों–संस्थानों के लिये उदाहरण, आकर्षण व अनुसरण का केन्द्र हैं – किसान प्रेमसिंह के प्राकृतिक कृषि प्रयोग और अनुसंधान सहित समृद्धि पूर्वक जीने का अन्दाज़ ।

खेती में बढ़ती लागत से यह क्षेत्र भी अछूता नहीं रहा। ऊपर से पानी की समस्या ने लोगों को खेती से पलायन करने पर मजबूर किया। प्रेम सिंह ने खेती के साथ बागवानी पशुपालन इत्यादि को समन्वित कर प्राकृतिक खेती को अपनाया और उसे अपनी

लागत-लाभ विवरण

क्रमांक : 1 (बाग) क्षेत्रफल 5.44 हेक्टेयर

फसल/वृक्ष	संख्या/मात्रा	वार्षिक/अर्द्धवार्षिक त्रैमासिक	उत्पादन मूल्य	अन्य विवरण
आम	280	सीजनल	रु० 5,85000.00	उपरोक्त धनराशि बाग के रख-रखाव करने वाले परिवार से वर्ष में प्राप्त होती है।
अमरूद	360			
आंवला	120		रु० 1,0000.00	पूरे वर्ष उपरोक्त बाग के उत्पादन से औसतन 500 परिवारों तक फल आदि नि:शुल्क पहुँचता है।
नींबू/संतरा	100			
कटहल	04			
करौंदा	250			
बेरी	20			

खेती में विविधता निश्चित तौर पर लागत को कम करती है और आय बढ़ाती है। आवश्यकता है उसे योजनाबद्ध तरीके से करने की।

क्रमांक : 2 इमारती एवं जलावनी लकड़ी

फसल/वृक्ष	संख्या/मात्रा	वार्षिक/अर्द्धवार्षिक त्रैमासिक	उत्पादन मूल्य	अन्य विवरण
सागौन	सभी मिलाकर 400	पूरे वर्ष भर क्रमश: सूखी लकड़ी, पत्तियाँ, इमारती लकड़ी, छप्पर के लिए बांस, बल्ली आदि प्राप्त होती है।	रु० 1,50,000.00	उपरोक्त धनराशि से अधिक पूरे वर्ष लगभग 100 परिवार अपने ईधन, इमारतों व छप्परों में जरूरत के लिए लकड़ी बांस आदि प्राप्त करते हैं।
नीम				
कदम				
बबूल				
बांस				
शीशम				
पीपल				
गूलर				
इमारती वृक्ष आदि				

क्रमांक : 3 घास एव जड़ी बूटियाँ

फसल/वृक्ष	वार्षिक/अर्द्धवार्षिक त्रैमासिक	उत्पादन मूल्य	अन्य विवरण
घास, बरसीम, गुरिज, गुड़मार, बहेड़ा, हड़ल, वन आंवला, पिपरी, सतावर, घमिरा, भटकटैया, अकवन, चिरायता, ककई, हरसिंगार, मकुइया, हुरहुर, जंगली गोभी सहित अन्यान्य वनौषधियाँ उपलब्ध है।	गाय, भैंस, बकरी सहित 50 पशुओं का परोक्ष रूप से पूरे वर्ष बसर होता है साथ ही उपरोक्त औषधियाँ अन्यान्य ग्रामीणों/ नागरिकों को लाभ पहुंचाती हैं, उनकी जरूरतें पूरी करती हैं।	रु० 1,50,000.00	- उपरोक्त बाग में क्रमश: आम, अमरूद, आंवला आदि के क्षेत्र में क्रमबद्ध, जिनमें फलों का सीजन नहीं है। पशुओं को खुला छोड़, चारा का उपयोग होता है जो उक्त धनराशि से बहुत अधिक है। - सूचीबद्ध जड़ी बूटियां औषधियाँ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है, जो बिना मूल्य दिये आम जन को उपलब्ध है। दर्ज मूल्य मात्र उसका आंशिक मूल्य है।

क्रमांक : 4 क्षेत्रफल 2.4 हेक्टेयर (फलोत्पादन/इमारती एवं जल आहरण)

फसल/वृक्ष	संख्या	लागत
अमरूद	550	रु० 1,00,000.00 फैन्सिंग + 3 वर्षीय वृक्षारोपण श्रम पर व्यय
सागौन	25	
बबूल	70	
बेरी	04	
नीम	02	

क्रमांक : 5 फसलोत्पादन, साक-सब्जी व चारा व्यय विवरण (बाग क्र० 4 की सह फसलें)

फसल	विवरण	लाभ
अरहर	रु० 1,00,000.00 वार्षिक 3-4 वर्षों तक यह लाभ क्रमश: 5-6 वर्ष से बढ़ना प्रारम्भ होगा, जो अनुमानित 3-4 लाख तक आसानी से पहुंचेगा।	रु० 1,00,000.00
टमाटर		
प्याज		
चना		
बरसीम		
सूरजमुखी		

क्रमांक : 6 क्षेत्रफल - 3.2 हेक्टेयर

लागत विवरण	लगा मूल्य	उत्पादन	मूल्य	शुद्ध लाभ
जुताई	रु० 13,000.00	गेहूँ कठिया 60 कु० दर 1500 प्रति कु०	रु० 90000.00	रु० 1,14,000 - 13,000.00
बीज		भूसा 60 कु० दर 400.00 प्रति कुन्तल	रु० 24000.00	= 1,01,000.00
बुवाई				
कटाई				
कतराई				
योग	**रु० 13,000.00**		**रु० 1,14,000.00**	**रु० 1,01,000.00**

क्रमांक : 4 क्षेत्रफल 2 .4 हेक्टेयर (फलोत्पादन/इमारती एवं जल आहरण)

लागत योग (क्रं० 5 + 6)	लाभ योग (क्रं० 1 + 2+3+4+5+6)	शुभ लाभ
1,13,000	रु० 11,86,000.00	रु० 11,86,000 - 1,13,000.00 = 10,73,000.00
शुद्ध लाभ सालाना		10,73,000.00

किसान प्रेमसिंह का मानना है कि बुन्देलखण्ड की स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए यदि नियोजन किया जाये तो स्थिति बेहतर हो सकती है।

प्रेम सिंह की नज़र में बुन्देलखण्ड की समस्या का समाधान

- पढ़े-लिखे किसान श्री प्रेम सिंह की नजर में कुछ ऐसे विकल्प हैं, जिन्हें सरकारी, सामुदायिक एवं व्यक्तिगत तौर पर अपनाकर बुन्देलखण्ड की समस्या का समाधान किया जा सकता है -
- बुन्देलखण्ड क्षेत्र विशेष की भौगोलिक स्थिति, उत्पादन मात्रा, भूमि की बाज़ारू कीमत, संसाधनों, सीलिंग जोत सीमा और समृद्धि के अनुरूप कृषि नीति का नियोजन न्याय संगत होगा।
- बुन्देलखण्ड क्षेत्र में पाये जाने वाले महुआ वृक्ष से उत्पादित फूल, फल और सन (सनई) के बीज, रेशा की उपयोगिता के अनुरूप गंवई उद्यम के रूप में स्थापित करने के लिये बुन्देलखण्ड महुआ एवं सन व मेंहदी कारपोरेशन ऑफ इण्डिया की स्थापना की जाय, जिसमें क्षेत्रीय किसानों व स्वैच्छिक संस्थाओं की भागीदारी सुनिश्चित की जाये।
- बुन्देलखण्ड के गहराते जल संकट पर काबू पाने एवं गांव के गांव उजड़ने से बचाने के लिये पहली जरूरत है - प्रकृति विरुद्ध कार्यो, नीतियों, योजनाओं पर पाबन्दी। बुन्देलखण्ड क्षेत्र को प्राकृतिक संरक्षण क्षेत्र के रूप में प्रस्तावित कर प्रकृति विरुद्ध होने वाले कार्य-कलापों, योजनाओं, नीतियों पर पाबन्दी लगाकर इस क्षेत्र में प्राकृतिक कृषि के लिये अवसर, वातावरण व संसाधन मुहैया कराने का मार्ग प्रशस्त किया जाये, जिससे बुन्देलखण्ड के वर्तमान और भविष्य के खतरों को टाला जा सके।
- बुन्देलखण्ड की समृद्धि का मार्ग है इस क्षेत्र के उत्पादन का गांवों में प्रसंस्करण। इसके अन्तर्गत इस क्षेत्र में उपलब्ध/उत्पादित अनाज, फल, सब्जियों आदि के संरक्षण, संबर्द्धन, प्रसंस्करण के लिये पंचायत स्तर पर एक-दो यूनिट स्थापना के लिये 10 वर्षीय ब्याज रहित धन उपलब्ध कराये जाने की नीति बनाई जाय।

कभी एशिया में दोयम दर्जे की चावल मण्डी के रूप में प्रसिद्ध बांदा का अतर्रा नगर आज सरकारी अदूरदर्शिता का परिणाम भुगतते हुए अपनी दुर्दशा को पहुँच चुका है।

- बुन्देलखण्ड में पारम्परिक जल संरक्षण की विधियों एवं वृक्षारोपण के लिये किसानों को विचौलिया रहित संसाधन दिया जाना चाहिए। बुन्देलखण्ड (उ०प्र०) के सभी सातों जनपदों में सर्वाधिक ग्रामों में चकबन्दी हो चुकी है अथवा प्रस्तावित व जारी है। चकबन्दी से खेती की आकृतियां बदली हैं, जमीनों की किस्म, मिल्कियतों, वृक्षों, जल श्रोतों, परती, चारागाहों में आमूल–चूल परिवर्तन हुये हैं, इससे जल संरक्षण, वर्षा एवं पारम्परिक वर्षा आधारित कृषि, पशुपालन, देशज बीज और गोबर की खाद, गंवई सामंजस्य, स्वरोजगार आजीविका आदि पर संकट गहराया है, पर्यावरण बिगड़ा है। इसके समाधान के तौर पर प्रत्येक किसान को उसकी जोत (भूमि) के अनुरूप मेड़बन्दी, तालाब, कुआं के निर्माण एवं वृक्षारोपण/बागवानी के लिये बिचौलिया रहित आर्थिक संसाधन दिये जायें। इससे पलायन, बेरोजगारी, आत्महत्या, कुपोषण, कर्ज, जल संकट सहित अन्यान्य समस्याओं का समाधान होगा।
- केन–वेतवा नदी गठजोड़ परियोजना पर पुर्नविचार करें एवं बुन्देलखण्ड के भविष्य के लिये इसे निरस्त किया जाना चाहिए। बुन्देलखण्ड एशिया के सर्वाधिक बांधों वाला क्षेत्र है, फिर भी कृषि योग्य भूमि के पांचवे हिस्से को भी पानी दे पाने में नाकामयाब है। बांधों की नहरों के पूर्व निर्धारित कमांड एरिया में 60–65 प्रतिशत तक कमी आई है। उदाहरण के लिये बांदा जिले में अतर्रा नगर एशिया की दोयम दर्जे की चावल मण्डी के रूप में विकसित हुआ, जहां लगभग तीन दर्जन से अधिक बड़ी धान मिलें स्थापित थीं। एक दशक में उनके नामों निशान नहीं बचे। बांधों में अधिक पानी आ जाने से छोड़ा गया पानी निचले क्षेत्रों में प्रलय तो करता है, पर उनमें पर्याप्त सिंचाई के लिये पानी कभी नहीं भरता क्योंकि वे सिल्ट से भरे हैं। केन नदी का पानी वेतवा में ले जाने की प्रस्तावित योजना पर कर्ज के अरबों रूपये लगने से वर्षा होने और पानी भरने की गारण्टी सम्भव नहीं है। इस पर पुनर्विचार कर सदैव के लिये पाबन्द करना हितकर है, क्योंकि इस क्षेत्र के लिये केन–बेतवा गठजोड़ परियोजना अभिशाप और आखिरी अकाल साबित होगी। अतएव केन्द्र सरकार बुन्देलखण्ड पर ऐसा प्रयोग न कर इसके भविष्य को सुरक्षित रख केन–बेतवा नदी गठजोड़ परियोजना को जनहित एवं पर्यावरणीय प्रकृति हित में हमेशा के लिये निरस्त करें।

कठिया गेहूँ के मूल्य सम्बर्द्धन के लिए

सूखे में आजीविका का साधन बनी कछार की खेती

नदी किनारे की कछार भूमि पर बरसाती जंगली सब्ज़ियों की खेती छोटी जोत वाले किसानों के लिए वर्ष भर आय का स्रोत बनी रहती है।

संदर्भ

बरसात के समय जंगल में बहुत सी जंगली सब्ज़ियां उग आती हैं, जो औषधीय दृष्टि से महत्वपूर्ण होने के कारण बाज़ार मूल्य भी अधिक रखती हैं। टेंटी का अचार बनाया जाता है, जिसे खाने से वात एवं श्वांस रोग में आराम मिलता है। ऐसे समय में जबकि पूरा बुन्देलखण्ड सूखाग्रस्त हो, इन जंगली सब्ज़ियों को एकत्र कर लोग अपनी आजीविका चलाते हैं। वे इसे अपने घरेलू खाने के उपयोग में लाते हैं और बाज़ार में बेचकर अच्छी आय भी प्राप्त करते हैं। इसके साथ ही इन सब्ज़ियों का प्रसार नदी किनारे कछार की भूमि पर कर के कई परिवार अपने आय के स्रोत को वर्ष भर सुरक्षित रखते हैं। उनको पलायन नहीं करना पड़ता है।

प्रक्रिया

पाई जाने वाली सब्ज़िया

जंगली सब्जियों में ककोरा, जंगली करेला, टेंटी आदि।

कछार की खेती

बरसात के बाद नदी का पानी कम होने के बाद नदी के ऊपरी हिस्से में जो जमीन निकल आती है, उसे कछार कहते हैं।

खेत की तैयारी

इस जमीन की जुताई हल–बैल से नहीं की जाती है।

बीज

देशी बीजों की आवश्यकता होती है।

बीज की बुआई

जमीन पर गढ्ढे बनाकर उसमें लौकी, तुरई, खीरा, ककड़ी, ककोरा, जंगली करेला, टेंटी के बीज डाल दिये जाते हैं। प्रत्येक गढ्ढे की आपस में दूरी 1 मीटर तथा गढ्ढे की गहराई 0.5 मीटर होती है।

सिंचाई

इस जमीन में अधिक गढ्ढा खोदने पर उसमें पानी निकल आता है। उसी पानी से पौधों की पानी की आवश्यकता पूर्ति की जाती है।

खेत की रखवाली

मुख्य रूप से नदी के किनारे होने के कारण जानवरों से बचाना पड़ता है। इसके लिए खेत के चारों तरफ बाड़ लगाते हैं, जो जंगल के कटीले पेड़ों को काटकर बनाई जाती है। इस प्रकार खेत की सुरक्षा की जाती है।

संसाधन

इस खेती के लिए विशेष संसाधन की आवश्यकता नहीं पड़ती है। सिर्फ खुरपी, फावड़ा एवं कुदाल से ही यह पूरी खेती होती है।

मौसमी विश्लेषण

जंगली सब्ज़ी/कछार की खेती से प्राप्त सब्ज़ियों का मौसमी विश्लेषण निम्नवत् है –

फसल	जन०	फर०	मार्च	अप्रैल	मई	जून	जुलाई	अगस्त	सित०	अक्टू०	नव०	दिस०
जंगल से प्राप्त												
ककोरा						←→	←→					
जं० करेला	←→	←→						←→	←→	←→		
टेंटी	←→	←→		←→	←→	←→						
कछार की खेती		**बुआई का समय**			**कटाई का समय**							
खीरा		←→	←→	←→	←→	←→						
ककड़ी		←→	←→	←→	←→	←→						
खरबूज		←→	←→		←→							
तरबूज		←→	←→		←→	←→						
लौकी		←→	←→	←→	←→	←→	←→					
तोरई		←→	←→	←→	←→	←→						

सब्ज़ियों की खेती श्रम साध्य होने के कारण मंहगी होती है, परन्तु औषधीय महत्व होने की वजह से इनका दाम अच्छा मिलता है। अतः किसान इसे फायदेमंद मानकर नियोजन करते हुए खेती करते हैं।

लागत-लाभ विवरण- एक एकड़ हेतु

लागत विवरण	लागत मूल्य	उत्पादन विवरण	मूल्य	शुद्ध लाभ
बीज	रु० 500.00	ककोरा	रु० 2000	रु० 13,400.00 – 4,900.00 = 8,500.00
	रु० 500.00	जंगली करेला	रु० 1500	
	रु० 300.00	टेंटी	रु० 1000	
	रु० 800.00	खीरा	रु० 1800	
	रु० 800.00	खरबूजा	रु० 2500	
	रु० 400.00	ककड़ी	रु० 1200	
	रु० 700.00	तरबूज	रु० 1500	
	रु० 400.00	लौकी	रु० 700	
	रु० 500.00	तुरई	रु० 1200	
योग	**रु० 4,900.00**		**रु० 13,400.00**	**रु० 8,500.00**

सफल अनुभव

ग्राम चहटा, विकास खण्ड डकोर, जनपद जालौन के निवासी 38 वर्षीय श्री सियाराम पुत्र महीपत केवट ने बताया कि वर्ष 2004–05 से पड़ रहे सूखा का असर सभी पर पड़ा। हम भी उससे अछूते नहीं रहे। ऐसे में हमने इससे लड़ने हेतु एक अलग तरीका ही अपनाया। जंगल में बहुत से ऐसे उत्पाद होते हैं, जो आम तौर पर लोग नहीं खाते हैं, परन्तु उनका औषधीय महत्व होने के कारण उसका मूल्य काफी मिलता है। इसे ही ध्यान में रखते हुए हमने जंगली करेला, ककोरा, टेंटी इत्यादि सब्जियों को जंगल से तोड़ा और कुछ तो स्वयं घर में ही प्रयोग किया, कुछ बेचा, जिससे अच्छी आय हुई। तब हमने इनके बीजों को इकट्ठा किया और नदी के कछार में इनकी खेती का काम शुरू किया, जिससे हमें वर्ष भर काम और आय दोनों ही मिलता रहा। अपनी प्रक्रिया को बताते हुए इन्होंने कहा कि नदी किनारे कछार की एक बीघा जमीन पर फावड़ा व कुदाल की मदद से गढ्ढा बनाकर उसमें लौकी, तोरई, खीरा, ककड़ी, ककोरा, करेला आदि के बीजों को डाल दिया। ये जमीन तो वैसे ही नमी वाली होती है, परन्तु और अधिक पानी की आवश्यकता पड़ने पर खेत में ही थोड़ा गहरा गढ्ढा खोदकर उसमें निकले पानी से इसकी सिंचाई कर दी। हालांकि इसमें परिश्रम बहुत करना पड़ता है, परन्तु अन्य सब्ज़ियों की अपेक्षा ये सब्ज़ियां महंगी बिकने तथा लागत कम होने के कारण यह फायदेमन्द है। इसमें एक व्यक्ति को अनुमानतः एक दिन में 200–250 रूपये तक की आय प्राप्त होती है। जंगली झरबेरिया को सूखाकर चूर्ण बनाकर बेचते हैं, जो अतिरिक्त आमदनी है और खाली समय में हो जाता है। अतः कछार की खेती सूखे के दौरान भी हमारे परिवार के जीवन–यापन का एक मजबूत जरिया बनी है।

सूखे में मुकाबला कर फिर से शुरु की खेती

सूखे ने किसानों के समक्ष भूखमरी की स्थिति पैदा की और लोगों को पलायन हेतु मजबूर किया, पर यह भी समस्या का स्थाई समाधान नहीं था, तब लोगों ने पुनः अपनी परम्परागत खेती की ओर वापसी की।

संदर्भ

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में पिछले 5 वर्षों से पड़ रहे सूखे की वजह से सबसे बड़ा संकट खेती किसानी के समक्ष खड़ा हुआ है। फसल की बुवाई के पश्चात् उसकी लागत भी वापस मिलने की गारण्टी नहीं है। वर्षा की कमी, सिंचाई के लिए पानी की अनुपलब्धता एवं परिणाम के तौर पर पशुचारे व पीने के पानी का अभाव इन सबने मिलकर बुन्देलखण्ड के किसानों के सामने आजीविका का गहरा संकट उत्पन्न कर दिया है। ऐसे में परिवार के भरण–पोषण हेतु इन्हें अन्य शहरों की ओर पलायन भी करना पड़ा।

इन्हीं विपरीत परिस्थितियों से लड़ने हेतु लोगों ने अपनी परम्परागत खेती तकनीक एवं खेती की जैविक विधि को अपनाना प्रारम्भ किया, जिसने बहुत हद तक समस्याओं को कम करने में मदद की। इस पूरी प्रक्रिया को ग्राम तजपुरा के किसान श्री अजानसिंह की जुबानी बेहतर ढंग से सुनी जा सकती है।

पारिवारिक पृष्ठभूमि

ग्राम तजपुरा, विकास खण्ड माधोगढ़ के रहने वाले 43 वर्षीय श्री अजानसिंह पुत्र श्री दीनदयाल सिंह के परिवार में 7 सदस्य हैं। इनके पास ढाई बीघा सिंचित जमीन है। परिवार की आजीविका का मुख्य स्रोत खेती किसानी ही है। समस्याओं से जूझते श्री सिंह ने बताया कि वर्ष 2004 में मैंने पहली बार अपने खेत में सब्जी की खेती प्रारम्भ की, जिसके लिए गांव के ही साहूकार से 5 प्रतिशत मासिक ब्याज की दर से रू0 15,000.00 कर्ज लिया। रसायनिक खाद, बीज, कीटनाशक तथा सिंचाई के तौर पर खेती में लागत आयी रू0 20,000.00। परन्तु सूखे के कारण पूरी खेती बरबाद हो गयी। मुनाफा को कौन कहे, लागत भी डूब गयी, कर्ज व ब्याज चढ़ा सो अलग। इन विकट स्थितियों से जूझने के दौरान मुझे सर्वाधिक उपयुक्त विकल्प पलायन ही लगा, पर वह भी मुझे स्थितियों से उबार नहीं सका। तब मैंने जैविक खेती अर्थात् अपनी परम्परागत खेती पर ध्यान दिया और तद्नरूप खेती प्रारम्भ की। खेती में बदलाव की प्रक्रिया कुछ इस प्रकार है –

नर्सरी

सबसे पहले हमने सब्जियों की नर्सरी तैयार की, जिसके लिए 6 मीटर लम्बाई व 3 मीटर चौड़ाई के बेड पर नर्सरी डालते हैं, जो 21 दिनों में रोपाई हेतु तैयार हो जाती है।

नर्सरी में हम मूली, मेथी, पालक, आलू, प्याज, फूलगोभी, मिर्च, बैगन, धनिया, टमाटर, गाजर, बंदगोभी आदि पौधों को तैयार करते हैं।

वर्मी कम्पोस्ट पिट

तत्पश्चात् खेती में लागत कम करने के उद्देश्य से हमने जैविक खाद बनाने की शुरुआत की। इसके लिए हमने अपने खेत के पास पड़ी बेकार भूमि में वर्मी कम्पोस्ट पिट बनाया और उसमें तैयार हुई खाद को अपने खेत में प्रयोग किया। इससे एक तो हमारी लागत बहुत कम हुई, दूसरे हमारी फसल का उत्पादन भी दुगुना हुआ। वर्मी कम्पोस्ट पिट का आकार निम्नवत् है – 3 मीटर लम्बाई व 1 मीटर चौड़ाई।

वर्मी कम्पोस्ट बनाने में कुल लागत रू0 1800.00 आयी, जिसमें से रू0 800.00 संस्था की तरफ से अनुदान मिला तथा रू0 1000.00 हमने स्वयं का लगाया। शुरू में हमने 50.00 रू0 की दर से आधा किग्रा0 केंचुआ डाला था। अब हमारे पास 10 किग्रा0 केंचुए तैयार हो गये हैं।

एक बार डाली गयी खाद तैयार होने में 2 माह का समय लेती है। ऐसी परिस्थिति में हमारे खेतों को नियमित रूप से खाद मिलती रहे, इसके लिए हमने पिट को दो भागों में बांट दिया है। जिससे एक भाग में तैयार खाद का जब तक इस्तेमाल करते हैं, तब तक दूसरे भाग में डाली गयी सामग्रियों से खाद तैयार हो जाती है।

जैविक कीटनाशक एवं खादों के प्रयोग से जहाँ एक तरफ खेत की उर्वरा शक्ति बढ़ी, खेती की लागत कम हुई, वहीं दूसरी ओर इसका मानव एवं पशु स्वास्थ्य पर भी अनुकूल असर दिखना प्रारम्भ हो गया है।

लागत-लाभ विवरण- एक एकड़ हेतु

लागत विवरण	पूर्व में हुआ व्यय	वर्तमान व्यय
खेत की तैयारी	रु० 1500.00	रु० 1,500.00
बीज/पौध	रु० 1800.00	रु० 2,250.00
खाद	रु० 3000.00	रु० 1,000.00
सिंचाई	रु० 6500.00	रु० 2,000.00
कीटनाशक	रु० 2500.00	रु० 500.00
श्रम (मजदूरी)	रु० 4700.00	रु० 4,500.00
योग	**रु० 20,000.00**	**रु० 11,750.00**

लाभ

- सबसे पहला और बड़ा लाभ तो यह हुआ कि खेती की लागत कम हुई है। पहले समान क्षेत्रफल वाले खेत में जहां हमारी लागत रू0 20,000.00 लगती थी, वहीं जैविक खाद का प्रयोग करने के उपरान्त लागत आधा हो गयी अर्थात् रू0 11,750.00 ही लागत के तौर पर लगता है।
- 30 से 40 दिन में एक फसल तैयार हो जाती है।
- साल भर में 20 हजार रूपये कमा लेते हैं।
- एकीकृत कीट प्रबन्धन (IPM) तकनीक से सुग्गा, रोग व मकड़ी कीट खत्म हो जाते हैं।
- जैविक खाद द्वारा भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ी है, फसलों का रंग–रूप बेहतर हुआ है व स्वाद बढ़ा है।
- मटका खाद (मट्ठा, नीम की पत्ती सड़ा कर) इनका इस्तेमाल करने से फसलों में रोग का प्रकोप कम हुआ है।

9 संस्थागत व्यवस्था चयन आधारित

अनाज बैंक की स्थापना

विन्ध्याचल की तलहटी में बसे आदिवासी बहुल गाँवों की भूमि पथरीली होने के कारण खेती अधिक खर्चीली होती है तिस पर बढ़ती पर्यावरणीय समस्याओं व मंहगाई ने किसानों को बिल्कुल ही निराश किया है।

परिचय

बुन्देलखण्ड के जनपद ललितपुर के विन्ध्याचल की तलहटी में बेतवा नदी के किनारे बसे गांव आदिवासी बहुल हैं, जिनकी आजीविका मुख्यतः मजदूरी व वनोपज पर आधारित होती है। पथरीली भूमि वाले इस जनपद में खेती एवं उपज अच्छी नहीं मिलती है। इसके अतिरिक्त अनेक अन्य समस्याएं जैसे – वर्षा आधारित कृषि, सामन्तशाही व्यवस्था, रोजगार के अवसरों की कमी एवं पलायन जैसी समस्याओं के कारण यहां के लोगों की स्थिति अत्यन्त दयनीय है। ये आदिवासी परिवार अत्यन्त गरीब एवं शोषित हैं। इनमें से कुछ के पास तो भूमि ही नहीं है और कुछ के पास भूमि होते हुए भी वे भूमिहीन हैं। क्योंकि या तो उनकी जमीन पर उनका कब्जा ही नहीं है या फिर कब्जा होते हुए भी जमीन ऐसी पथरीली होती है, जहां वे खेती कर ही नहीं सकते। यहां खेती करना बहुत अधिक खर्चीला होने के कारण भी लोग इससे दूर भागते हैं और या तो अपने खेत खाली ही छोड़ देते हैं या फिर बड़े लोगों को बटाई पर दे देते हैं। इन परिवारों को दिसम्बर से फरवरी तक खाद्यान्न संकट से जूझना पड़ता है। मजबूरी में इन्हें अपने परिवार का पेट पालने के लिए साहूकार से पैसा या अनाज कर्ज पर लेना पड़ता है, जिसके लिए इन्हें मोटा ब्याज भी देना पड़ता है और उनके घर बेगार भी करनी पड़ती है। इसके अतिरिक्त यदि ये तय समय पर कर्ज की रकम वापस नहीं करते तो इन्हें शारीरिक व मानसिक प्रताड़ना सहनी पड़ती है, अपना घर, जमीन आदि गिरवी रखनी पड़ती है।

इन समस्याओं से निपटने के लिए, समुदाय को कठिन माहों में खाद्यान्न उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए एक ऐसे तंत्र की स्थापना करने की आवश्यकता समुदाय स्तर पर महसूस की गयी, जिससे समुदाय का जुड़ाव हो, समुदाय की भागीदारी हो और नियंत्रण भी समुदाय का ही हो। साथ ही इन आदिवासी सहरिया परिवारों को सामन्तशाही व्यवस्था व साहूकारों के सामने संकट के दिनों में हाथ न फैलाना पड़े। इस परिकल्पना को साकार करने के लिए अनाज बैंक की स्थापना समुदाय स्तर पर की गयी, जिसमें साईं ज्योति संस्थान, ललितपुर की भी बराबर की भागीदारी रही।

ऐसा नहीं है कि अनाज बैंक कोई नया प्रचलन है, वरन् यह हमारी परम्परा से जुड़ा हुआ है। हम पहले भी अपने घरों में प्रतिदिन के खाने से थोड़ा–थोड़ा अनाज निकाल कर रखते थे। एक तो यह हमारी धार्मिक प्रवृत्ति को मजबूती प्रदान करता था, जब हम इस निकाले हुए अनाज को दान करते थे। दूसरे कभी यदि परिवार में आपदा की कोई स्थिति आती थी, तो उस दौरान इससे सहायता मिलती थी। पर तब यह प्रयास व्यक्तिगत तौर पर था। इसी को थोड़ा और विस्तारित करते हुए समुदाय स्तर पर अनाज एकत्र करने की प्रक्रिया को ही अनाज बैंक की संज्ञा दी गयी।

ग्राम कालापहाड़ में समुदाय की एक समिति बनाकर उपरोक्त विचार को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए समुदाय के 35 परिवारों द्वारा 105 किग्रा0 गेंहू अनाज बैंक में एकत्र किया गया। कुल 100 किग्रा0 गेंहू संस्था ने भी अनाज बैंक में मिला दिया।

अनाज बैंक बनने की प्रक्रिया

आकार

अनाज एकत्र करने के लिए आमतौर पर मिट्टी की डेहरी का प्रयोग करते हैं, जो बेलनाकार होती है। इसके तहत् पके बांस को पतला–पतला चीर कर फट्टी बना लेते हैं और 6–7 फुट का एक बेलनाकार ढांचा तैयार कर लेते हैं। इस तैयार ढांचे को गोबर व मिट्टी के मिश्रण से मोटी सतह

के साथ लिपाई कर देते हैं। पुनः इस बेलनाकार ढांचा के ऊपर घास–फूस का गुम्बदनुमा छज्जा तैयार किया जाता है। इस विधि में लागत बहुत कम आती है। यह गांव में उपलब्ध संसाधनों से तैयार हो जाता है। इसके अतिरिक्त टीन के मोटे चादरों की बनी–बनायी डेहरी भी आती है। अधिकांशतः लोग इसी को प्राथमिकता देते हैं, क्योंकि एक तो इसमें मेहनत कम लगती है, दूसरे इसमें रखा अनाज भी सुरक्षित होता है।

भण्डारण की प्रक्रिया

इस अनाज बैंक में मुख्य अनाजों – धान, गेंहू, मक्का आदि को एकत्र करने को प्राथमिकता दी जाती है। इसके अतिरिक्त सामूहिक स्तर पर जो खेती की जाती है, उसका भण्डारण भी किया जाता है।

समुदाय में फसल कटने के बाद समिति में आर्थिक रूप से सबसे कमजोर सदस्य को आधार मानकर बचत राशि का निर्धारण किया जाता है। न्यूनतम 10–12 किग्रा0 अनाज एक व्यक्ति रखता है। वही आधार बनाकर सभी सदस्य एक ही दिन में उक्त मात्रा में अनाज लाकर डेहरी में रखते हैं। इसी दिन संस्था भी अपने हिस्से की अनाज राशि लाकर भण्डारित कर देती है।

नियम व शर्तें

आवश्यकतानुसार अति निर्धन, गरीब, भूमिहीन, महिलाओं एवं विकलांगजनों का चयन समिति की बैठक में उनकी आवश्यकता के अनुरूप प्राथमिकता के आधार पर किया जाता है। उसे अनाज बैंक से अनाज उपलब्ध करा दिया जाता है। इससे उस परिवार की कुछ दिनों तक खाद्य उपलब्धता सुनिश्चित हो जाती है। अगली फसल आने पर यह परिवार लिये गये खाद्यान्न का सवाया अपने अनाज बैंक को वापस करता है। इस प्रकार उनके अनाज बैंकों में अनाज भी बढ़ता जाता है, जिससे अगली बार अधिक संख्या में जरूरतमन्दों को आवश्यकता एवं संकट के समय अनाज उपलब्ध कराया जाता है।

ग्राम कालापहाड़ की 20 महिलाओं की समिति बनाकर अनाज बैंक बनाने का निर्णय किया गया, जिसमें सांई ज्योति संस्थान ने भी सहयोग किया। इस समिति ने प्रथम सीजन में 105 किग्रा0 गेंहू एकत्र किया। इस अनाज बैंक के संचालन के लिए 07 महिलाओं की एक संचालन कमेटी का निर्माण किया गया है। उन्हीं का निर्णय सर्वमान्य होता है। उन्होंने आपस में चर्चा कर कुछ नियम बनाये, जिसे सब पर समान रूप से लागू करने का निर्णय लिया। कुछ नियम इस प्रकार हैं–

- अनाज का भण्डारण सभी सदस्यों द्वारा एक निश्चित समय में ही करना अनिवार्य होता है।
- समुदाय द्वारा जमा किये गये अनाज का दुगुना अनाज संस्था द्वारा जमा किया जायेगा।
- यदि किसी सदस्य को आवश्यकता पड़ती है, तो उसे अनाज दिया जाता है। अनाज उत्पादन होने पर वह सवाया अनाज अनाज बैंक को वापस करता है।
- इस लेन–देन के लिए अलग से रजिस्टर बनाया गया है
- अगर किसी सदस्य के पास अनाज नहीं है, तो वह उतने का नगद मूल्य जमा कर देता है।
- समूह की खाद्यान्न आवश्यकता पूरी करने के बाद बचे अनाज को बेच दिया जाता है और अगले सीजन में उसी का अनाज खरीद कर पुनः रख दिया जाता है या फिर बेच दिया जाता है। प्राप्त लाभ में पूरे समूह की हिस्सेदारी होती है।

इस तरह के अनाज बैंक ललितपुर के विकास खण्ड विरधा के कुल 25 गांवों में प्रतिस्थापित हैं, जिनमें कुल 107 कुन्तल अनाज एकत्र हैं। इसमें समुदाय के सहयोग के तौर पर 36 कुन्तल व संस्था का सहयोग 71 कुन्तल अनाज का है।

इस पूरी प्रक्रिया के संचालित होने से समुदाय को अकाल एवं सूखे की स्थिति में भी जहां खाद्यान्न संकट से नहीं जूझना पड़ा, वहीं उसे मानसिक रूप से निश्चिन्तता भी हुई।

भूमि होते हुए भी भूमिहीन आदिवासी सहरिया परिवारों को सामन्त शाही सूदखोरों के चंगुल से बचाने हेतु अनाज बैंक की स्थापना एक बेहतर कदम साबित हुई, जिसने इन परिवारों को कठिन दिनों में न सिर्फ खाद्यान्न मुहैया कराया, वरन् उनका सामाजिक स्तर भी ऊपर उठाया।

सामूहिक खेती ने दिखाया स्व उन्नति का रास्ता

भूमिहीन आदिवासियों को कभी भी समाज की मुख्य धारा में नहीं जोड़ा गया, बावजूद इसके उन्होंने अपनी उन्नति के रास्ते खुद तलाशे और परती की भूमि को सामूहिकता के आधार पर सुधार कर खेती प्रारम्भ की।

परिचय

गरीबी, समाज से कटने का दर्द और आर्थिक–सामाजिक वंचनाओं की पीड़ा आदिवासियों से बेहतर भला और कौन समझ सकता है। आदिवासियों को कभी भी समाज की मुख्य धारा में शामिल नहीं किया गया। समाज के लिए बनी सुविधाएं इन्हें नहीं दी गयीं, पर बेगारी कराने, सस्ते दरों पर मजदूरों की उपलब्धता के समय इन्हें अवश्य याद किया गया। अपनी इन्हीं स्थितियों से दो–चार होते आदिवासी परिवारों ने एकजुट होकर अपनी उन्नति का रास्ता स्वयं तलाशने का काम किया और परती की जमीन को सामूहिक तौर पर उर्वर बनाने एवं उस पर खेती करने का कार्य करना प्रारम्भ किया। साथ ही खेती से जुड़ी अन्य व्यवस्थाओं पर भी अपनी नजर दौड़ानी शुरू की।

जनपद सोनभद्र, विकास खण्ड दुद्धी के ग्राम पंचायत बोम में रहने वाले आदिवासियों ने कुछ ऐसी ही सोच बनाई और उसे कार्यरूप में परिणित दी। इस ग्राम पंचायत में कुल 391 परिवार हैं। जिनमें से 233 परिवार उच्च वर्ग के हैं। शेष 158 परिवार आदिवासियों के पास हैं। ये परिवार भूमिहीनों की श्रेणी में आते हैं, क्योंकि किसी भी परिवार के पास दो बिस्वा से अधिक जमीन नहीं है। ये आदिवासी परिवार गांव को मिलने वाली मूलभूत सुविधाओं से महरूम होने के साथ ही साल के 9–10 महीने पलायन का दंश झेलते हैं। इन्हीं स्थितियों से उबरने हेतु इन्होंने सामूहिक खेती की रणनीति बनाई।

प्रक्रिया

1 अगस्त, 1995 को एक जैसी परिस्थितियों वाले ये 158 परिवार एक जगह पर एकत्रित हुए और परिस्थितियों एवं उससे निपटने हेतु समाधान क्या हो सकते हैं, इस विषय पर चर्चा की गयी। इस चर्चा की अगुवाई श्रीमती कलावती देवी ने किया। सभी ने माना कि खेती करके हम अपनी आर्थिक स्थिति को बेहतर बना सकते है, परन्तु मात्र एक बिस्वा या दो बिस्वा पर खेती करने से स्थिति में कोई बहुत बड़ा बदलाव नहीं आने वाला है। तब कलावती देवी, मनबोधी, बिहारी आदि ने एक प्रस्ताव रखा कि यदि हम लोग सामूहिक खेती करें तो लाभ का प्रतिशत बेहतर होगा। इसके लिए धारा–20 के अन्तर्गत खाली, परती पड़ी जमीन का उपयोग किया जा सकता है।

इस विचार का सभी ने स्वागत करते हुए सर्वसम्मति से समर्थन किया। तत्पश्चात् सामूहिक खेती की रणनीति तैयार की गयी।

सामूहिक खेती की रणनीति

150 एकड के क्षेत्रफल वाली 1 किमी0 लम्बी व 600 मीटर चौड़ी धारा–20 की जमीन को खेती योग्य बनाने के लिए सभी आदिवासी परिवारों से लोगों ने प्रयास करना शुरू किया, जिसके तहत् उसे नियमित रूप से जोतना, कोड़ना प्रारम्भ कर दिया गया। लगातार एक साल तक सामूहिक रूप से श्रमदान व अंशदान करने के पश्चात् यह जमीन खेती योग्य हुई। शुरू के वर्षों में इन परिवारों ने इस पर सिर्फ खरीफ सीजन में ही खेती प्रारम्भ की। पुनः खेती के अन्य उपादानों का विकास करते हुए लोगों ने रबी की खेती भी प्रारम्भ की। इन लोगों द्वारा की जा रही खेती का फसली मौसम के हिसाब से फसल विवरण निम्नवत् है –

खरीफ फसल चक्र का लागत–लाभ विवरण

बीज का नाम	मात्रा	क्षेत्रफल	उत्पादित मात्रा
तिल	1 कुन्तल	30 एकड़	22 कुन्तल
अरहर	1.35 कुन्तल	27 एकड़	32 कुन्तल
मक्का	2.50 कुन्तल	36 एकड़	28 कुन्तल
कोदो	2 कुन्तल	24 एकड़	18 कुन्तल
सांवा	1.76 कुन्तल	21 एकड़	20 कुन्तल
धान	1.80 कुन्तल	12 एकड़	21 कुन्तल
योग	**10.41 कुन्तल**	**150 एकड़**	**141 कुन्तल**

रबी फसल का विवरण

बीज का नाम	मात्रा	क्षेत्रफल	उत्पादित मात्रा
चना	2 कुन्तल	24 एकड़	22 कुन्तल
जौ	1 कुन्तल	6 एकड़	8 कुन्तल
मटर	10 किग्रा	1.80 एकड़	1.80 कुन्तल
गेहूँ	60 किग्रा	2.40 एकड़	14 कुन्तल
योग	**3.70 कुन्तल**	**32.20 एकड़**	**45.80 कु0**

वर्षा आधारित खेती में होने वाली कठिनाईयों को देखते हुए समुदाय ने अपना नियोजन किया और वर्षा जल संग्रहण हेतु गढ्ढे तैयार किये, जिससे सिंचाई आसानी से हो सके।

सिंचाई साधनों की उपलब्धता

वर्षा आधारित खेती करने में होने वाली कठिनाईयों, पानी की मात्रा कम होने पर घटते उत्पादन को देखते हुए इन्होंने यह निश्चय किया कि पानी को रोकने का उपाय किया जाये।

- इसके तहत् प्रति वर्ष मई–जून के माह में समुदाय के लोगों ने जगह–जगह पर चौड़ा व गहरा गढ्ढा तैयार किये। इस प्रकार से पानी रोकने हेतु कुल 40 गढ्ढा तैयार कर लिया गया है। एक गढ्ढा तैयार करने में 10 से 12 व्यक्ति लगे। इन गढ्ढों की लम्बाई, चौड़ाई क्रमशः 30–50 फीट, 10–20 फीट तथा गहराई 30–40 फीट है।
- सामूहिक सहयोग से एक बंधी का निर्माण किया गया। 50 फीट लम्बे, 20 फीट चौड़े तथा 40 फीट गहरे इस बंधी का निर्माण हो जाने से रबी सीजन में चना, मटर, जौ, गेंहू की सिंचाई हेतु पानी की उपलब्धता आसान हो गयी है। इस बंधी के निर्माण से जितना पानी एकत्र होता है, उससे 55 एकड़ भूमि की सिंचाई संभव हो गयी है।

खेती कार्य व उत्पादन का बंटवारा

ये आदिवासी सामूहिक रूप से अपने हल–बैल व श्रम को लगाकर खेती करने का कार्य करते हैं। जो भी उत्पादन होता है, उसे एक जगह एकत्र करते हैं। अन्न की कटाई से लेकर मड़ाई कार्य करने तक में सभी की सामूहिक भागीदारी रहती है। पुनः उत्पादित अनाज की तौल की जाती है। उसमें से 50 किग्रा0 से लेकर 2 कुन्तल तक का बंटवारा आदिवासी परिवारों के बीच होता है।

बंटवारे का यह नियम किये गये कार्य एवं उत्पादन के आधार पर निश्चित होता है। साथ ही परिवार के आकार को भी आधार बनाते हैं। बचे अन्न को बाजार में बेच दिया जाता है। बिक्री करने के पश्चात् जो राशि मिलती है, वह भी आपस में बराबर भागों में बांट ली जाती है।

इन आदिवासियों ने स्वयं के प्रयास से एक कोष बनाया हुआ है, जिसमें प्रत्येक परिवार 10 रू0 प्रतिमाह चन्दे के तौर पर जमा करता है। इस कोष का उपयोग सामूहिक रूप से आये किसी भी खर्च को करने के लिए किया जाता है।

लाभ

सामूहिक खेती से निम्न लाभ प्रत्यक्ष तौर पर दिखते हैं –

- पहले जहां ये आदिवासी समूह एक भी फसल के लिए मोहताज रहते थे। अब वे दोनों फसली सीजन में कई फसलें ले पा रहे हैं।
- इनके परिवार का जीवन–स्तर उन्नत हो गया है।
- परिवार को पलायित नहीं होना पड़ता है। पहले जहां 9 माह गांव से बाहर रहकर मजदूरी करना पड़ता था, अब वो स्थिति या तो एकदम खत्म हो गयी है या फिर अवधि घटकर एक से दो माह ही रह गयी है।
- सामूहिकता की भावना सुदृढ़ हुई है।

कठिनाईयां

- हालांकि इस काम को करने में इन आदिवासियों को बहुत सी कठिनाईयों का सामना करना पड़ा–
- धारा–20 की जमीन पर कब्जा करने के दौरान वन विभाग द्वारा इन आदिवासियों का अत्यधिक उत्पीड़न किया गया, परन्तु इन्होंने हार नहीं मानी और बचाव के लिए अपने साथ परम्परागत धनुष व तीर हमेशा लिये रहते थे। इनकी एकजुटता के आगे वन विभाग को हार माननी पड़ी।
- बंधी निर्माण को अवैध घोषित करते हुए वन विभाग द्वारा अगुआई कर रही श्रीमती कलावती, मनबोधी, बिहारी के ऊपर केस कर दिया गया। पर इन लोगों ने अपनी सामूहिक भावना का परिचय देते हुए उससे निपटने में सफलता पाई।

सामूहिकता के आधार पर की जा रही खेती में कार्य व उत्पादन का बंटवारा आपसी सहमति के आधार पर किया गया है। हालांकि धारा- 20 की जमीन पर कब्ज़ा करने में आदिवासियों को काफी दिक्कत हुई, फिर भी उन्होंने इसे हासिल कर लाभ अर्जित किया।

सामूहिक अनाज बैंक बनाकर महिलाओं ने किया सूखे का मुकाबला

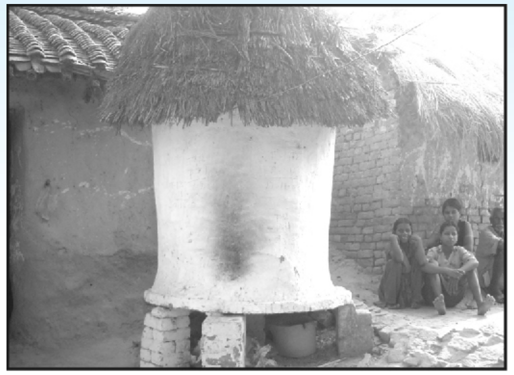

जनपद जालौन के 95 प्रतिशत लघु एवं सीमान्त किसानों की आजीविका का आधार खेती है। सूखे की मार झेल रहे इन किसानों के सामने सबसे बड़ा संकट खाने का होता है जिससे निपटने हेतु पुरुष वर्ग पलायन कर जाता है और पीछे छोड़ जाता है सभी समस्याओं को झेलने हेतु महिलाओं को।

परिचय

बुन्देलखण्ड के जनपद जालौन, तहसील कोंच में जमीन उबड़–खाबड़, ढालू दार एवं छोटी जोत होने के कारण खेती की उपयुक्त परिस्थितियां नहीं बन पाती हैं। यहां लगभग 95 प्रतिशत लघु एवं सीमान्त किसानों की आजीविका का मुख्य आधार खेती एवं खेती आधारित मजदूरी है। सूखे की मार झेल रहे इन किसानों के सामने सबसे बड़ा संकट पूरे वर्ष खाने का है।

छोटी जोत, सिंचाई साधनों की अनुपलब्धता, अनियमित अथवा न होने वाली वर्षा के कारण एक तो खेती हो नहीं पाती। यदि खेती होती भी है तो उत्पादन नहीं मिल पाता और सूखे के कारण इनकी मजदूरी भी प्रभावित होती है। ऐसे में इनके सामने पलायन का रास्ता बचता है।

मुश्किल तो तब होती है, जब परिवार का पुरुष सदस्य पलायन कर जाता है और पीछे बच जाती हैं महिला एवं उसके साथ ढेर सारी जिम्मेदारियां। इस मुश्किल समय में महिलाओं के ऊपर काम का दोहरा बोझ होता है एक तो सभी की देख–रेख एवं दूसरा उनके लिए खाने का इंतजाम करना। इन सबके लिए उसे गांव जवार के सेठ–साहूकार के सामने हाथ फैलाना पड़ता है, गांव के बड़े लोगों के घर बेगार करना पड़ता है। बदले में उसे डेढ़ा ब्याज के बदले अनाज अथवा 10 रू0 प्रति सैकड़ा मासिक ब्याज पर रूपया मिल पाता है। कहीं कहीं तो ली गयी मात्रा का दुगुना तक देना पड़ता है। साथ ही चैत में अघोषित कम मजदूरी पर काम करना पड़ता है। जिसे समय पर अदा न कर पाने की स्थिति में उसे शारीरिक व मानसिक शोषण भी झेलना पड़ता है।

इन्हीं सब स्थितियों को झेलती ग्राम पीपरीकलां की महिलाओं ने आपदा के मद्देनजर सामूहिक रूप से अनाज एकत्र करने की प्रक्रिया शुरू की और जिसे अनाज बैंक का नाम दिया।

अनाज बैंक बनने की प्रक्रिया

आकार

अनाज एकत्र करने के लिए आमतौर पर मिट्टी की डेहरी का प्रयोग करते हैं, जो बेलनाकार होती है। इसके तहत् पके बांस को पतला–पतला चीर कर फट्टी बना लेते हैं और 6–7 फुट का एक बेलनाकार ढांचा तैयार कर लेते हैं। इस तैयार ढांचे को गोबर व मिट्टी के मिश्रण से मोटी सतह के साथ लिपाई कर देते हैं। पुनः इस बेलनाकार ढांचा के ऊपर घास–फूस का गुम्बजनुमा छज्जा तैयार किया जाता है। यह गांव में उपलब्ध संसाधनों से तैयार हो जाता है। इस विधि में लागत बहुत कम आती है। इसके अतिरिक्त टीन के मोटे चादरों की बनी–बनायी डेहरी भी आती है। अधिकांशतः लोग इसी को प्राथमिकता देते हैं, क्योंकि एक तो इसमें मेहनत कम लगती है, दूसरे इसमें रखा अनाज भी सुरक्षित होता है।

समिति का गठन

अनाज बैंक बनाने की प्रक्रिया के तहत् वर्ष 2004 में सर्वप्रथम महिलाओं ने बैठक कर समस्या की विकरालता पर आपस में चर्चा की। श्रीमती राजेश्वरी देवी ने कहा कि चैत में जहां हम लोगों को एक बीघा फसल कटाई पर 60 किग्रा0 अनाज मिलता है, जबकि सितम्बर में जब हमारा कठिन समय होता है, हमें बीघा पीछे सिर्फ 45 किग्रा0 अनाज ही मिलता है। इन दिनों को काटने के लिए हमें ब्याज पर मिलने वाले अनाज एवं पैसे पर आश्रित होना पड़ता है। अतः इस स्थिति से निपटने के लिए हमें सामूहिक अनाज बैंक बनाने की प्रक्रिया से जुड़ना होगा। इसके तहत् हम सभी को प्रतिदिन मुट्ठी भर अनाज निकालना होगा। सभी ने इससे सहमति जताई और फिर 70 महिलाओं ने मिलकर अनाज बैंक बनाया और अनाज का एकत्रीकरण कर समुदाय की खाद्य सुरक्षा को संपोषित किया।

भण्डारण की प्रक्रिया

इस अनाज बैंक में मुख्य अनाजों – धान, गेंहू, मक्का आदि को एकत्र करने को प्राथमिकता दी गयी। इसके अतिरिक्त सामूहिक स्तर पर जो भी खेती की जाती है, उसका भण्डारण भी किया जाता है।

समुदाय में फसल कटने के बाद समिति में आर्थिक रूप से सबसे कमजोर सदस्य को आधार मानकर बचत राशि का निर्धारण किया जाता है। न्यूनतम 10 किग्रा0 अनाज एक व्यक्ति रखता है। वही आधार बनाकर सभी सदस्य एक ही दिन में उक्त मात्रा में अनाज लाकर डेहरी में रखते हैं। वर्ष 2005 में अनाज बैंक की स्थापना हुई। रबी सीजन में 225 किग्रा0 अनाज अनाज बैंक में एकत्र हुआ।

नियम व शर्तें

आवश्यकतानुसार अति निर्धन, गरीब, भूमिहीन, महिलाओं एवं विकलांगजनों का चयन समिति की बैठक में उनकी आवश्यकता के अनुरूप प्राथमिकता के आधार पर किया जाता है। उसे अनाज बैंक से अनाज उपलब्ध करा दिया जाता है। इससे उस परिवार की कुछ दिनों तक खाद्य उपलब्धता सुनिश्चित हो जाती है। अगली फसल आने पर यह परिवार लिये गये खाद्यान्न का सवाया अपने अनाज बैंक को वापस करता है। इस प्रकार उनके अनाज बैंकों में अनाज भी बढ़ता जाता है, जिससे अगली बार अधिक संख्या में जरूरतमन्दों को आवश्यकता एवं संकट के समय अनाज उपलब्ध कराया जाता है।

इस अनाज बैंक के संचालन के लिए 3 महिलाओं की एक संचालन कमेटी का निर्माण किया गया है। उन्हीं का निर्णय सर्वमान्य होता है। उन्होंने आपस में चर्चा कर कुछ नियम बनाये, जिसे सब पर समान रूप से लागू करने का निर्णय लिया। कुछ नियम इस प्रकार हैं–

- अनाज का भण्डारण सभी सदस्यों द्वारा एक निश्चित समय में ही करना अनिवार्य होता है।
- यदि किसी सदस्य को आवश्यकता पड़ती है, तो उसे अनाज दिया जाता है। अनाज उत्पादन होने पर वह सवाया अनाज अनाज बैंक को वापस करता है।
- इस लेन–देन के लिए अलग से रजिस्टर बनाया गया है
- अगर किसी सदस्य के पास अनाज नहीं है, तो वह उतने का नगद मूल्य जमा कर देता है।
- समूह की खाद्यान्न आवश्यकता पूरी करने के बाद बचे अनाज को बेच दिया जाता है और अगले सीजन में उसी का अनाज खरीद कर पुनः रख दिया जाता है या फिर बेच दिया जाता है। प्राप्त लाभ में पूरे समूह की हिस्सेदारी होती है।

इस तरह के अनाज बैंक जनपद जालौन के बीहड़ में बसे 65 ग्राम पंचायतों में बने हैं, जिनमें कुल 230 कुन्तल अनाज (धान/गेंहू) एकत्र है, जो महिला किसानों की ताकत है। इस पूरे अनाज का नियोजन व निगरानी महिलाओं के हाथ में है।

इस पूरी प्रक्रिया के संचालित होने से समुदाय को अकाल एवं सूखे की स्थिति में भी जहां खाद्यान्न संकट से नहीं जूझना पड़ रहा है, वहीं उसे मानसिक रूप से निश्चिन्तता भी हुई, उसका सामाजिक एवं आर्थिक स्तर भी उन्नत हुआ है।

समस्याओं से जूझती महिलाओं ने सामूहिक अनाज बैंक बनाकर न सिर्फ अपनी आजीविका सुरक्षित की, वरन् इस बैंक से गरीब, भूमिहीन परिवारों की खाद्यान्न सुरक्षा भी सुनिश्चित हुई और उनका शारीरिक व मानसिक शोषण भी रुका।

सामूहिक पशुशाला

सूखे के दौरान पशुओं को खुला छोड़ देना बुन्देलखण्ड की आम प्रथा रही है जो विपरीत परिस्थितियों में थोड़ी बहुत खेती कर रहे लोगों के लिए काफी नुकसानप्रद हो रही है। ऐसे में सामूहिक पशुशाला का संचालन क्षेत्र के लिए एक बेहतर विकल्प बना और पशुओं का पलायन भी रुका।

संदर्भ

जनपद हमीरपुर के विकास खण्ड राठ के अन्तर्गत आने वाले ग्राम कुसुमा एवं उसके आस–पास बसे गांवों के लोगों का मुख्य धन्धा खेती एवं खेती से जुड़ी मजदूरी तथा पशुपालन है। विगत 7–8 वर्षों से लगातार पड़ रहे सूखा की वजह से यहां पर रह रहे लोगों का जीवन–यापन कठिन हो गया। लोगों को अपने परिवार के भरण–पोषण के लिए पलायन करके बाहर जाने की नौबत आने लगी। ऐसे में जब लोगों के पास अपना पेट भरना मुश्किल हो गया था, लोगों ने अपने पशुओं को खुला छोड़ दिया गया, क्योंकि घर में पशुओं के चारा पानी की व्यवस्था नहीं हो पा रही थी। ज्यादातर जानवरों के खुले घूमने से जो लोग अपनी थोड़ी–बहुत खेती करते थे, उनका भी नुकसान होने लगा और जो पशु खुले घूमते थे, उनके लिए जंगल में पीने के पानी की समस्या होने लगी। लोगों की चिन्ता बढ़ी और इस समस्या से छुटकारा पाने के लिए उपाय सोचने के क्रम में सामूहिक पशुशाला बनाने का विचार सामने आया, जिसे ग्राम कुसुमा के लोगों ने साकार रूप प्रदान किया।

रणनीति

सामूहिक पशुशाला के निर्माण के लिए संस्थान द्वारा निम्न रणनीति अपनाई गयी –

- सबसे पहले समिति का गठन किया गया।
- आस–पास के गांवों से चन्दा एवं दान एकत्रित किया गया।
- ग्राम कुसुमा में सामूहिक तालाब के पास सामूहिक पशुशाला के लिए जमीन तलाशना।
- आस–पास के गांवों में जागरूकता बैठक।

प्रक्रिया

विचार को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए सर्वप्रथम ग्राम कुसुमा के लोगों ने वर्ष 2007 को गांव में बैठक की, जिसमें सुमित्रा सामाजिक कल्याण संस्थान के प्रतिनिधि की भी उपस्थिति रही। समस्या की गम्भीरता पर चर्चा के साथ ही उसके विकल्प के तौर पर सामूहिक पशुशाला निर्माण की बात भी गांव वालों ने उठाई, जो एक सराहनीय कार्य था। परन्तु मुख्य समस्या थी इसमें आने वाले खर्च की व्यवस्था करना, क्योंकि सामूहिक पशुशाला कम से कम 3 माह तक के लिए चलाई जानी आवश्यक होगी। तब लोगों ने चन्दा एकत्र करने का विकल्प सुझाया। जगह के लिए लोगों ने ग्राम कुसुमा में अवस्थित तालाब एवं चेकडैम के पास वाली जगह का चयन सर्वसम्मति से किया, जिससे जानवरों को पीने के लिए पानी की उपलब्धता हो सके। क्योंकि वहीं पर एक कुंआ भी है।

संस्थान ने अपनी कार्यदायी समिति की एक बैठक बुलाकर उसमें भी इस समस्या एवं उसके समाधान के विकल्प को बताया। तब लोगों ने स्वयं सहित आस–पास से चन्दा व दान एकत्र करने के लिए एक समिति बनाई। इस समिति में गांव से 10 तथा संस्था से तीन सदस्य थे। समिति ने आस–पास के गांवों व लोगों से चन्दा एकत्र कर सामूहिक पशुशाला का निर्माण कराया। इस पशुशाला की लम्बाई 30 मीटर तथा चौड़ाई 7.5 मीटर है, जिसमें एक साथ 100–150 पशु आसानी से रह सकते हैं। इसमें उपरोक्त संख्या में पशुओं के लिए चारा व पानी की व्यवस्था की गयी।

इस पशुशाला में क्षेत्र के ऐसे लोगों के पशुओं को रखने को वरीयता दी गयी, जिनके सामने सूखा के कारण अपने पशुओं को खुला छोड़ने की नौबत आ जाती है।

सामूहिक पशुशाला निर्माण पर आयी लागत

क्रमांक	लागत विवरण	मूल्य
1.	बाउण्ड्री/तार फेन्शिंग	25,000.00
2.	1 बीघा जमीन की खेती	1,00,000.00
3.	जानवरों को चारा देने का स्थान निर्माण	5,000.00
4.	जानवरों को पानी पिलाने की जगह का निर्माण	5,000.00
5.	चारा/भूसा का व्यवस्था	50,000.00
6.	जानवरों की देख–रेख व साफ–सफाई हेतु 2 केयर टेकर 1500 x 2 x 3 माह	9,000.00
7.	अन्य	10,000.00
	योग	**2,04,000.00**

लाभ

- पशुधन नुकसान होने से बच गया।
- अन्ना जानवरों द्वारा होने वाले नुकसान को भी बचाया जा सका है।
- आस–पास के अन्य जगहों में इस तरीके के प्रक्रिया की शुरूआत हुई है।
- इतने अधिक जानवरों को एक साथ रखने से गोबर की खाद तैयार करने की प्रक्रिया बड़े पैमाने पर शुरू की जा रही है।

सामूहिक पशुशाला के इस अभिनव प्रयोग ने पूरे क्षेत्र में एक नयी सोच पैदा की और क्षेत्र से पशुधन का पलायन रोका।

सू ो से निपटने को तत्पर गाँव

लगातार सूखे की दंश झेल रहे बुन्देलखण्ड में ऐसे भी लोग हैं, जिन्होंने सूखे से निपटने हेतु अभिनव प्रयोग किये हैं जिसने न केवल उनकी अपनी आजीविका को ही समृद्ध किया है बल्कि क्षेत्र के लिए एक मिसाल कायम किया है।

संदर्भ

बुन्देलखण्ड 1887 से लेकर वर्ष 2007 तक 19 बार सूखे का ग्रास बना है। यहां के लिए सूखा कोई नई बात नहीं है, नई बात है तो बस यह कि अब यहां के लोगों में सूखे से निपटने की क्षमता नहीं बची है। क्योंकि साल–दो साल का सूखा हो तो निपटा जाये, यहां तो एक दशक तक पड़ने वाले सूखे ने अब अकाल का रूप धारण कर लिया है। खेती में लगातार हो रहे नुकसान से हतोत्साहित किसान के पास आत्महत्या के अलावा और कोई रास्ता नहीं बचा है। ऐसे समय में जब बुन्देलखण्ड का प्रत्येक गांव व परिवार सूखे से प्रभावित हो, तब कोई दावे के साथ कहे कि मुझमें सूखे से लड़ने की ताकत है, तो निश्चय ही अचरज होगा पर यह सच है। ललितपुर जनपद मुख्यालय से 20 किमी0 दूर स्थित गांव सीरोन कलां कुछ ऐसा ही दावा करता है। वास्तव में यह गांव सूखा से पीड़ित नहीं है। जबकि पूरा बुन्देलखण्ड सूखे से पीड़ित है, इस गांव के बाशिन्दे अभी तक भूख, प्यास, पलायन और खुदकुशी के शिकार नहीं हुए हैं। गांव के बारे में बात करें तो पूरे गांव की जमीन कंकरीली, पथरीली, बलुई हल्की मोटी और ऊपरी सतह से अति विकट पत्थरों की मोटी परत से आच्छादित है। फिर भी अपनी पारम्परिक किसानी और तकनीकी ज्ञान के सहारे इस गांव के लोग अभी भी सूखे का मुकाबला करने में सक्षम हैं।

प्रक्रिया

लगभग सवा सौ कुंओं, हजारों फलदार वृक्षों, आम, महुआ, जामुन, बेल, आंवला, बेर, कैथा, अमरूद, नीबू, खजूर, करौंदा, अनार, कटहल आदि से भरे इस गांव में तालाब, परती, पेड़, गोधन, पशुधन आदि की प्रचुरता है। उदाहरण के तौर पर गांव के निवासी किसान श्री बालकिशुन की कहानी बताई जा सकती है–

> श्री बालकिशुन राजपूत उर्फ नन्ना की उम्र 79 वर्ष है। इन्होंने अपनी अब तक की उम्र में 5 हजार पौधों को रोपा है, उनकी देख–भाल की है और यह प्रक्रिया आज भी जारी है। पेड़ों में पानी देने के लिए हांलाकि इनके पास एक बहुत पुराना कुंआ है। फिर भी पानी संरक्षण की दिशा में ये पेड़ों की जड़ों पर एक–एक फुट मिट्टी चढ़ाकर नाडेप खाद डालते हैं, जिससे पेड़ों को पर्याप्त नमी और संरक्षण मिलता रहे। अपने 6 एकड़ खेत में बाग, बगीचा, सब्ज़ी से लेकर सभी उपयोगी चीजें उगाकर श्री नन्ना सिर्फ अपने गांव के लिए ही नहीं, पूरे बुन्देलखण्ड के लिए मॉडल बने हुए हैं। इनके बाड़े में दो दर्जन से अधिक ऐसी गायें हैं, जिनको उनके मालिकों ने खिला सकने में असमर्थ होने के कारण छुट्टा छोड़ दिया। इन गायों/पशुओं को इन्होंने अपने घर–परिवार का हिस्सा बनाया है। आज वे सभी गायें स्वस्थ शरीर वाली है फिर से दूध देने लगी हैं। मात्र 6 एकड़ पथरीली जमीन के मालिक श्री नन्ना कभी गायों का दूध नहीं बेचते। बल्कि गायों के गोबर व मूत्र से बनी खाद, गोबर से बने उपले आदि बेचते हैं और उसी से इनकी इतनी आय हो जाती है कि उन्हें दूध बेचने की जरूरत नहीं पड़ती।
>
> अपने अनुभवों को बांटते हुए कहते हैं कि जब हमने खेती की शुरूआत की तो खेत की सिंचाई मिट्टी के पहियों वाले रहट से होती थी। धीरे–धीरे विकास क्रम में रसायनिक खादों व हाइब्रिड बीजों को हमने भी खूब प्रयोग किया, परन्तु दुष्परिणाम सामने आने लगे, तो घर के बने खाद एवं पारम्परिक बीजों की तरफ पुनः मुड़े और आज पुश्तैनी जमीन जो 5–6 एकड़ है, पूरी तरह रसायन मुक्त हो चुकी है। शेष 25 एकड़ जमीन जो अपनी कमाई से खरीदा है, उसे भी रसायनमुक्त करने की प्रक्रिया चल रही है।

लाभ

- गांव क्षेत्र में बहुतायत परिवार अब अपने कुंओं में जलरोधी पेड़ों को लगाकर उन पर पशुओं का बसेरा बनाने लगे हैं।
- लोगों का भरोसा फलदार पेड़ों को काटने की बजाय लगाने पर बढ़ा है।

9 जल व मिट्टी प्रबन्धन आधारित

सामुदायिक तालाब पुनः निर्माण

बुन्देलखण्ड पारम्परिक रूप से तालाबों का क्षेत्र रहा है और यही तालाब वहाँ पर पानी की उपलब्धता बनाये रखने में सक्षम थे। गलत तरीके से इनका अतिक्रमण और बचे हुए तालाबों से भी गाद न निकालने से पानी की समस्या बढ़ी। ऐसे में समुदाय द्वारा तालाबों का गहरीकरण करना क्षेत्र के लिए काफी उपयोगी रहा।

संदर्भ

पूरा बुन्देलखण्ड प्राचीनकाल से ही प्राकृतिक संसाधनों से भरपूर क्षेत्र है। यहां पर पहाड़, नदी, नाले, तालाब, बाग–बगीचे अर्थात जल, जंगल इत्यादि भरपूर मात्रा में हैं। स्थिति तो यह है कि यहां के प्रत्येक गांव में 4–5 की संख्या में छोटे–बड़े तालाब बने हुये हैं। जिनमें बरसात के बाद आमतौर पर 4–5 महीनों तक पानी जमा रहता था, जिनसे जानवरों के पीने हेतु पानी व तालाबों के आस–पास की खेती में एक–दो पानी सिंचाई की व्यवस्था हो जाती थी। लेकिन पिछले कुछ वर्षों में मानव जनित प्राकृतिक कारणों की वजह से जल संचयन की प्राकृतिक व्यवस्था अस्त–व्यस्त हो गयी। ज्यादातर तालाबों को पाटकर लोगों ने कब्जा कर लिया या पट्टा कराकर उस पर खेती करने लगे। कुल मिलाकर तालाबों का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया। इन कठिन स्थितियों को वर्ष 2004 में और कठिन बनाया कम वर्षा और घोषित सूखे ने। लगातार कम होती वर्षा, गहराते सूखा आपदा ने लोगों के सामने खेती, किसानी, पशुपालन व आजीविका का संकट उत्पन्न किया और लोगों के सामने पलायन का विकल्प बचा। पर पलायन भी सुरक्षित एवं दीर्घकालिक विकल्प न होने के कारण लोगों ने स्थायित्व की ओर सोचा और तब उन्हें तालाबों की याद फिर से आई। समुदाय ने जल संचयन के प्राकृतिक श्रोतों को पुनः तलाशना प्रारम्भ किया।

प्रक्रिया

ग्राम कुरौली, विकास खण्ड कुठौन्द, जनपद जालौन के लोगों द्वारा एक सामुदायिक तालाब का पुनः निर्माण कर जल संचयन की दिशा में एक महत्वपूर्ण कार्य किया गया। पुनः निर्माण की प्रक्रिया के तहत् वर्ष 2006–07 में ग्राम कुरौली के लोगों ने खुली बैठक कर विगत 2 वर्षों से पड़ने वाले सूखा तथा उसके परिणामस्वरूप तालाब, कुऐं यहां तक कि हैण्डपम्प के सूख रहे पानी एवं जानवरों के पीने के पानी की दिक्कत, सिंचाई की समस्या पर चर्चा की। चर्चा में निकल कर आया कि आज से लगभग 10 वर्ष पहले गांव में तीन तालाब थे। प्रत्येक गर्मियों में तालाबों से मिट्टी निकाल कर लोग घर की लिपाई, मरम्मत, चूल्हा, मिट्टी की डेहरी बनाने का काम करते थे। इससे दो फायदे थे – एक तो लोगों को अपने घर के साज–संवार के लिए मुफ्त की मिट्टी मिल जाती थी और दूसरा व बड़ा फायदा यह था कि प्रति वर्ष तालाबों का गहरीकरण बरसात से पहले ही हो जाने से उसमें बरसात का पानी भी संचित होता रहता था। परन्तु अब सभी तालाब या तो कब्जा कर लिये गये हैं या भठ गये हैं, जिस कारण बारिश का पानी तो संचय होता नहीं, जमीन के अन्दर का पानी भी सूख गया है। इसका एक उपाय है कि अगर हम तालाब को गहरा करें तो जल संचय होगा और पानी की समस्या से कुछ हद तक मुक्ति मिल सकेगी। कम से कम जानवरों के पीने के लिए तो पानी उपलब्ध होगा ही। तब गांव में बने स्वयं सहायता समूह के सदस्यों और किसान क्लब के सदस्यों ने तालाब गहरीकरण के कार्य का बीड़ा उठाया और तालाब खुदाई का कार्य शुरू किया। गांव के श्री पंचम पुत्र श्री बालकिशुन ने इस कार्य का नेतृत्व किया। इस कार्य को देखकर गांव के अन्य परिवारों ने भी तालाब की खुदाई में 5 दिन का सहयोग देने का वायदा किया, जिससे यह तालाब काफी खुद गया। तत्पश्चात् इसको समीप के सरकारी ट्यूबवैल से भरा गया जिससे उस वर्ष पशुओं के लिए पीने के पानी की दिक्कत नहीं हुई।

तालाब का क्षेत्रफल

खुदे गये तालाब की लम्बाई 60 मीटर, चौड़ाई 40 मीटर और गहराई 02 मीटर अर्थात् 480 घन मीटर है।

तालाब निर्माण एवं गहरीकरण ने पंचायत को भी प्रेरित किया। परिणामत: पंचायत ने तालाब के आस-पास वृक्षारोपण कराकर गाँव को फलदार बगीचा उपलब्ध कराया और पर्यावरण सुधार में पहल भी की।

पंचायत की भूमिका

प्रक्रिया के अगले चरण में वर्ष 2008–09 में ग्रामवासियों ने इस तालाब को और गहरा करने के लिये पंचायत में प्रस्ताव रखा। जिसे संज्ञान में लेते हुए ग्राम प्रधान ने इस प्रस्ताव को मनरेगा के तहत् लेकर इस तालाब को और गहरा करवाकर इसके आसपास वृक्षारोपण करवाया। परिणामत: आज यह तालाब बहुत अच्छा हो गया है। इसके आसपास बेर के 16, आंवला के 12, अमरूद के 18, नीम के 06, बबूल के 08 तथा जामुन के 04 इस प्रकार कुल 64 पेड़ लगाये गये हैं, जिसकी रखवाली समुदाय के द्वारा की गयी। आज सभी पौधे पेड़ बनने की ओर अग्रसर हैं।

रख-रखाव

इस तालाब की देख–रेख एवं रख–रखाव हेतु गांव में एक समिति बनी हुयी है जिसमें ग्राम सभा के हर वर्ग से एक व्यक्ति है, जो इसकी देख–रेख एवं मरम्मत का कार्य करता–करवाता है जिन लोगों की जमीन आस–पास है, वे लोग सिंचाई हेतु भी तालाब के पानी का उपयोग करते हैं और समिति द्वारा निर्धारित मूल्य चुकता करते हैं ताकि तालाब एवं नाली की मरम्मत व पेड़ों की सुरक्षा का कार्य सुचारू रूप से हो सके। सिंचाई से प्राप्त पैसा मन्दिर के महन्त एवं समाज सेवी श्री रामशंकर बाबा जी के पास जमा रहता है। इस प्रकार सारी व्यवस्था आपसी विश्वास एवं समझदारी के आधार पर चलती है।

नियम निर्धारण

समिति द्वारा सर्वसम्मति से तय किया गया है कि एक एकड़ खेत की एक सिंचाई हेतु रू0 250.00 उपभोगकर्ता द्वारा देय होगा।

तालाब निर्माण में आई लागत

समुदाय द्वारा लिये गये तालाब निर्माण के निर्णय पर कार्य शुरू किया गया। इस तालाब की लम्बाई 60 मीटर, चौडाई, 20 मीटर एवं गहराई 2 मीटर के लगभग है। तालाब के निर्माण में गांव के 300 परिवारों से 100 लोगों द्वारा 6–6 दिन मजदूरी की गई। इस प्रकार प्रति व्यक्ति 600.00 रूपये का योगदान करके 60000.00 रूपये के सामुदायिक सहयोग/श्रमदान की लागत से खुदाई का कार्य किया गया। इसके बाद पंचायत द्वारा 2 लाख रूपये की लागत से इस तालाब का गहरीकरण, सुन्दरीकरण और वृक्षारोपण का कार्य कराया गया। कुल मिलाकर इस पर लगभग 2 लाख 60 हजार रूपये की लागत आई।

परिणाम

आज ग्राम कुरौली में लोगों के सहयोग से तालाब अपने पुराने स्वरूप में वापस आ चुका है और इस तालाब से हर समय जानवरों को पीने का पानी उपलब्ध हो रहा है।

- तालाब में पानी आने से समीप में बने विद्यालय के हैण्डपम्प से पानी मिलने लगा।
- सामुदायिक सोच एवं मुद्दे की चेतना से प्रभावित होकर पंचायत द्वारा गांव में अन्य चार तालाबों का गहरीकरण कराया गया।
- बागवानी एवं सब्जी उत्पादन जैसे आजीविका के सामूहिक प्रयास संभव हो सके।

तालाब में पानी बने रहने से गांव के श्री राजेश कुमार पुत्र श्री रामशरण पाण्डेय ने तालाब के किनारे पड़ी अपनी 18 डिसमिल जमीन पर अमरूद–40, आंवला–22, पाकड–03, कटहल–04, आम–06 एवं महुआ–03 के कुल 78 पेड़ लगाकर बागवानी का कार्य किया। इससे आज उनके खेत में अमरूद एवं आंवले का बाग तैयार हो रहा है।

तालाब के पानी से सिंचाई कर गांव के श्री रूप सिंह पुत्र चतुर सिंह ने अपने 1.2 एकड़ खेत में सब्जी उत्पादन का कार्य किया जिससे उनको रोजगार भी प्राप्त हुआ। इनके लागत व लाभ को इस प्रकार देखा जा सकता है –

सब्जी उत्पादन – वर्ष में एक बार

भिण्डी: 19 कुन्तल मिर्चा : 20 किग्रा0
बैगन : 06 कुन्तल टमाटर : 20 कुन्तल
आलू : 08 कुन्तल लहसुन : 40 किग्रा0
प्याज : 06 कुन्तल लौकी : 05 कुन्तल

इस पूरी प्रक्रिया में लागत के तौर पर सिर्फ रू0 5500.00 लगे जबकि उत्पादन मूल्य स्वयं के खर्च के अलावा रू0 19200 हुआ। इस प्रकार कुल शुद्ध लाभ रू0 13,700 हुआ।

- लोगों के अन्दर जल संरक्षण को लेकर चेतना जागृत हुई।
- परम्परागत जल श्रोतों के संरक्षण की सीख प्राप्त हुई।
- लोगों के अन्दर सामूहिकता की भावना विकसित हुई।

जल संरक्षण से सूखे का मुकाबला

सूखा की स्थितियों से निपटने के लिए समुदाय की सामूहिक रणनीति के तहत् जल संरक्षण की गतिविधि बेहतर साबित हुई जिससे न सिर्फ सिंचाई की समस्या हल हुई वरन् भयंकर गर्मी में पशुओं की प्यास भी बुझी।

संदर्भ

जनपद महोबा के विकास खण्ड कबरई में अत्यन्त पिछड़ा व दुर्गम रास्ते वाला गांव गंज चकरिया नाला के दोनों तरफ बसा हुआ है। जिला मुख्यालय व महोबा कानुपर रोड से लगभग 7 किमी0 की दूरी पर उत्तर व पश्चिम के बीच यह गांव स्थित है, जो महोबा–कानपुर रोड से एक पक्के सम्पर्क मार्ग के द्वारा जुड़ा हुआ है। 2555 लोगों की आबादी वाले इस गांव की आजीविका का मुख्य साधन कृषि है। कृषिगत भूमि का रकबा लगभग 2400 एकड़ है, जिसमें से केवल 100 एकड़ जमीन सिंचित है। यहां पर सिंचाई के साधनों में व्यक्तिगत कुआं ही हैं। कुल कृषि योग्य भूमि में से 1100 भूमि राकड़ है, जो ढालू तथा उबड़–खाबड़ है। ढलान की स्थिति यह है कि कहीं–कहीं पर खेत का ढाल 1 मीटर तक है। अत: यहां पर बरसात का पानी रुकता नहीं है। मात्र 200 एकड़ जमीन ही समतल व उपजाऊ किस्म की है।

सूखा की स्थिति के सन्दर्भ में देखें तो जनपद महोबा में वर्ष 1979 से लगातार प्रत्येक 4–5 वर्षों के अन्तराल पर सूखा पड़ रहा है और पूरा जनपद इससे प्रभावित होता है, परन्तु ग्राम गंज अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण सूखा से सबसे अधिक प्रभावित हुआ है। पशुओं का चारा–भूसा गांव में उपलब्ध न होने के कारण पशुपालन भी नहीं हो पाता है। यहां के किसान मुख्य रूप से रबी की फसल पर निर्भर करते हैं पर निरन्तर प्राकृतिक आपदाओं के चलते औसतन 50–60 प्रतिशत फसल प्रतिवर्ष सूखा से प्रभावित रहती है। अब तो स्थिति यह हो गयी है कि पेयजल स्रोतों जैसे – कुंओं व हैण्डपम्पों ने पानी देना बंद कर दिया है, गांव में पीने के लिए पानी भी नहीं मिल रहा है। ऐसी स्थिति से निपटने के लिए लोगों द्वारा अपने तईं प्रयास किये जा रहे हैं, परन्तु दरकार एक ऐसे सामूहिक प्रयास की थी, जो लोगों को समुदाय के स्तर पर लाभान्वित कर सके। ऐसी स्थिति में लोगों ने जल संरक्षण की दिशा में प्रयास शुरू किया।

प्रक्रिया

समुदाय की पहल

प्राकृतिक आपदाओं की बढ़ती निरन्तरता एवं सरकारी उदासीनता के बीच पहली बार वर्ष 1996 में संस्था द्वारा एक खुली बैठक का आयोजन कर आजीविका के स्थाई एवं दीर्घकालिक विकल्पों व संभावनाओं पर चर्चा की गयी। चर्चा में निकल कर आया कि यहां की आजीविका का मुख्य साधन खेती है, परन्तु अधिकतर जमीन ऊसर व ढालू होने के कारण बेकार पड़ी रहती है। यदि आजीविका के साधनों को इस सुधार से जोड़ा जाये तो कुछ स्थाईत्व की बात की जा सकती है। लोगों ने यह भी कहा कि यहां पर सिंचाई के साधनों की अनुपलब्धता ने कोढ़ में खाज की तरह काम किया है। यदि इस जमीन में पानी रूकने की व्यवस्था की जाये तो जमीन भी उपजाऊ हो सकती है और साथ ही नाले में चेकडैम बना दिया जाये तो वर्षा के पानी से कुछ क्षेत्रफल की सिंचाई भी की जा सकती है और पशुओं के पीने के लिए पानी हमेशा मिल सकेगा। पर मुख्य समस्या थी कि इन कार्यों को करने के लिए पैसा कहां से आयेगा।

जल संरक्षण हेतु किये गये कार्य

जल संरक्षण के लिए काम शुरू करने से पहले गांव में संस्था द्वारा स्वयं सहायता समूह का गठन व संचालन किया जाता था। समूह की एक महिला श्रीमती रामप्यारी देवी ने वर्ष 2002 में समूह से रू0 1500.00 ऋण लेकर बकरी पालन किया। इनके पास भूमि तो थी, परन्तु

वाटर एड परियोजना के सहयोग से चेक डैम व गैबियर ढांचा बनाकर किसानों ने सब्ज़ी की खेती करते हुए अपनी आजीविका सुनिश्चित की व इस जल संरक्षण से गाँव का जल स्तर भी बढ़ा।

सिंचाई के अभाव में खेती नहीं हो पाती थी। तब इन्होंने अपने खेत में मेड़बन्दी कराकर खेत का पानी खेत में ही रोकने का काम किया, जिससे इन्हें फायदा हुआ। इनके खेतों में नमी बनी रही। पुनः चकरिया नाला में एक चेकडैम व गैबियर ढांचा समुदाय के सहयोग से बनवाया गया, जिसमें कुछ वित्तीय सहयोग वाटर एड प्रोजेक्ट का रहा। इस चेकडैम में एकत्रित पानी के द्वारा श्रीमती रामप्यारी देवी ने अपने एक एकड़ खेत में सब्ज़ी उत्पादन कर पूरे वर्ष अपने परिवार का भरण पोषण किया। इनकी सफलता को देखकर गांव के ही उमाशंकर जी ने अपने सभी खेतों में मेड़बन्दी करवाई तथा गढ्ढा बोर के द्वारा सूखे की स्थिति में भी रबी की फसल कठिया गेंहू व चना सफलतापूर्वक उगाया। अब तो गांव के अन्य लोगों ने भी अपने खेतों में चेकडैम व जल निकास बनाने का काम प्रारम्भ कर दिया। चकरिया नाला में चेकडैम के आगे गांव तक पानी का बहाव तेजी से रोकने के लिए जगह–जगह गली प्लग बनवाये गये। इतनी व्यवस्था होने पर पशुओं को पीने के लिए पानी सुगमतापूर्वक मिलने लगा तथा नाला के किनारे रबी के मौसम में फसलें उगायी जाने लगीं।

जल संरक्षण की यह प्रक्रिया सघन रूप से वर्ष 1996 से 2006 तक चलाई गयी और आज तक गांव में 1800 एकड़ भूमि में मेड़बन्दी का कार्य पूर्ण हो चुका है। गांव में 21 चेकडैम, जलनिकास – 64, गलीप्लग – 56 तथा 12 कुंओं का गहरीकरण हुआ है, जिसमें संस्था व समुदाय की बराबर की भागीदारी रही है। संस्था ने वित्तीय सहयोग किया तो समुदाय ने श्रमदान किया।

लागत व लाभ

लगातार 10 वर्षों तक चलाई गयी इस जल संरक्षण प्रक्रिया में लागत के तौर पर रू0 15–20 लाख का खर्च हुआ, लगभग 300 दिनों तक श्रमदान किया गया, जिसके एवज में प्राप्त लाभ को रूपये में तो नहीं आंका जा सकता, फिर भी इस कार्य के लाभ को निम्नवत् देखा जा सकता है–

- आज गांव में सूखे का असर बहुत कम दिखता है।
- मेड़बन्दी कार्य से ऊसर भूमि में नमी का संरक्षण हुआ है तथा मृदा का कटाव न होने से मिट्टी में जीवांश पदार्थ की मात्रा बढ़ी है। परिणामतः रबी की फसल भी निश्चित हुई है और पिछले वर्ष 2008 से उत्पादन भी 10 प्रतिशत बढ़ा है।
- पूरे मौजे में कठिया गेंहू, चना, मटर व मसूर की खेती बिना सिंचाई के सफलतापूर्वक हो रही है।
- गांव के हैण्डपम्प तथा कुंओं का जलस्तर बढ़ा है, जिससे सूखे में भी वर्ष भर पीने के लिए पानी उपलब्ध रहता है।
- खरीफ के मौसम में भी तिल व उर्द की खेती ऊसर भूमि में की जाने लगी है।
- चकरिया नाला में पानी संरक्षित रहने से आस–पास के क्षेत्र के पशुओं के लिए हरा चारा उगाया जाने लगा है।
- अन्ना पशुओं के लिए भी चारे व पानी की उपलब्धता आसानी से होने लगी है।

प्रसार

सामुदायिक सहयोग से हुए जल संरक्षण के कार्य को देखकर आस–पास के गांव जैसे घरौन, काली पहाड़ी, मुगौरा तथा अलीपुरा के किसान अपने–अपने खेतों में मेड़बन्दी का कार्य करा रहे हैं तथा पानी के तेज बहाव को रोकने के लिए जगह–जगह गलीप्लग बनवा रहे हैं। उपरोक्त गांवों में पानी संग्रहण के लिए चेकडैम भी जन सहभागिता से बनाया जा रहा है।

सामूहिक कूप निर्माण से बदली लघु-सीमान्त किसानों की तकदीर

सूखा की विपरीत परिस्थितियों से निपटने हेतु हो रहे पलायन को रोकने के लिए प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण कार्य बड़े पैमाने पर किया गया। समूह बनाकर किये गये कूप निर्माण कार्य से लोगों को बहुत फायदा हुआ।

संदर्भ

महोबा जनपद के कबरई विकास खण्ड के ग्राम गंज में 68 परिवार अहिरवार एवं बसोर जाति के निवास करते हैं। इस वर्ग के लोगों के पास अपनी कुछ जमीनें हैं, जो गांव के समीप सलारी पहाड़ी के पास है। इनके खेतों की मिट्टी लाल पथरीली तथा जमीन ढालदार है। वर्ष 1985 से 1990 तक यह जमीन परती पड़ी रहती थी। बाद में इस वर्ग के लोगों ने उस जमीन को 36 किसानों को पट्टा कर दिया। प्रत्येक किसान को 3–3 एकड़ का पट्टा किया गया था। इस जमीन में पूर्व में पत्थर एवं अड़ियां थीं, जिन्हें किसानों ने अपने परिवार के साथ मिलकर साफ किया और मिट्टी का कटाव रोकने व नमी संरक्षण करने हेतु मेड़ बनायी। इस कार्य हेतु हुए खर्च का 66 प्रतिशत ग्रामोन्नति संस्थान से अनुदान मिला तथा 34 प्रतिशत समुदाय ने स्वयं वहन किया। ये परिवार पहले अपनी आजीविका चलाने हेतु बड़े लोगों के यहां चाकरी करते थे तथा कुछ उनकी जमीनों को बटाई पर ले लेते थे। दीवाली के बाद इनमें से 22 परिवार होली तक के लिए पलायन कर जाते थे। वर्ष 1999 में संस्थान द्वारा परियोजना के तहत् 250 हेक्टेयर भूमि पर प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण हेतु कार्य किया गया। इस कार्यक्रम के नियोजन एवं क्रियान्वयन की पूरी जिम्मेदारी दलित महिलाओं को दी गयी और इसके लिए उनका एक समूह गठित हुआ। इस समिति ने अपने खेतों पर सिंचाई का साधन लगाने के लिए 4 स्थानों पर पांच–पांच परिवारों का समूह बनाकर कुआ निर्माण करने की योजना बनाई।

सामूहिक कूप निर्माण की प्रक्रिया

सर्वप्रथम समिति द्वारा कूप निर्माण के स्थान के चयन के लिए पारम्परिक ज्ञान एवं विज्ञान दोनों का प्रयोग किया गया। इन्होंने स्थानीय ज्ञान विधि से पानी का सर्वे तथा भूगर्भ जल विभाग हमीरपुर से पानी मिलने के स्थान का सर्वे कराया और कुंआ बनाने हेतु स्थान चिन्हित किया। तत्पश्चात् कुंओं की खुदाई की गयी।

पानी बंटवारे हेतु बनाये गये नियम

गांव में चार कूप समूह क्रमशः देवकली कूप समूह, रामप्यारी कूप समूह, मुन्ना बसोर कूप समूह तथा मुन्ना बजरंगी कूप समूह हैं।

उपरोक्त समूहों ने पानी बंटवारे के लिए कुछ नियम बनाये, जो निम्न हैं –

- कुंए में पानी की उपलब्धता के आधार पर क्रमशः प्रत्येक किसान को दो–दो दिन पानी मिलेगा।
- किसानों को अपने पम्पिंग सेट से सिंचाई करनी होगी तथा उसकी रखवाली की जिम्मेदारी उनकी स्वयं की होगी।
- जिन किसानों के पास पम्पिंग सेट नहीं है, वे समूह के जिस सदस्य का पम्पिंग सेट प्रयोग करेंगें, उसका किराया अदा करेंगें, जो गांव में प्रचलित होगा।
- कुंआ जिसकी जमीन पर बनाया जायेगा, उसको एक बीघा खेत सिंचाई करने के लिए अतिरिक्त पानी मिलेगा। उसे अधिकार होगा कि वह अपने खेत के पास किसी जमीन को बटाई / बलकट पर ले कर उस पानी का उपयोग करे या फिर अपना पानी समूह के किसी सदस्य को बेच दे।
- समूह के अन्य सदस्यों को अतिरिक्त जमीन के लिए पानी नहीं मिलेगा।

उपरोक्त शर्तनामा 10 रू0 के स्टाम्प पेपर पर नोटरी कराई गयी एवं प्रत्येक सदस्यों को एक–एक प्रति उपलब्ध कराई गयी।

कुंए की खुदाई एवं अंशदान हेतु बनाये गये नियम

परियोजना द्वारा सामूहिक कूप निर्माण हेतु लागत का 66 प्रतिशत था। शेष 34 प्रतिशत धनराशि समूह के सदस्यों को श्रम/सामग्री/नकद किसी भी रूप में करना था। 20 फुट व्यास एवं 30 फुट गहराई वाले एक कुंएं की लागत 1–1.20 लाख के बीच आंकी गयी। इस प्रकार समूह के प्रत्येक सदस्य को सात से आठ हजार रूपया अंशदान के रूप में देना हुआ। इसमें निश्चित किया गया कि प्रत्येक समूह के सदस्य के परिवार से दो व्यक्ति प्रतिदिन काम करेगें। जिसके यहां से कोई काम पर नहीं आयेगा, उस दिन की दो मजदूरों की मजदूरी उसे नकद रूप में चुकानी पड़ेगी।

अन्त में कुंओं का निर्माण पूर्ण होने पर सभी सदस्यों के श्रम, सामग्री, नकद को जोड़कर हिसाब किया जायेगा। कुंए के रख–रखाव हेतु प्रत्येक सदस्य 300.00 रूपया समूह के खाते में जमा करेगा, जो भविष्य में कुंए की मरम्मत एवं रख–रखाव में खर्च होगा।

सम्मिलित सभी परिवारों द्वारा कुंए की खुदाई हेतु बनाये गये नियमों से जो परिणाम प्राप्त हुए उसमें मुख्य रहा कि लोगों का पलायन रुका और 20 परिवारों की 46 एकड़ जमीन भी सिंचित हुई।

कुंआ निर्माण में आयी लागत (20 फुट व्यास व 30 फुट गहराई) (कार्य समय : 76)

कार्य विवरण	मजदूर संख्या	दिन/दर	मजदूरी का विवरण	कुल धनराशि
सर्वे चार्ज	10	56 दिन/रु० 47.00	10 x 56 x 47.00	रु० 1,000.00
कूप खुदाई कार्य				रु० 26,320.00
खुदाई हेतु सामग्री–रस्सी, गैंती, फांवड़ा, आदि				रु० 8,000.00
पम्पिंग सेट किराया डीजल सहित		76 दिन/रु० 200.00	76 x रु० 200.00	रु० 15,200.00
कुंए की बंधाई की मजदूरी	10	20 दिन/रु० 67.00	10 x 20 x 67.00	रु० 13,400.00
इंट, पत्थर, बालू, सीमेण्ट				रु० 30,960.00
योग				रु० 94,880.00
अनुदान (कुल धनराशि का 66%)				रु० 62,620.80
समूह का सहयोग (कुल धनराशि का 66%)				रु० 32,259.20

परिणाम/लाभ

- 20 दलित परिवारों की 46 एकड़ भूमि सिंचित हुई।
- 24 एकड़ भूमि द्विफसली हो गयी, जिसमें उड़द, मूंग और मूंगफली के उपरान्त चना, मटर एवं पी.बी. डब्ल्यू 147 गेंहू उगाया जाने लगा है। जबकि पूर्व में मात्र एक फसल उड़द, मूंग या अरहर ही होती थी।
- बलुई मिट्टी में भी मिढ़का के स्थान पर रबी की फसल में गेंहू की फसल होने लगी है।
- 4 किसानों द्वारा सब्ज़ी उत्पादन भी किया जा रहा है।

सबसे बड़ा लाभ तो यह हुआ है कि सामूहिक कूप निर्माण से इन परिवारों का पलायन रुका है। इन समूहों की सफलता को देखते हुए ग्राम नथुपुरा में भी दो सामूहिक कूप बनाकर 15 एकड़ जमीन की सिंचाई की जाने लगी है, जिससे 10 परिवारों की आजीविका सुदृढ़ हुई है।

परम्परागत जल संसाधनों का संरक्षण

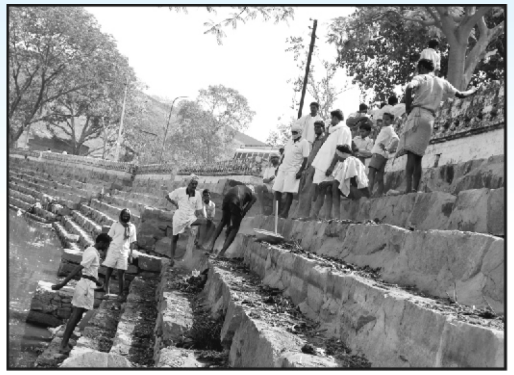

जब सूखा पड़ा तो लोगों को अपने परम्परागत जल संसाधनों की याद आयी और उन्होंने अपने यहाँ बन्द पड़े कुंओं की सफाई का काम कर न सिर्फ तात्कालिक तौर पर जल हासिल किया वरन् दूरगामी परिणाम के रूप में गाँव का जल स्तर भी बढ़ा।

संदर्भ

बुन्देलखण्ड में चार–पांच वर्षों की अनियमित तथा कम होने वाली वर्षा के कारण अकाल जैसी स्थिति उत्पन्न होने के पीछे सिर्फ प्राकृतिक कारक ही नहीं जिम्मेदार थे। मानवीय हस्तक्षेपों ने इस स्थिति को और भी भयावह बना दिया, जब जल संरक्षण के प्राकृतिक स्रोतों को मानव ने बंद करना प्रारम्भ कर दिया। बुन्देलखण्ड सदैव से ही कम पानी वाला क्षेत्र रहा है, परन्तु वहां पर जल संरक्षण के प्राकृतिक स्रोत जैसे कुंए, तालाब आदि इतने अधिक थे, कि पानी की कमी बहुत अधिक नहीं खलती थी। धीरे–धीरे विकासानुक्रम में लोगों ने इन कुओं, तालाबों को पाटना शुरू कर दिया। कहीं तो पाटने की यह क्रिया नियोजित थी और कहीं पर समुचित देख–रेख के अभाव में ये मूल स्रोत स्वयं ही पटने लगे और स्थिति की भयावहता बढ़ने लगी। जनपद हमीरपुर के विकास खण्ड सुमेरपुर के गांव इंगोहटा एवं मौदहा विकास खण्ड के ग्राम अरतरा, मकरांव, पाटनपुर में लोगों को इन्हीं स्थितियों का सामना करना पड़ा। तब लोगों की चेतना जगी कि यदि हम अपने परम्परागत काम को सुचारू रखते और समय–समय पर उनकी देख–भाल करते तो स्थिति इतनी न बिगड़ती और तब उन्होंने तालाबों, कुंओं की खुदाई व गहराई का काम करना प्रारम्भ कर दिया।

प्रक्रिया

समुदाय की पहल

समस्या से अपने स्तर पर निपटने के लिए सामुदायिक पहल के तहत् ग्राम इंगोहटा में मई, 2009 में समुदाय ने एक बैठक की। जिसमें गांव में बन्द पड़े कुंओं तथा पटे तालाबों को पुर्नजीवित करने सम्बन्धी रणनीति बनाई गयी। तय हुआ कि श्री राजेश के नेतृत्व में सभी लोग मिलकर परम्परागत जल संसाधनों को पुनर्जीवित करने का काम करेगें।

कुओं की सफाई व गहराई बढ़ाना

इंगोहटा में खास उस समय गांव के लोग कुंओं से मिट्टी निकालने के काम में जुटे जब कुंओं ने पानी देना पूरी तरह बंद कर दिया था। 100 साल पुराने कुंओं की सफाई में चालीस से अधिक पुरूष व महिलाओं ने भागीदारी की। पुरूष बारी–बारी से कुंए में उतर कर मिट्टी की खुदाई करते, पुरूष ही रस्सी में तसला व डलवा बांधकर मिट्टी को ऊपर खींचते और महिलाएं उस मिट्टी अथवा कीचड़ को दूर फेंकने का काम करती थीं। तीन दिन की मेहनत के बाद लगभग 7 फुट की गहराई तक खुदाई हुई और पानी आ गया। लोगों ने पानी प्रयोग करना भी शुरू कर दिया, परन्तु चार दिन प्रयोग करने के बाद पानी खत्म हो गया और नीचे से कीचड़ निकलने लगा। क्योंकि भूगर्भ जलस्तर बहुत गिर गया था। बुजुर्गों की राय पर लोग दुबारा कुंए में उतरे और फिर से मिट्टी व कीचड़ की खुदाई व सफाई प्रारम्भ की। दो दिनों की मेहनत के बाद कुंए की गहराई 5 फुट और बढ़ाई गयी तो कुंए के कई पुराने सोते खुल गये व कुआं तेजी से भरने लगा। लोग तेजी के साथ रस्सियों से बाहर आये। धीरे–धीरे कुंए का पानी अपने स्तर तक आ गया। अब लोगों को पानी मिलने लगा। गांव के तीन पुराने कुंओं को इसी प्रकार साफ व गहरा किया गया, जिससे पानी की दिक्कत दूर हुई व मनुष्यों के साथ–साथ पशुओं को भी पीने के लिए पानी उपलब्ध होने लगा।

इस पूरी प्रक्रिया में सामुदायिक भागीदारी महत्वपूर्ण रही। महिलाओं व पुरुषों के साथ बच्चों ने भी इस काम में योगदान किया। अब गांव के लोग इस बात का खास ख्याल रख रहे हैं कि कुंए के पास प्रदूषण व अतिक्रमण न होने पाये तथा

गांव में इण्डिया मार्का ॥ हैण्डपम्प भी अन्धाधुन्ध न लगायें जायें, जिससे हमें अपने परम्परागत जल संसाधनों से स्वच्छ व शुद्ध पेयजल हमेशा मिलता रहे।

तालाब की सफाई

इंगोहटा व अरतरा में लोगों ने इसी समय तालाब की सफाई का भी काम किया। पिछले अनुभवों से उन्हें समझ आ गया था कि सरकारी भरोसे पर बैठे रहना अकलमन्दी नहीं है। तब उन्होंने स्वयं ही तालाबों की खुदाई का काम शुरू किया। पहले तो लोगों ने इस काम में बहुत रूचि नहीं दिखाई, परन्तु बाद में लोगों ने इससे दोहरा फायदा लिया। खुदाई से निकली मिट्‌टी को लोगों ने अपने चबूतरों, खलिहान आदि में डालने का खर्च भी वहन किया। एक तरफ तो तालाब की खुदाई भी हुई और दूसरी तरफ लोगों ने घर, खलिहान आदि ऊंचा करने के लिए तथा मिट्‌टी के बर्तन बनाने के लिए मिट्‌टी भी मिल गयी।

परम्परागत जल संसाधनों की सफाई व संरक्षण से जो लाभ हुआ उसका मूल्यांकन पैसे में नहीं किया जा सकता पर इससे हजारों लोगों व पशुओं को गाढ़े दिनों में जल की उपलब्धता सुनिश्चित होना प्रमुख लाभ रहा।

बरसाती नालों का अतिक्रमण हटाना

सबसे अहम्‌ समस्या थी उन रास्तों पर अतिक्रमण, जिनके माध्यम से बरसाती पानी तालाबों तक पहुँचता था। इसके लिए उन रास्तों पर कब्जा किये लोगों से बात–चीत की गयी, जिसका कोई नतीजा नहीं निकला। तब अरतरा के तत्कालीन बी0डी0सी0 श्री मनोज त्रिपाठी, ग्राम प्रधान श्री महेश्वरीदीन प्रजापति तथा अन्य लोगों ने मिलकर पंचायत के माध्यम से इस बात को हल करने की कोशिश की। उन लोगों को भी इसके दुष्परिणामों को भुगतना पड़ रहा था। अतः थोडे प्रयास के बाद ही समन्वय स्थापित हुआ और उन रास्तों पर से अतिक्रमण हटा लिया गया। अगली बरसात में जब वर्षा प्रारम्भ हुई तो इन तालाबों में पर्याप्त पानी आ गया, जिससे आबादी व पशुओं सभी को लाभ मिला।

लागत व लाभ

यद्यपि मौद्रिक रूप से इन प्रयासों के लाभ–हानि का विश्लेषण करना सम्भव नहीं है। फिर भी कहा जा सकता है कि एक अनुमान के मुताबिक इस पूरे कार्य में लगभग 2 लाख रूपये का खर्च हुआ, जिसके सापेक्ष सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि क्षेत्र के लगभग 4500 लोगों व 700 पशुओं को पीने का पानी उपलब्ध हुआ, उनके लिए पानी सुलभ हुआ।

सफल अनुभव

अनुकरणीय उदाहरण

मौदहा नगर में ओरी तालाब अति प्राचीन है, परन्तु अनेक लोगों ने इसमें अतिक्रमण करके न केवल पानी आने के रास्ते बन्द कर दिये थे, वरन्‌ अपने आवासों की गन्दगी व मलबा भी तालाब में गिराते रहे हैं। निकट की बस्ती रामनगर के निवासियों ने पानी के संकट से निपटने के लिए ओरी तालाब की सफाई करने, गहराई बढ़ाने का संकल्प लिया और इस कार्य के लिए उन्हें प्रोत्साहित करने का काम किया मध्य प्रदेश की किन्नर शबनम मौसी ने। लोग शबनम मौसी के नेतृत्व में श्रमदान करने जुट गये और यह प्रयास रंग लाया। तालाब की सफाई करने तथा गहराई बढ़ाने में सफलता मिली। बरसात में तालाब में पानी आने से जहां लोगों का जलसंकट दूर हुआ, वहीं क्षेत्र के कुंओं का जलस्तर भी सुधर गया।

भूमि समतलीकरण

ऊंची नीची भूमि के कारण खेतों से बहुत सा पानी बेकार बह जाता है, जिसने सूखे विन्ध्य को और सूखा बनाया। तब लोगों ने भूमि समतलीकरण की तकनीक अपनाकर सूखे से मुकाबला प्रारम्भ किया।

संदर्भ

भूमि समतलीकरण से आशय है ऊंची–नीची जमीन को बराबर करके उसकी मेड़ को बांधना ताकि जमीन की उर्वरा शक्ति एवं जल धारण क्षमता बढ़े। भूमि एवं जल प्रबन्धन की यह एक पुरानी व कारगर परम्परा है, जो खेती के आधुनिक दौर में बहुत प्रचलन में नहीं है। परन्तु आज जब पानी की एक–एक बूंद महत्वपूर्ण है, इस परम्परा को पुनः प्रचलन में लाना अति आवश्यक हो गया है और इसी दिशा में प्रयास करते हुए इसे प्रतिस्थापित किया जा रहा है।

गांव घोरपा जनपद सोनभद्र के विकास खण्ड दुद्धी का अति पिछड़ा गांव है, जो पूर्व से पश्चिम व उत्तर से दक्षिण में कनहर तथा गोइठा नदी की ऊंचाई में स्थित है। गांव के उत्तर दिशा में पहाड़ी स्थित है। घोरपा का क्षेत्रफल लम्बाई में 6 किमी0 व चौड़ाई में 5 किमी है। यहां लोग ऊंचे–नीचे टीलों में बसे हुए हैं। लोगों की आजीविका का मुख्य साधन कृषि एवं जमीनें उपजाऊ होने के बाद भी लोग खेती नहीं कर पाते, क्योंकि भूमि ऊंची–नीची व सिंचाई के साधनों का अभाव खेती को दुरूह बना देता है। इस गांव में सिंचाई का एकमात्र साधन कूप व तालाब है और लोग उसी के सहारे थोड़ी बहुत खेती करते हैं।

गांव की अधिकतर जमीन गोइठा नदी के किनारे है। गोइठा नदी की गहराई 100 से 200 मीटर तक है। नदी के दक्षिण दिशा में लगभग डेढ़ किमी0 की दूरी पर एक नाला बहता है। एक तो उबड़–खाबड़ जमीनें, दूसरे ढालूदार होने के कारण पानी होते हुए भी उसका लाभ नहीं मिल पाता और सिंचाई के अभाव में खेती नहीं हो पाती है। यहां लोग कम पानी वाली फसलें – जैसे मेझरी, सांवा, कोदो, तिल आदि की खेती करते हैं। परन्तु बढ़ती मंहगाई, कम होती बारिश इन सभी ने मिलकर इस खेती को भी कठिन बना दिया। तब लोगों ने भूमि समतलीकरण कर पानी को रोकने का प्रयास कर अपनी खेती सुदृढ़ करने का निश्चय किया। गांव घोरपा के श्री रामजीत पुत्र श्री सुखलाल ने इस तरह का व्यक्तिगत प्रयास अपने खेत पर किया।

प्रक्रिया

पारिवारिक विवरण

श्री रामजीत के परिवार में कुल 15 सदस्य हैं और खेती के लिए 6.66 एकड़ भूमि है। इनके खेत के बीच से गोइठा नदी बहती है। इनकी जमीन ढालू एवं यत्र–तत्र गढ्ढा होने की वजह से खेती करने लायक जमीन बहुत ही कम है। मात्र एक से दो बीघा जमीन, जो ऊंचे–नीचे टीलों पर है, उसमें ये कम पानी वाली फसलें उगाते हैं।

भूमि समतलीकरण एवं बावड़ी निर्माण

खेती के सामान्य तरीके को लगातार कम होती वर्षा ने प्रभावित किया और उपज न के बराबर होने से इनके सामने आजीविका का संकट गहराने लगा। परिवार का भरण–पोषण भारी पड़ने लगा, तब इन्होंने पारिवारिक स्तर पर बैठकर समस्या का समाधान निकालने की प्रक्रिया शुरू की। इन्होंने कहा कि यदि हम अपनी खेती की जमीन को समतल कर सकें तो उपज बेहतर मिल पायेगी और हमारा खाद्य संकट टल जायेगा।

सर्वसहमति से निश्चय किया गया कि भूमि समतलीकरण को रोकने से पहले पानी के तेज बहाव को रोकने के लिए नाले के कैच शिखर पर बावड़ी का निर्माण किया जाये। वर्ष 1995 में नियोजित ढंग से परिवार के लोगों ने मिलकर बावड़ी बनाई, जिसमें बाहर से 5 मजदूरों ने भी काम किया। कुल 15 लोगों के अथक प्रयास से 80 दिनों में सवा छः मीटर गहरी एवं वर्गाकार

आकार में 5 मीटर लम्बाई व 5 मीटर चौड़ाई का तालाब बनकर तैयार हुआ। इस कार्य में सिर्फ बाहर के 5 मजदूरों को मजदूरी के तौर पर 30.00 रू0 प्रतिदिन की दर से रू0 12,000.00 का भुगतान किया गया। जबकि 24,000.00 रू0 के बराबर मजदूरी स्वयं रामजीत एवं उनके परिवार ने किया। इस प्रकार तालाब निर्माण में कुल 36,000.00 रू0 लगे।

भूमि समतलीकरण क्रियान्वयन

तत्पश्चात् गर्मी के दिनों में ही परिवार के 10 सदस्यों ने मिलकर खेत की कठोर मिट्टी को काटकर खेत का स्तर नाला के बराबर किया। वर्ष 1999 से 2001 तक की बरसात में जमीन को एक बराबर करते हुए क्यारी बनाने का काम किया साथ में जगह–जगह बड़े–बड़े गढ्ढा बनाकर क्यारियों को उनसे जोड़ दिया। इस प्रकार 6.66 एकड़ भूमि में से 4 एकड़ जमीन में 13 बड़े गड्ढे तैयार हुए तथा 12 छोटी–छोटी वर्गाकार एवं आयताकार क्यारियों का निर्माण किया गया।

पारिवारिक स्तर पर अपनाई गई इस गतिविधि में रामजीत ने स्थानीय तकनीक का इस्तेमाल करते हुए खेतों में ही गड्ढा तैयार कर उसे क्यारियों से जोड़ा, जिससे खेतों की सिंचाई आसानी से होती रहे।

- 13 बड़े गढ्ढे एवं क्यारियों का माप– क्यारियां 20 मीटर लम्बी, 15 मी0 चौड़ी एवं आधे से एक मीटर तक गहरी तथा गढ्ढे की मोटाई 2 मीटर व चौड़ाई 50 सेमी. है।
- 12 छोटे गढ्ढे एव क्यारियों का माप – क्यारियां 10 मी0 लम्बी व चौड़ी तथा गढ्ढे की मोटाई 100 सेमी0 व चौड़ाई 40 सेमी0 है।

समतलीकरण का विवरण इस प्रकार है :–

- तीन वर्षों तक (1999 – 2001 तक) प्रत्येक वर्ष जनवरी से मार्च तक लगातार परिवार के 10 सदस्यों ने भूमि समतलीकरण हेतु कार्य किया। पहले बैलों से भूमि की जुताई करते थे। इसके बाद उस खेत को कुर्री (मिट्टी खींचने वाला लकड़ी का पल्ला) से बैलों द्वारा खिंचवाकर गढ्ढे के स्थान में ले जाकर भरते थे। आवश्यकता पड़ने पर दूसरे के बैल व बाहरी मजदूरों को भी लगाया जाता था। उस समय मजदूरी दर रू0 30.00 था, जिसके आधार पर लागत को देखा जाये तो कार्य में लगे कुल कुल 10 मजदूरों को 240 दिन के लिए रू0 2,16,000.00 का भुगतान किया गया।

लाभ

इस पूरी प्रक्रिया से हुए लाभ को निम्न तौर पर देख सकते हैं :–

- आज उस जमीन में नाला, गढ्ढा का नामोनिशान नहीं है। पहले सिर्फ सांवा, कोदो, मेझरी, तिल की ही खेती होती थी, आज उस खेत में अधिक मात्रा में धान लगा रहे हैं। इसे भी नियोजित ढंग से करके कम पानी चाहने वाली व अल्प अवधि की धान की प्रजाति लगा रहे है। मुख्यत: साठा धान की खेती करते हैं।
- पानी के व्यर्थ बहाव को रोकने के लिए किये गये तालाब निर्माण से पानी का संचयन हुआ है और जहां पहले खेती वर्षा आधारित होती थी, अब संचित पानी से खेती करने लगे हैं।
- इनकी इस प्रक्रिया का प्रसार अन्य किसानों में भी हो रहा है और लोग अपने खेतों में क्यारियां बनाकर भूमि समतल करके लाभ लेने लगे हैं। पहले जहां कुछ भी उत्पादन नहीं होता था, अब वहां पर मक्का, धान, अरहर, तिल आदि का उत्पादन होने लगा है।
- श्री रामजीत पहले सिर्फ सवा एकड़ में खेती कर पाते थे, आज 4 एकड़ से अधिक भूमि पर खेती करने लगे हैं।
- श्री रामजीत की इस जमीन में बावड़ी निर्माण हो जाने पर कम मात्रा में पानी की आवश्यकता होती है। पहले इस जमीन में रबी की फसल न के बराबर होती थी, आज वे गेंहू का उत्पादन कर अच्छा लाभ कमा रहे हैं।

खेती के लागत- लाभ का तुलनात्मक विवरण

10 वर्षों पहले जब रामजीत की जमीन समतल नहीं थी, उस समय और आज समतलीकरण के बाद इनकी खेती और आय का तुलनात्मक विवरण निम्नवत् है –

10 वर्ष पहले

खरीफ- उपयोग सवा एकड़ का[1]

क्रमांक	फसल	बीज की मात्रा	उपज मात्रा	मूल्य (रु० में)	आय (रु० में)
1.	सांवा	10 किग्रा०	1 कुन्तल	200.00 प्रति कुन्तल	200.00
2.	कोदो	15 किग्रा०	1.5 कुन्तल	200.00 प्रति कुन्तल	300.00
3.	मेझरी	05 किग्रा०	50 किग्रा०	300.00 प्रति कुन्तल	150.00
4.	तिल	12 किग्रा०	1 कुन्तल	600.00 प्रति कुन्तल	600.00
5.	अरहर	08 किग्रा०	1.5 कुन्तल	800.00 प्रति कुन्तल	1200.00
	योग	**50 किग्रा०**	**5.5 कुन्तल**		**2450.00**

आज

खरीफ						रबी				
वर्तमान में उपयोग 4 एकड़										
क्रमांक	फसल	बीज की मात्रा	उपज मात्रा	मूल्य	आय	फसल	बीज की मात्रा	उपज मात्रा	मूल्य	आय
1.	धान	180 किग्रा०	20 कुन्तल	1200.00 प्रति कु0	24000.00	गेहूँ	70 किग्रा०	10 कुन्तल	1000.00 प्रति कु0	10000.00
2.	तिल	15 किग्रा०	2 कुन्तल	1500.00 प्रति कु0	3000.00	जौ	20 किग्रा०	3 कुन्तल	600.00 प्रति कु0	1800.00
3.	अरहर	10 किग्रा०	2 कुन्तल	2000.00 प्रति कु0	4000.00	चना	18 किग्रा०	2 कुन्तल	1800.00 प्रति कु0	3600.00
4.	मक्का	8 किग्रा०	2 कुन्तल	800.00 प्रति कु0	1600.00	मटर	2 किग्रा०	40 किग्रा	1500.00 प्रति कु0	500.00
5.	–	–	–	–	–	सरसों	2 किग्रा०	30 किग्रा	1800.00 प्रति कु0	540.00
योग		**2.13 कु०**	**26 कु०**		**32600.00**		**1.12 कुन्तल**	**15.70 कु०**		**16540.00**

इस प्रक्रिया ने एक तरफ तो लोगों की निर्भरता वर्षा के पानी पर कम की, दूसरी तरफ कई फसलों का उत्पादन भी होने लगा, जिससे उनकी आर्थिक व सामाजिक स्थिति में बढ़ोत्तरी हुई।

1. 10 वर्ष पहले रबी की फसल नहीं ले पाते थे।

जल स्तर को ऊँचा करने का स्वयं का प्रयास

बगल में नदी होते हुए भी गर्मियों में सूखा की स्थिति झेलने वाले जनपद सोनभद्र के गाँव बीडर के लोगों ने स्वयं के प्रयास से कुएं, तालाबों की खुदाई की और जल स्तर बढ़ाने का स्वप्रयास किया।

संदर्भ

पहाड़ों से घिरी गहरी बावनझरिया नदी के समीप अवस्थित ग्राम सभा बीडर जनपद सोनभद्र के विकास खण्ड दुद्धी का एक गांव है। इस गांव की बिडम्बना यह है कि 200—300 मीटर की ढलान के बाद 15 मीटर गहरी नदी (जिसमें वर्ष भर पानी रहता है) बगल में होने के बावजूद गांव सूखा की परिस्थितियों को झेलता है।

जनपद सोनभद्र की आजीविका का मुख्य साधन खेती, खेती आधारित मजदूरी है। यहां पर वर्षा आधारित खेती होने के कारण वर्षा न होने की स्थिति में लोगों के खेत सूखे रहते हैं। नतीजतन लोगों की आजीविका एवं उसके साथ—साथ उनका जीवन—यापन बहुत मुश्किल हो जाता है। इस गांव ने 1966—67 का सूखा भी देखा, जब उससे निपटने के लिए सरकार ने राहत के तौर पर गेंहू का दरिया बंटवाया था। लोगों के सामने मुश्किलें तो हैं, पर उन्होंने उससे निपटने हेतु रास्ते भी तलाशे और गांव स्थित कुंओं, तालाबों की गहराई बढ़ाकर भूगर्भीय जलस्तर बढ़ाने की दिशा में विकल्प तलाशे और उसी दिशा में प्रयास भी किया। परम्परानुसार प्रत्येक खेत में कुंआ होता था, जिसमें वर्षा का जल संचित होता था और उसी कुएं से लोग सिंचाई एवं अन्य उपयोग करते थे। कालान्तर में वर्षा कम होने के कारण कुंए में संचित जल भी घटने लगा और लोगों को दिक्कत हुई, तो लोगों ने कुंए की गहराई बढ़ाकर जलस्तर बढ़ाने का प्रयास किया। इस तरह का प्रयास व्यक्तिगत था, फिर भी गांव के अधिकाधिक लोगों ने अपनाया। ग्राम सभा बीडर के 50 वर्षीय श्री कृष्ण सहाय पटेल पुत्र श्री गोरख पटेल द्वारा किये गये प्रयास कुछ इस प्रकार थे।

कूप निर्माण की प्रक्रिया

पारिवारिक विवरण

कक्षा 10 वीं पास श्री कृष्णसहाय पटेल के परिवार में कुल 15 सदस्य हैं, जिनके भरण—पोषण हेतु इनके पास 2 एकड़ खेत व कच्चा कुंआं मौजूद है। ये अपने खेतों की सिंचाई का काम कुछ तो वर्षा आधारित और कुछ उसी कुंए से करते थे। 6. 25 मीटर गहरे एवं 3 मीटर चौड़े कुंए से ये पानी पीने, जानवरों को पिलाने आदि का काम भी करते थे।

कूप गहरीकरण का विचार

वर्ष 1966—67 में पड़े सूखे ने इनके सामने पानी का यक्ष प्रश्न खड़ा कर दिया, जब इनके कुंए का जलस्तर अत्यन्त नीचे चला गया। बाद में स्थिति थोड़ी सुधरी, जब वर्षा हुई। फिर धीरे—धीरे कम होती बरसात ने संकट कम करने के बजाय और बढ़ाया ही। खेती आधारित आजीविका संकट में पड़ते देख वर्ष 1984 में श्री पटेल ने कुंआ को और गहरा करने का विचार किया।

कुंए की गहराई बढ़ाकर सिंचाई

(तब मजदूरी रू0 20.00 थी।) तत्पश्चात् परिवार के 6 लोग मिलकर 80 दिनों तक कूप खुदाई के कार्य में लगे रहे और कुंए की गहराई नदी के स्तर के सापेक्ष 15 मीटर की गयी। तब कुंए में जल का स्तर 0.5 मीटर हुआ। श्री पटेल की सोच थी कि पानी का स्राव मूसला निकल जायेगा, तो पानी का स्तर ऊपर उठ जायेगा, जिससे पम्पसेट से आसानी से सिंचाई की जा सकेगी, किन्तु ऐसा हो नहीं सका। गांव में बिजली भी नहीं थी कि उसी के आधार पर सिंचाई थोड़ी सस्ती हो सके। ऐसे समय में ही इन्हें पता चला कि जी0पी0टी0डब्ल्यू0 योजना के तहत् किसानों को कम रेट पर बिजली दी जा रही है। इस मौके का इन्होंने लाभ उठाया और पहल करते हुए स्वयं का पैसा तथा कुछ चन्दा लगाकर एक ट्रांसफार्मर लगवाया। पुनः दो मोटर खरीद कर एक को कुंए के बीच 7.5 मीटर की दूरी पर एंगल, लकड़ी के गुटखे आदि की सहायता से फिट कर दिया और दूसरे को कुंए के ऊपर लगाया। तब खेतों की सिंचाई करना प्रारम्भ किया।

सिंचाई तो हो रही थी, परन्तु दिक्कत यह थी कि एक बार में 15 से 20 मिनट तक ही सिंचाई हो पाती थी, आधे घण्टे बाद मोटर पानी खींचना ही बन्द कर देता था। अगले एक वर्ष तक इन्होंने इसी व्यवस्था से खेती की। साग—सब्जी का उत्पादन कम मात्रा में ही कर पाये। इनके इस प्रयास का आकलन मात्रात्मक तौर पर निम्नवत् किया जा सकता है —

खुदाई में लगने वाला दिन	लगने वाला श्रम	तत्कालीन मजदूरी दर(रु० में)	लागत मूल्य	कुल लागत (रु०)	खुदाई के बाद कूप का आकार	लाभ
80	6 व्यक्ति	रु० 20.00	रु० 20 x6x80	रु० 9,600.00	चौड़ाई 3 मीटर गहराई 15 मीटर जल स्तर 11 मीटर	एक वर्ष तक 2 एकड़ खेत की सिंचाई, साग—सब्जी का उत्पादन हुआ। पेयजल व पशुओं के लिए पानी की उपलब्धता हुई।
ट्रांसफार्मर				रु० 49,000.00		
मोटर 2				रु० 15,000.00		
योग				रु० 73,600.00		

गहरीकरण का पुर्नप्रयास

लागत के सापेक्ष लाभ न मिलता देखकर इन्होंने पुनः समस्या के समाधान पर विचार किया और तब सोचा कि यदि बावनझरिया नदी को बांध दिया जाये तो उसका जल ठहरा रहेगा और तब शायद कुंए का जलस्तर ऊपर हो सके।

बावनझरिया नदी पर बंधी निर्माण

वर्ष 1998—99 में बावनझरिया नदी को बांधने का प्रस्ताव डाला गया, जो वर्ष 2001 में पारित होकर आने के बाद बंधी बनाने का काम हुआ, परन्तु प्रशासनिक बाध्यता के चलते आधा—अधूरा काम ही हो पाया। तमाम कोशिशों के बाद जब सरकार की तरफ से कोई पहल नहीं हुई, तब इन्होंने स्वयं के प्रयास से बंधी बांधने का काम शुरू किया। इस बन्धी निर्माण में कुल 40 मजदूरों ने 78 दिनों तक काम किया, जिसमें 10 दिन का कार्य श्रमदान के रूप में किया गया। इस प्रकार तैयार बंधी से 90 परिवारों के 100 एकड़ खेती की सिंचाई भली—भांति होने लगी है।

बंधी निर्माण में लगा दिन	लगने वाला श्रम	तत्कालीन मजदूरी दर(रु० में)	लागत मूल्य	कुल लागत (रु०)	बंधी का आकार
78 (10 दिन श्रमदान के बाद कुल दिन 68)	40 व्यक्ति	20/–	रु० 20 x40x68	रु० 54,400.00	लम्बाई : 40 मीटर गहराई : 6 मीटर ऊँचाई : 9 मीटर बंधी के ऊपरी सतह की चौड़ाई : 4.5 मी० बंधी के निचली सतह की चौड़ाई : 12 मी० जल स्तर गहराई : 6 मीटर जल स्तर लम्बाई = 1–2 किमी० पानी के सतह की चौड़ाई 12 मीटर
योग				रु० 54,400.00	

इसी कड़ी में बावनझरिया नदी पर सरकारी तौर पर बन रही अधूरी बन्धी को लोगों ने खुद के प्रयास से बांधा और उससे लाभान्वित हुए।

प्राप्त उपज एवं आय का विवरण [2]

क्रमांक	क्षेत्रफल	फसल का नाम	बीज की मात्रा	उत्पादन मात्रा	बाजार मूल्य	आय (रु० में)
1.	150 बीघा	गेहँ	3,000 किग्रा०	90,000 कुन्तल	1000.00 प्रति कुन्तल	90,00,000.00
2.	80 बीघा	चना	640 किग्रा०	2,000 कुन्तल	1800.00 प्रति कुन्तल	36,00,000.00
3.	40 बीघा	मटर	200 किग्रा०	1,000 किग्रा०	1400.00 प्रति कुन्तल	14,00,000.00
4.	15 बीघा	सरसों	45 किग्रा०	450 किग्रा०	1600.00 प्रति कुन्तल	7,200.00
			योग			**1,40,07,200.00**

बन्धी निर्माण से 90 परिवारों के समक्ष खेती में सिंचाई सम्बन्धी समस्या दूर हुई और लोगों ने इसमें रबी की खेती कर अच्छा लाभ कमाया।

सफल अनुभव

किसान का स्वयं का अनुभव

तमाम मेहनत मशक्कत के बाद बंधी निर्माण के बाद अब जाकर इनके कुंए का जलस्तर 1.25 मीटर हुआ। इसके बाद इन्होंने अपने खेत की सिंचाई करना प्रारम कर दिया। अब इनके कुएं में पम्पिंग सेट लगाने पर चाहे जितनी देर चले, पानी हमेशा और एक समान आता रहता है।

श्री पटेल ने स्वयं का कूप निर्माण करने के साथ ही सामुदायिक समस्या एवं उसके निदान पर विचार किया और अगुवाई कर बंधी का निर्माण कराया, जिससे स्वयं इनका लाभ तो है ही, समाज के 90 परिवारों की भूमि सिंचित हो जाने के कारण उनके सामने भी खेती पर गहराया संकट समाप्त हुआ है। सूखा से निपटने के लिए इन्होंने मेहनत–मशक्कत व धैर्य के साथ काम किया और आज अपनी भूमि को सिंचित करते हुए जौ, मटर, साग, सब्जी की खेती कर अच्छी आय प्राप्त कर रहे हैं। जिससे अपनी पारिवारिक आर्थिक स्थिति मजबूत करने के साथ–साथ सामाजिक प्रतिष्ठा भी बढ़ाए हुए हैं।

1. उपरोक्त फसल विवरण एवं आय 90 व्यक्तियों के 100 एकड़ क्षेत्रफल का है।

सामूहिक प्रयास से बंधी निर्माण

समाज की मुख्य धारा से कटे आदिवासी भुईया जाति के 55 परिवारों ने स्वयं के प्रयास से बसनीया नाला पर बंधी निर्माण किया और अपनी सिंचाई की समस्या हल की।

संदर्भ

ऊंचे पहाड़ व उबड़–खाबड़ जमीन पर खेती करने वालों के लिए सबसे बड़ी समस्या सिंचाई की होती है। यहां पर रहने वालों के लिए जितना मुश्किल पानी संग्रह करना होता है, उससे अधिक मुश्किल पानी का उपयोग करना होता है। कुछ ऐसी ही स्थिति सोनभद्र जिले के दुद्धी विकासखण्ड अन्तर्गत कलिंजर ग्राम सभा की है। बसनीया नाला के दोनों तरफ उबड़–खाबड़ जमीनों पर स्थित ग्राम सभा कलिंजर में 55 आदिवासी परिवार भुईंया जाति के रहते हैं। ये भूमिहीन आदिवासी परिवार पूर्वजों से ही धारा–20 के अन्तर्गत पट्टा की भूमि पर रहते हैं, खेती करते हैं। बिडम्बना ही है कि बरसों बीत जाने के बाद भी जमीनों का हक इनको नहीं मिल पाया है। कुछ तो इनकी अज्ञानता और कुछ सरकारी उपेक्षा ने इन्हें भूमिहीनों की कतार में खड़ा किया है। बसनीया नाला भी गांव वालों के कब्जे में है। गहरी एवं संकरी प्रवृत्ति वाले बसनीया नाला में पानी रोकने हेतु पतला व कमजोर मेड़ था, जो पानी के बहाव को सह नहीं पाता था और टूट जाता था। परिणामतः खेती व जानवरों हेतु पानी का कोई भी उपयोग नहीं हो पाता था। पानी का एक स्रोत होते हुए भी इन्हें दिक्कतें झेलनी पड़ती थीं। इसे ही देखते हुए लोगों ने बसनीया नाले पर सामूहिक रूप से श्रमदान कर बंधी निर्माण करने पर विचार किया और फिर इसे कार्यरूप में बदला।

प्रक्रिया

नाले की पृष्ठभूमि

वर्ष 1946 में पट्टा होने के दौरान बसनीया नाला गांव के बुद्धू व बिरजू पुत्र दशरथ के नाम पर हुआ। किन्तु वे इसका कोई लाभ नहीं ले सके, क्योंकि इसकी मेड़ बहुत पतली तथा कमजोर होने के कारण पानी ऊपर से अथवा तोड़कर निकल जाता था। इनके मन में बहुत बार यह आता था कि यदि इस नाले पर बंधी बना दिया जाये तो बड़ी मात्रा में पानी संग्रह किया जा सकता है और फिर खेती तथा मवेशियों के लिए सिंचाई व पीने हेतु इसका उपयोग कर अच्छा लाभ लिया जा सकता है। वर्ष 1995–96 के दशक में जब सूखा को प्रकोप अधिक था, लोग अपने परिवार एवं पशुओं को लेकर अन्यत्र पलायन करने लगे, तब इनकी इस सोच को और बल मिला और इन दोनों भाइयों ने अपने इस विचार को गांव वालों से बांटा भी। पर हर बार की तरह इस बार भी अर्थ समस्या आड़े आई।

बंधी बनाने की शुरूआत

पंचायती राज कानून में 73 वां संशोधन होने के साथ ही इन आदिवासियों को वर्ष 2001 में पंचायत चुनाव से जोड़ा गया। इन लोगों ने अपने गांव सभा कालिंजर से श्री राजाराम पुत्र श्री भरथी को ग्राम पंचायत प्रतिनिधि के तौर पर खड़ा किया और ये चुनाव जीत भी गये। चुनाव जीतने के बाद वर्ष 2001 में ही ग्राम पंचायत प्रतिनिधि के खाते में सूखा राहत नाम की निधि आवंटित हुई। इस निधि में 10 मेड़बन्दी हेतु धन था। श्री राजाराम ने पंचायत प्रतिनिधि के तौर पर खुली बैठक कर बसनीया नाला पर बंधी निर्माण का प्रस्ताव रखा, जिसे पूरे गांव द्वारा सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया। पुनः इस पर बंधी निर्माण का कार्य शुरू किया गया।

बंधी बनाने में आयी कठिनाईयाँ

निर्माण कार्य को प्रारम्भ हुए अभी मात्र 4 ही दिन हुआ था कि वन विभाग द्वारा इस कार्य को रोक दिया गया। इनके ऊपर केस कर दिया गया। नतीजतन 6 लोग परमेश्वर पुत्र बुद्धू, राजाराम पुत्र भरथी, शिवप्रसाद पुत्र भरथी, रामलक्षन पुत्र लोचन, कर्मू पुत्र जगदेव, अशर्फी पुत्र मंगरू को जेल जाना पड़ा, परन्तु सूखे की इस घटना से

हालांकि इस काम में कठिनाईया भी बहुत आई, लोगों को जेल भी जाना पड़ा, परन्तु जब उसके बाद लोगों की रबी व जायद की फसलें उपजने लगीं, तो उन्हें झेली गई मुश्किलों का गम नहीं रहा।

विभीषिका को झेलते इन आदिवासियों का मनोबल कम होने के बजाय और बढ़ा ही। इन लोगों ने रणनीति बनाई कि–दिन में वन विभाग का डर रहता है, तो हम लोग रात्रि में काम करेगें और इस प्रकार इन्होंने रात का समय देकर बंधी को पूरा कराया।

तैयार बंधी का आकार

बसनीया नाले की दूरी – 5 किमी0 (जाम पानी से निकल कर बोम होते हुए कलिंजर के बीचों–बीच से गुजरती हुई कनहर नदी में जाकर मिलती है।)

बसनीया नाले की चौड़ाई : 40 मीटर
बसनीया नाले की गहराई : 30 मीटर
बंधी की लम्बाई : 100 मीटर
बंधी की चौड़ाई : 15 मीटर
बंधी की गहराई : 60 मीटर
नाला से बंधी के बीच की लम्बवत् ऊंचाई : 80मी0
स्थाई पानी रूकने का स्तर : 9 मीटर
स्थाई जल स्तर की चौड़ाई : 50 मीटर
स्थाई जल स्तर की लम्बाई : 200 मीटर की दूरी तक
(बसनीया नाला U के आकार का नाला है। जहां बंधी का निर्माण हुआ है, उसके दोनों तरफ कराररनुमा है। बंधी की 20 मीटर ऊंचाई के बाद ही लोग बसे हुए हैं।)

बंधी बनाने में लगने वाला समय

कुल 3 माह में बसनीया नाले पर बंधी तैयार हुई।

लाभ

- बंधी निर्माण हो जाने के बाद से 25 एकड़ भूमि की सिंचाई स्वयं अपना–अपना पम्प लगाकर इन आदिवासी परिवारों द्वारा किया जाता है। सबसे बड़ा लाभ तो यह है कि जहां पहले लोग रबी की फसल से एकदम महरूम थे, अब वे रबी सीजन में फसल की बुवाई, सिंचाई कर अच्छा उत्पादन लेते हैं।
- मई जून के महीनों में भी पानी की कोई दिक्कत नहीं होती। पशुओं के पीने हेतु पानी की पर्याप्त उपलब्धता रहती है।
- जायद सीजन में सब्जियों की खेती कर लेते हैं, जिससे इनकी आय में वृद्धि हुई है।
- अधिकांशतः परिवार अपने उपयोग हेतु सब्जी की खेती, जिसमें आलू, टमाटर, मिर्च आदि का उत्पादन कर ले रहे हैं।

लागत लाभ विश्लेषण

बंधी निर्माण में लगे श्रम का मूल्यांकन तो नहीं किया जा सकता। यह कहा जा सकता है कि पूरे खर्च का आंकलन करते हुए निर्माण कार्य में लगी कुल धनराशि का 35 प्रतिशत भाग पंचायत द्वारा वहन किया गया, जबकि शेष 55 प्रतिशत आदिवासी परिवारों के श्रम का मूल्य है। पर रबी सीजन में होने वाला उत्पाद जो कि पूर्णतः बंधी निर्माण के कारण है, उसके मूल्य का आंकलन कर बदलती स्थिति का अन्दाजा लगाया जा सकता है।

रबी फसल विवरण

बीज का नाम	मात्रा	क्षेत्रफल	उत्पादित मात्रा	दर (रु० में)	मूल्य
गेहूँ	6 कुन्तल	18 एकड़	48 कुन्तल	1000.00	48000.00
जौ	3 कुन्तल	9 एकड़	7.5 कुन्तल	600.00	4500.00
मटर	40 किग्रा०	6 एकड़	20 किग्रा०	1600.00	32000.00
चना	1.44 कुन्तल	9 एकड़	18 कुन्तल	1800.00	32400.00
सरसों	15 किग्रा	3.60 एकड़	3 कुन्तल	1800.00	5400.00
योग	**10.99 कु०**	**45.6 एकड़**	**96.5 कु०**		**92,300.00**

सामुदायिक तालाब पुनः निर्माण एवं नाला सफाई हेतु जन प्रयास

सूखा की परिस्थितियाँ उत्पन्न करने में प्रकृति ने तो भूमिका निभाई ही, मनुष्यों ने जल संसाधनों पर अवैध कब्जा करके रही सही कसर पूरी की। इससे प्रभावित लघु सीमान्त किसानों ने स्वयं के स्तर पर पहल व प्रयास करते हुए नालों तालाबों की सफाई व गहरीकरण किया।

संदर्भ

बुन्देलखण्ड क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले सभी जनपदों की संस्कृति में नदी–नाले, पहाड़, जंगल, उबड़–खाबड़, पथरीली एवं ऊंची–नीची जमीन देखने को मिलती है। यहां पर बसे सभी गांवों मे 3–4 तालाबों का होना कोई आश्चर्य का विषय नहीं है। इन्हीं से लोगों की रोजी–रोटी चलती थी। विगत 15–20 वर्षों से यहां पर लगातार पेड़ों की कटाई, बालू खनन, पत्थर खनन एवं भूगर्भ जल संतुलन के अंधाधुन्ध उपयोग एवं तालाबों व छोटे–छोटे नालों के भर जाने की वजह से प्राकृतिक संतुलन बिगड़ना शुरू हुआ, जिससे सूखा एवं बाढ़ जैसी आपदाएं इस क्षेत्र में बढ़ने लगी।

विगत कुछ वर्षों में गांव के तालाबों पर कब्जा हो गया है। जो तालाब बचे हैं, उनकी खुदाई न होने की वजह से धीमे–धीमे अपने अस्तित्व को खोते जा रहे हैं और जो खेतों के पास नाले इत्यादि थे, उनको भी खत्म कर दिया गया, जिससे जानवरों के पीने का पानी भी मिलना मुश्किल हो गया। यहां के लोगों की मुख्य आजीविका कृषि, कृषि मजदूरी व पशुपालन है। ध्यातव्य है कि विगत 5–6 वर्षों से इस क्षेत्र में लगातार पड़ रहे सूखे की वजह से खेती किसानी का कार्य बहुत बड़े पैमाने पर प्रभावित हुआ है। जिसका सबसे अधिक प्रभाव लघु, सीमान्त किसानों, खेतिहर मजदूरों, नाजुक समुदाय के लोगों पर पड़ा है। पशुधन का भी बहुत नुकसान हुआ, क्योंकि सूखा पड़ने से लोग खेती में कोई उपज नहीं ले पा रहे व मजदूरी भी नहीं मिल रही है। ऐसे में पशुओं के चारा, दाना, पानी का इंतजाम कहां से किया जाय। इसलिए लोगों ने अपने सैकड़ों की संख्या में जानवरों को खुला छोड़ दिया और अपने भरण–पोषण के लिए पलायन कर ईंट–भट्ठा, क्रेशर एवं फैक्टरियों में मजदूरी करने चले गये। ऐसे समय में ग्राम पंचायत बड़ा, विकास खण्ड गोहाण्ड, जनपद – हमीरपुर में रह रहे लोगों ने मिलकर इस समस्या पर विचार किया और गांव से बाहर निकले नाले के पास एक तालाब बनाने व नाले की सफाई करने का निर्णय लिया।

प्रक्रिया

रणनीति नियोजन

- सूखा होने की स्थिति में उससे प्रभावित लोगों की पहचान कर उनको संगठित करना।
- समस्याओं एवं समाधान के प्रति लोगों को जागरूक करना।
- लोगों के पारम्परिक, व्यवहारिक ज्ञान का सम्मान करना व उनको तकनीकी जानकारी प्रदान करना, जिससे लोग आपसी सहयोग से समस्याओं का समाधान कर सकें।

क्रियान्वयन

- जन शक्ति मंच के द्वारा ग्राम पंचायत बड़ा में वर्ष 2006 में लोगों की बैठक का आयोजन किया गया।
- बैठक में पिछले 5–6 वर्षों से पड़ रहे सूखा तथा उससे उत्पन्न समस्याओं पर चर्चा के दौरान निकला कि लगातार पड़ रहे सूखे की वजह से खेती में कुछ न होने के कारण रोजी–रोटी का संकट बढ़ गया है। परिणामतः लोग पलायन करके बाहर जा रहे हैं और अपने जानवरों को भी खुला छोड़ रहे हैं। जो जानवर खुले छूटे हैं, उनको बाहर भी कहीं किसी तालाब या नाले में पानी न होने की वजह से प्यासे रहना पड़ता है, जिससे जानवर मर रहे हैं। ऐसे में क्या उपाय किये जायें, जिससे लोगों के ऊपर सूखा पड़ने के कारण होने वाले नुकसान को कम किया जाये।
- चर्चा में निकलकर आया कि अगर सब लोग मिलकर तालाब का निर्माण कर लें तो जानवरों को पानी मिल सकेगा।

इस पूरी प्रक्रिया से सबसे बड़ा लाभ बेजुबान जानवरों को हुआ, क्योंकि पानी की किल्लत से जूझते हुए लोग तो पलायन कर जाते थे, पर ये पशु कहाँ जाते।

- समस्या के समाधान के लिए किसान श्री प्रभुदयालन ने बताया कि अपने क्षेत्र में एक नाला है, जिसमें बरसात के समय काफी पानी आता है। अगर इसको रोककर वहीं तालाब बनाकर पानी इकट्ठा किया जाये, तो गर्मियों में जानवरों के पीने के लिए पानी मिल सकता है।
- जून, 2007 को पंचायत की बैठक की गयी, जिसमें तय हुआ कि अपने खेतों से जो नाला निकला हुआ है, उसके पास की पंचायत की जमीन पर तालाब बना दिया जाये तो जानवरों के पीने का पानी मिल सकता है। पर मुश्किल यह है कि पंचायत के पास कोई निधि न होने की वजह से तालाब निर्माण पर पंचायत कोई खर्च नहीं कर सकती। तब जनशक्ति मंच के सहसंयोजक श्री प्रभुदयाल राजपूत की अगुवाई में सभी सदस्यों ने सामुदायिक सहयोग से नाले की सफाई एवं तालाब खुदाई का कार्य करने की योजना तैयार की और सर्व सहमति से सामुदायिक निर्णय करके तालाब निर्माण एवं चेकडैम का काम शुरू किया गया, जिसमें प्रत्येक परिवार ने 100 फीट (31 मीटर) खोदने का कार्य करने का निर्णय लिया।

नाला सफाई

वर्तमान में ग्राम बड़ा के मौजा से निकलने वाले नाले को बुजुर्गों के अनुभव के आधार पर खेती की जमीन से ढालूदार बना दिया गया है, जिससे पानी भी रुका और मिट्टी का कटाव भी नहीं हो रहा है। इसके अलावा नाले के आस–पास घास को भी लगा दिया, ताकि कटाव न बढ़े।

तालाब निर्माण

पंचायत की भूमि पर तालाब निर्माण का कार्य इस आशय से शुरू किया गया कि बरसात का पानी तालाब में जमा होगा ताकि बरसात के बाद पशुओं को पीने का पानी मिलता रहे। 150 लोगों के श्रमदान से 15 दिनों में 150x100x5 फीट (46 मी0 लम्बा, 31मी0 चौड़ा, 1.5 मी0 गहराई) नाप का तालाब खुदकर तैयार हो गया। जिसमें आगामी बरसात में पानी भी संग्रह हुआ।

रख-रखाव

इस तालाब एवं नाले की देख–रेख एवं रख–रखाव की जिम्मेदारी जनशक्ति मंच की है। जिसमें ग्राम सभा के हर वर्ग से एक व्यक्ति है, जो इसकी देखरेख एवं मरम्मत का कार्य करता–करवाता है। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें पूरे समुदाय ने सहयोग किया है इसलिये इस तालाब की देख–रेख सभी लोग मिलकर करते हैं और जिन लोगों की जमीन आस–पास है, वे लोग सिंचाई हेतु भी तालाब के पानी का उपयोग करते हैं और समिति द्वारा निर्धारित मूल्य चुकता करते हैं ताकि तालाब की मरम्मत का कार्य सुचारू रूप से हो सके।

नियम निर्धारण

समिति द्वारा सर्वसम्मति से तय किया गया है कि एक एकड़ खेत की सिंचाई हेतु रू0 300.00 उपभोगकर्ता द्वारा देय होगा।

तालाब निर्माण व नाला सफाई में आई लागत

46 मीटर लम्बे, 31 मीटर चौड़े एवं 15 मीटर गहरे तालाब तथा 450 मीटर लम्बा, 3 मीटर चौडे एवं 1.5 मीटर गहरे नाले की सफाई एवं इसी नाप के चेकडैम निर्माण में गांव के 10 परिवारों से 150 लोगों द्वारा 20 दिन मजदूरी की गई। इस प्रकार प्रति व्यक्ति 150 रूपये प्रतिदिन का योगदान करके सामुदायिक सहयोग/श्रमदान की लागत से खुदाई का कार्य किया गया। तालाब निर्माण पर 2 लाख रूपये तथा नाला सफाई एवं चेकडैम निर्माण पर 1.5 लाख का खर्च हुआ।

परिणाम

- अब ग्राम पंचायत बड़ा में जानवरों को पीने के पानी की दिक्कत नहीं है। आज इस नाले एवं तालाब से आस–पास के क्षेत्रों से लगभग 1000 पशु प्रतिदिन पानी पीते हैं।
- इस तालाब के आस–पास 4–5 लघु सीमान्त किसानों की 2.25 एकड़ जमीन है। उसकी भी सिंचाई हो जाती है।
- जमीन में पानी का जलस्तर बढ़ा है, जिससे कुछ फसल भी होने लगी है।
- जो किसान अपनी फसलों में पानी लगाते हैं, वो लोग मंच के पास पानी लेने का उचित एवं तय मूल्य जमा करते हैं, जिससे इस चेकडैम/तालाब की देख–रेख एवं नव निर्माण का कार्य सुचारू रूप से हो रहा है।

तालाबों, सरोवरों पर से कब्जा हटवाकर किया जल संकट का समाधान

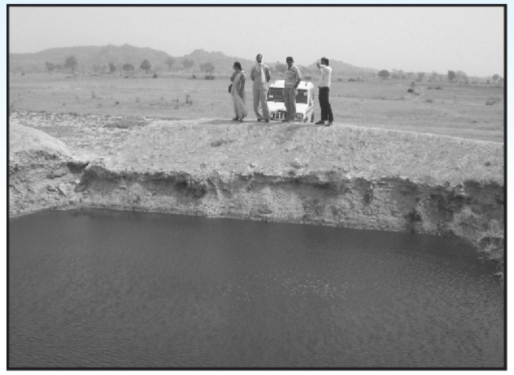

सूखे की समस्या तालाबों, बावड़ियों के पटते जाने से और विकराल हुई, पर मुख्य बात यह थी कि इसे रोकने के लिए पहल कौन करे, क्योंकि सबके हित कहीं न कहीं सध रहे थे। ऐसे में एक शिक्षा मित्र ने इसकी अगुवाई कर स्थानीय प्रशासन व सरकार से लड़ाई मोल लेकर नवीन पहल की।

संदर्भ

बुन्देलखण्ड अपनी भौगोलिक परिस्थितियों, विन्ध्य श्रृंखलाओं, वनों, उपवनों, नदियों के साथ तालाबों, सरोवरों, झरनों आदि प्राकृतिक संरचनाओं के लिए शुरू से ही प्रसिद्ध रही है। लेकिन बीते दो दशकों से इसकी सौम्यता, सुन्दरता धूमिल हो रही है। इसका प्रमुख कारण सूखे बुन्देलखण्ड का और अधिक सूखना है।

साल–दर–साल सूखा, उसके लिए सरकारी राहत, सूखे से बचाव की सरकारी परियोजनाएं व धरती में गहरे बोरों की श्रृंखला भी यहां के जल संकट को कम करने में सक्षम नहीं हुई। सूखा से निपटने के लिए अरबों की राशियां आईं, परन्तु नतीजा सिफर रहा। इसकी वजह सिर्फ यह है कि क्षेत्र की जलवायु और भौगोलिक परिस्थितियों से मेल खाती परम्परा में मौजूद जल संरक्षण एवं कृषि पद्धतियों को बढ़ावा देना तो दूर जीवनदायी बहुसंख्य तालाबों, कुओं, बावड़ियों, उनके सहायक पूरक मेड़ों, बंधियों, पेड़ों, वनों, पहाड़ों का भरपूर विनाश, भूमि परिवर्तन और कब्जा हुआ है। कुछ तो समय के साथ अपना अस्तित्व खो दिये और कुछ को शहर में रहने वाले लोगों ने कूड़ादान और गन्दे नाले में तब्दील कर दिया। क्योंकि उनके पास पानी के कृत्रिम साधन मौजूद हो गये थे। किन्तु अब जब कृत्रिम जल स्रोत श्रृंखलाबद्ध ढंग से सूखने लगे, तो याद आने लगी पुरानी बावड़ियां, पुराने तालाब, कुएं जिनके पुनरूत्थान, गहरीकरण व सुन्दरीकरण के लिए भी अनेक योजनाएं बनीं, पर हासिल कुछ नहीं हुआ। क्योंकि उन पर कब्जा, पानी के आवागमन के रास्तों का भारी बदलाव एवं गन्दगी पाटने हेतु कूड़ेदान के तौर पर इनका प्रयोग निरन्तर हो रहा था। (और यह सब सरकारी, राजनैतिक एजेण्डे में कहीं दूर तक भी नहीं शामिल है।) पर इसके लिए पहल कौन करे, कौन इस काम की अगुवाई करे, क्योंकि मामला बड़े व पहुंच वाले लोगों का था।

ऐसे में जनपद बांदा के ग्राम पल्हरी के शिक्षामित्र श्री ओमप्रकाश ने इस लड़ाई को अकेले ही लड़ने की ठानी और निकल पड़े– तालाबों के मिटते अस्तित्व के साथ खत्म हो रही ग्रामीण परिवारों एवं संस्कृति को बचाने की मुहिम पर।

प्रक्रिया

पेशे से शिक्षक ओमप्रकाश ने साल–दर–साल कम होती वर्षा, बढ़ता सूखा और गहराते भूगर्भ जल संकट के साथ ही वर्षा जल संरक्षित न हो पाने की कठिनाई को महसूस किया और दिनांक 11.7.2006 को तहसील दिवस के अवसर पर तहसील प्रांगण बबेरू में पहुंच कर अपने गांव के तालाबों पर से कब्जा हटवाने, उन्हें खाली कराकर गहरा कराने की बात करते हुए एक आवेदन दिया, पर सुनवाई महीनों तक नहीं हुई। फिर दूसरा आवेदन पत्रांक 225/34–1–2006 दिनांक 15.7.2006 को मुख्यमंत्री उ0प्र0 को भेजा, जिसकी प्रतिलिपि जिलाधिकारी, बांदा को सौंपी। इस आवेदन पर भी कोई सुनवाई नहीं हुई, तो इन्होंने न्यायालय का सहारा लिया और जुलाई 2007 को न्यायालय में एक जनहित याचिका दायर कर रिट संख्या RKK/57696/07 दिनांक 23.11.2007 के माध्यम से जिलाधिकारी को नोटिस दी, जिसमें माननीय सुप्रीम कोर्ट द्वारा जारी आदेश का हवाला देते हुए तालाबों को कब्ज़ा मुक्त कराने का आदेश दिया। तत्कालीन जिलाधिकारी, बांदा द्वारा इस आदेश को भी अमान्य कर दिया गया, तो कोर्ट के आदेश की अवमानना पर कार्यवाही सम्बन्धी नोटिस जिला प्रशासन को दी गयी। इस नोटिस ने जिला प्रशासन के कान खड़े किये। आनन–फानन जे0सी0बी0 मशीनों के साथ नगर पालिका के कामगारों, पुलिस बल आदि को साथ लेकर कई दर्जन मकानों को ढहाकर एक शुरूआत की गयी। ऐसा नहीं है कि जिनका तालाबों पर कब्ज़ा

इस काम में उन्हें जान–माल की धमकी मिली, उनके अपने परिवार ने साथ छोड़ दिया पर पानी बचाने की मुहिम में चले इसे एकले नायक का साथ अखबारों, स्वैच्छिक संगठनों एवं टी०वी० चैनलों आदि ने दिया। नतीजतन सुदूर स्थित ग्रामीणों ने इससे प्रेरणा लेकर काम किया।

था, उनसे ओमप्रकाश का कोई बैर था, पर सामुदायिक विकास एवं जल स्रोतों के संरक्षण की प्रक्रिया में इन्होंने यह कदम उठाया। इसके लिए इन्हें धमकियां मिलीं, कई काबिजदार, जो इनके पट्टीदार भी थे, उनसे खान–पान भी खत्म हुआ, जिला प्रशासन ने भी इन्हें धमकाया, पर ये अपने संकल्प पर कायम रहे।

प्रसार

इस पूरी प्रक्रिया ने पड़ोसी गांव भदेहदू के तालाबों को कब्जा मुक्त कराने का काम भी आसान कर दिया। अब पूरे जनपद के कब्ज़ेदारों सहित ग्रामवार सूचनाएं ओमप्रकाश से मांगी गयी हैं, जिसे पाने और कोर्ट–कचहरी का खर्च शिक्षा मित्र को मिलने वाले मानदेय के सहारे है। ओमप्रकाश किसानी भी करते हैं और परिवार का भरण–पोषण खेती से करते हैं। इस कष्टसाध्य एवं जीवन के मूल्य पर किये जाने वाले कार्य में खुलकर साथ आने वालों की संख्या नगण्य है, पर अन्तः समर्थन बहुतों का है।

इस प्रयास को देख–सुनकर सामाजिक, स्वैच्छिक जन संगठनों ने साथ दिया। अखबारों, राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओ ने इसे स्थान दिया, टी0वी0 चैनलों ने इसे आगे बढ़ाया और दूरस्थ ग्रामीणों ने इसे सम्बल प्रदान किया। अन्य गांवों के लोगों के लिए ओमप्रकाश एक सहारा हैं, जिनके मार्गदर्शन में लोग जल स्रोतों पर से कब्ज़ा हटवाने के लिए स्वयं जिला प्रशासन पर दबाव बना रहे हैं।

अभियान में आई लागत व लाभ

क्रमांक	गतिविधि	आने वाला खर्च
1.	याचिका दाखिल करने का खर्च	रु० 5,000.00
2.	अतिक्रमित तालाबों की सूचना एकत्रीकरण कार्य	रु० 3,000.00
3.	भदेहदू में अभियान की शुरूआत करते समय याचिका दाखिल करना	रु०12,000.00
4.	भाग–दौड़ करने में खर्च अनुमानित	रु०5,000.00
	योग	**रु०25,000.00**

(उपरोक्त खर्च में से मात्र 8,000.00 रूपये गांव वालों ने दिये हैं। शेष सभी पैसे ओमप्रकाश के स्वयं के खर्च हुए हैं।)

जबकि लाभ की गणना अभी सम्भव नहीं है क्योंकि इस पूरी प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप कब्जा मुक्त हुए तालाबों को अभी अपने पुराने स्वरूप में वापस आने में समय लगेगा।

परिणाम

ग्राम पल्हरी में तालाबों पर हुए कब्जों को हटाने, उन तक वर्षा की एक–एक बूंद को पहुंचाकर संरक्षित करने की ओमप्रकाश की ललक अब आमजन का संकल्प बनकर जिले में जहां–तहां उभर रही है। जिला प्रशासन ने तालाबों के गहरीकरण के साथ छिट–पुट आसान कब्जों को हटाया है, जिससे कुछ तालाबों में पानी भरा है। पल्हरी का एक तालाब तो खलिहान बन चुका था, जहां फसलों की मड़ाई का काम होता था, अब वह पुनः तालाब का रूप ले चुका है। आने वाली वर्षा की बूंदों से तालाब भरने और भूगर्भ जल संकट के न्यूनतम होने की उम्मीद परवान चढ़ी है साथ ही पशुपालकों एवं आम जरूरतों की पूर्ति का रास्ता भी आसान हुआ है।

नीतिगत बदलाव, जो आवश्यक हैं

- बुन्देलखण्ड में तालाबों को कब्जा मुक्त कराने और उन्हें 1962 की शक्ल में लाने वाले माननीय सर्वोच्च न्यायालय का आदेश लागू कराने के लिए प्रान्तीय सरकार और जिला प्रशासन को अपनी नीति में बदलाव लाना होगा।
- तालाबों के भीटों, पानी आवागमन के रास्तों, आगर क्षेत्रों में खड़ी बाधाओं में सिर्फ दबंग लोग ही नहीं वरन् सरकारी, गैर सरकारी भवनें, सड़कें भी शामिल हैं। अतः तत्सम्बन्धी उचित कार्यवाही करते हुए वर्षा जल को संरक्षित करने वाली नीति।
- जलाशयों को कूड़ा, कचरा, गन्दे नालों से मुक्त कराने वाली नीति और आमजन को इन सारी क्रियाओं में शामिल होने हेतु प्रोत्साहन नीति आवश्यक है।

श्रृंखलाबद्ध तालाब पुनर्जीवन से सूखे का मुकाबला

सूखे से लड़ने में असफल पुरुष तो बाहर चला जाता है परन्तु घर पर अकेली रह रही महिला को अनेक सामाजिक वंचनाओं एवं अपमानों का सामना करना पड़ता है। इसे संज्ञान में लेते हुए चरखारी में तालाबों को पुनर्जीवित किया गया।

संदर्भ

बुन्देलखण्ड की प्रचलित जल संरक्षण की परम्परागत विधियों में से मेड़, बन्धी, पोखर, तालाब हैं। यहां तालाबों की क्षमता के अनुसार उन्हें सागर की संज्ञा भी दी गयी है। यहां के तालाबों की अपनी संस्कृति एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि रही है। इसके साथ ही ये तालाब लाखों परिवारों के लिए आजीविका के स्रोत भी रहे हैं।

बुन्देलखण्ड बीते सात वर्षों से ऋतु असंतुलन व सूखा की चपेट में है। अनवरत अवर्षा, असमय वर्षा और स्थानीय पारम्परिक जल प्रबन्धन की अपनी विधियों के साथ न्याय न होने से ये सभी जलस्रोत एक–एक कर मृतप्राय हो रहे हैं, जिनके बलबूते पर इस क्षेत्र के बाशिन्दों ने बड़े से बड़े अकाल का सामना किया और अपनी जीवितता बनाये रखी है।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र के जनपद महोबा के रियासत रहे कस्बा चरखारी में कमोबेश डेढ़ दर्जन छोटे–बड़े तालाब हैं, इसमें से 7 तालाब तो ऐसे हैं, जो आपस में एक – दूसरे से जुड़े हुए हैं। 400 वर्षों के अनुभवों को समेटे ये तालाब वर्ष 2007 के सूखे में अपने अस्तित्व को बचाने की जद्दोजहद में सूखने लगे। जब छोटे–बड़े सभी जलस्रोत दम तोड़ने लगे, पशु–पक्षी, जंगली जानवर आदि सभी प्यास से मरने लगे, तब लोगों की चिन्ता बढ़ी और इस समस्या से निपटने हेतु लोगों ने इनको पुनर्जीवित करने की दिशा में प्रयास किया और पानी पुनरुत्थान पहल के साथ एक अनूठी शुरूआत हुई।

पानी पुनरुत्थान पहल की प्रक्रिया

वर्ष 2007 में अखबारों में प्रकाशित एक खबर, जिसके मुताबिक पानी के बदले महिला को अपनी इज्जत का सौदा करना पड़ा था, को पढ़कर कुछ उत्साही स्वयंसेवियों ने पानी एवं पानी के स्रोत बचाने की दिशा में कदम बढ़ाया। इनका नेतृत्व किया बांदा के किसान एवं सामाजिक कार्यकर्त्ता श्री पुष्पेन्द्र भाई ने। सर्वप्रथम इन्होंने तालाबों के बारे में विस्तृत ब्यौरा एकत्र कर नगरपालिका परिषद के अध्यक्ष श्री अरविन्द सिंह चौहान से मशविरा कर एक पत्र जन सामान्य के लिए जारी किया, जिसमें उक्त घटना का उल्लेख करते हुए तालाबों को पुनर्जीवन प्रदान करने का अनुरोध किया गया। इस पत्र ने सोई जनता को जगाने का कार्य किया और अप्रैल मई की भीषण चिलचिलाती धूप में हजारों–हजार लोगों ने जन सहभागिता से जय सागर तालाब के पुनर्जीवन हेतु श्रमदान अनुष्ठान में भाग लिया।

उल्लेखनीय है कि इस कार्य में सभी धर्मों, जातियों, समुदाय के बूढ़े, बच्चे, जवान, महिलाओं के साथ सरकारी, गैर सरकारी लोग शामिल हुए। यह वह समय था, जब सरकारी सहायता से मदन सागर की सिल्ट सफाई के लिए मजदूरों का टोंटा था और जयसागर तालाब चूंकि लोगों की भावना से जुड़ गया था, इस लिए यहां श्रमदानियों का तांता लगा हुआ था। जिससे प्रेरित होकर सरकारी अधिकारियों, मण्डलायुक्त, उ0प्र0 के श्रम मंत्री श्री बादशाह सिंह के साथ ही देश भर के स्वैच्छिक संस्थाओं से जुड़े लोगों ने इस महा अनुष्ठान में भाग लिया।

यह श्रमदान 46 दिन तक चला, जिसमें लगभग 20 हजार श्रमदानियों का योगदान रहा। वर्तमान समय में यह तालाब मत्स्य पालन एवं सिंघाड़ा उत्पादन का एक प्रमुख केन्द्र है।

पानी पुनरुत्थान पहल के प्रभाव

- उत्तर प्रदेश सरकार ने नगर के तालाबों को संवारने के लिए आर्थिक मदद तो नहीं की, पर खेत–तालाब की आनन–फानन घोषणा कर

अभियान चलाकर छोटे–छोटे तालाब बनवाये।

- श्रमदान अनुष्ठान में शामिल छतरपुर (म0प्र0) के अध्यक्ष सरदार श्री प्यारा सिंह ने संकल्प लिया और छतरपुर के कई तालाबों को गहरा कराकर उनके भरने के रास्ते खोले। महोबा, जैतपुर, हमीरपुर, बांदा, चित्रकूट आदि जनपदों में भी श्रमदान की श्रृंखला बढ़ी।
- तालाबों की सफाई के क्षेत्र में काम प्रारम्भ हुआ।
- तालाबों को बचाने के लिए सत्याग्रह प्रारम्भ हुआ।
- तालाबों पर से कब्जा हटाने के लिए पहल शुरू की गई।
- सबसे बड़ी बात तो यह हुई कि जन प्रतिनिधियों और सरकार को तालाबों की उपयोगिता समझ में आई।

20 दिन से अधिक चले इस श्रमदान में न सिर्फ स्थानीय वरन् देश स्तर के लोगों ने भी अपनी ऊपरी भागीदारी निभाई और इसे देखते हुए स्थानीय प्रशासन के आला अधिकारियों एवं स्वयं श्रम मंत्री, उ०प्र० ने उपस्थिति दर्ज कराकर अन्य जनपदों के समक्ष अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया।

तालाबों के पुनर्जीवन से लाभ

तालाबों के पुनर्जीवन से निम्न लाभ देखे गये –

- वर्षा जल संरक्षण
- तालाब इलाकाई जमीन में पेयजल की उपलब्धता
- निकटवर्ती खेतों में नमी
- पड़ोसी वातावरण में शीतलता
- पशु–पक्षी, जीव–जन्तु, जानवर और आमजन के लिए पानी की स्वतन्त्र पहुंच
- मत्स्य पालन
- सिंघाड़े की खेती
- सिंचाई
- नौका विहार, पर्यटकों के लिए आकर्षण का जरिया आदि

तालाबों का प्रबन्धन

चरखारी नगर के सात तालाबों का प्रबन्धन नगर पालिका द्वारा किया जाता है। नगर पालिका के पास आय का कोई अन्य स्रोत न होने के कारण इन तालाबों को अपनी आय अर्जन स्रोत के रूप में चिन्हित किया गया है। नगर पालिका द्वारा तीन तालाबों जय सागर, मलखान सागर, रपट सरोवर को एक में समन्वित कर मछली पालन हेतु मछुआरों को लीज पर दे दिया जाता है। यह लीज पांच वर्ष के लिए होती है और अमूमन 11लाख 23 हजार रूपये में लीज पर दिया जाता है। इसके लिए निविदा निकाली जाती है। चूंकि क्षेत्र भी बड़ा होता है और अदा की जाने वाली राशि भी बड़ी होती है। अतः मछुआरों का एक समूह मिलकर इसे लेता है। नगर पालिका को लीज की राशि किस्तों में अदा की जाती है, जिनके नाम पर ली जाती है, वे आपस में अलग–अलग फसलों जैसे सिंघाड़ा, कमलगट्टा, मुरार के लिए तय राशि देते हैं। पूरे काम में 100 से 120 परिवारों का साझा होता है, जो अलग–अलग मौसम में अपनी–अपनी फसलें बेचते हैं और अधिकाधिक आय अर्जित करते हैं।

तालाब के पानी बंटवारे का नियम

नगर पालिका अध्यक्ष श्री अरविन्द सिंह चौहान ने बताया कि तालाब के पानी का प्रयोग सिर्फ मत्स्य पालन, कमलगट्टा, भसीड़ (मुरार) आदि के लिए ही प्रयोग किया जाता है।

तालाब का उपयोग आम राहगीरों/परिवारों के लिए

नगर एवं निकटवर्ती ग्रामीण क्षेत्र के परिवार अपने पशुओं को पानी पिलाने, नहलाने एवं अनाज धोने के साथ–साथ शादी–व्याह में बारातियों, रिश्तेदारों के भ्रमण आदि के लिए उपयोग करते हैं। राहगीर भी अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिए इस तालाब के पानी का उपयोग करते हैं।

तालाब का व्यवसायिक उपयोग

तालाबों पर नगर क्षेत्र के लगभग 2 दर्जन से अधिक परिवार कपड़े धुलाई करके अपना रोजगार सृजित करते थे। बीच में सूखा पड़ने के दौरान इनकी आजीविका संकट में पड़ गयी थी। सूखा पड़ने के दौरान उनको अधिक कठिनाई का सामना करना पड़ा था। अब पर्याप्त पानी उपलब्धता होने के कारण प्रत्येक परिवार अपना धन्धा आसानी से कर पा रहे हैं। इससे प्रति परिवार की मासिक आमदनी रू0 3000. 00–5000.00 के बीच आंकी गयी है। यह भी बताना उचित होगा कि ये लोग साबुन, निरमा आदि का प्रयोग अलग स्थानों पर करके तब तालाब में लाकर धुलाई करते हैं, जिससे पानी दूषित होने की सम्भावना कम हो जाती है और जल प्रदूषण के कारण होने वाले नुकसान का प्रतिशत घट जाता है।

पानी पुनरूत्थान पहल श्रमदान का विवरण

तालाब का नाम	कुल क्षेत्रफल	श्रमदान से आच्छादित क्षेत्रफल	श्रमदान दिन	श्रमदानियों की संख्या	खाने–पीने, ठहरने व्यय
1	2	3	4	5	6
जय सागर	15888 हे० गाटा सं० 2067/1033	490 मीटर x 150 मीटर	46 दिन	20,000	रु० 40,000.00

अन्य संसाधनों के प्रयोग में तेल आदि पर व्यय	श्रमदान का सरकारी आंकलन	वर्तमान फायदे			
		मत्स्य पालन	सिंघाड़ा उत्पादन	कमल पत्ता	मुरार
7	8	9	10	11	12
रु० 60,000.00	रु० 56 लाख	रु० 11,23,000.00	–	–	–

नोट : तालाब के पुनरूत्थान का सबसे बड़ा फायदा यह रहा कि नगर के सभी पेयजल स्रोतों का जलस्तर संतुलित हुआ है, जिस कारण अप्रत्यक्ष रूप से नगरवासी एवं किसान लाभान्वित हुए हैं।

पुनर्जीवित किये गये तालाब न सिर्फ सक्षम हैं, वरन् इसने अनेक कामगरों मसलन धोबी आदि को आजीविका भी मुहैया कराई है। साथ ही इससे नगर पालिका को भी अतिरिक्त लाभ हो रहा है।

सामुदायिक सहयोग से रोका बरसात का पानी

नदी एवं जंगल जैसी प्राकृतिक संपदाओं से प्रचुर होने के बाद भी उबड़-खाबड़ भूमि होने के कारण लोग सिंचाई साधनों की अनुपलब्धता से खेती कर पाने में कठिनाई का अनुभव करते थे। ऐसे में बरसाती पानी रोकने का समुदाय स्तर पर किया गया प्रयास सफल व अनुकरणीय रहा।

संदर्भ

मौसमी परिवर्तन के कारण आपदाओं की मार तो सभी पर पड़ती है और नुकसान भी सभी का होता है। परन्तु पहले से ही विकास कार्यों से अछूते गांवों, विकासखण्डों के लिए यह स्थिति ''करेला नीम चढ़ा'' वाली हो जाती है। कुछ ऐसी ही स्थिति विन्ध्य क्षेत्र की है। कभी प्राकृतिक वन सम्पदा से भरपूर यह क्षेत्र आज विसंगतियों एवं उपेक्षा का शिकार होकर अपनी निजता को खोता जा रहा है और इसका खामियाज़ा वहां रहने वाले को भुगतना पड़ रहा है।

जनपद चन्दौली के विकास खण्ड नौगढ़ के 27 ग्राम पंचायतों में से 6 ग्राम पंचायत कर्मनाशा नदी के उस पार जंगल से घिरे हुए हैं। जंगली क्षेत्र होने के कारण इन ग्राम पंचायतों की भूमि उबड़–खाबड़ है। इन क्षेत्रों में विकास के कोई भी कार्य कभी संचालित नहीं किये गये। सरकारी विभाग यहां पर जाने से भी डरते हैं। बिडम्बना ही है कि गांव के लोगों के पास खेती योग्य भूमि होने के बावजूद सिंचाई साधनों की प्रचुरता न होने के कारण उनके साल भर खाने के लिए अन्न नहीं हो पाता था।

ऐसे में इनकी निर्भरता वन उत्पादों पर थी। एक तरह से कहा जाये कि वन उत्पाद ही इनकी आय का मुख्य स्रोत थे, तो अतिश्योक्ति न होगी। जंगल पर ही पूर्णतया आश्रित होने का परिणाम यह हुआ कि जंगलों का दोहन बड़े पैमाने पर किया जाने लगा। जिसका सीधा प्रभाव वर्षा के पानी एवं मिट्टी पर पड़ा और कृषि योग्य भूमि पथरीली भूमि में तब्दील होने लगी तब यहां के लोगों ने इस समस्या को गम्भीरता से लिया और इसके समाधान की दिशा में प्रयास करना शुरू किया।

प्रक्रिया

समूह गठन एवं नाले पर बन्धी निर्माण

इन्हीं 6 ग्राम पंचायतों में से एक ग्राम पंचायत गंगापुर के गांव झरियवां में 45 आदिवासी परिवार निवास करते हैं। गांव चारों तरफ से जंगल से घिरा हुआ है तथा उत्तर में 2 किमी0 की दूरी पर कर्मनाशा नदी बहती है।

गांव में खेती योग्य भूमि का रकबा 200 एकड़ होने के बावजूद मुख्यतः वर्षा आधारित खेती होने के कारण यहां के लोग सिर्फ खरीफ की खेती कर पाते थे। जिससे इनके सामने वर्ष के 4 महीने खाने का संकट उत्पन्न रहता था। इसके विकल्प के तौर पर लोग बगल के गांव से ब्याज पर रुपया व अनाज लाते थे और 10 प्रतिशत अथवा डेढ़ा अनाज ब्याज के तौर पर अदा करते थे। सरकार द्वारा गांव के दक्षिण व पश्चिम दिशा में सिंचाई विभाग द्वारा दो छोटी– छोटी बन्धियां बनाई गयी हैं, परन्तु सिंचाई की दृष्टि से अपर्याप्त साबित होती हैं।

इन सारी समस्याओं को झेलते गांव वासियों को आशा की एक किरण दिखाई दी, जब सामाजिक संस्था पेपुस इनके गांव में आयी और इनकी समस्याओं पर बात–चीत करना प्रारम्भ किया।

दिनांक 20.4.2001 में गांव की एक खुली बैठक की गयी। बैठक के दौरान श्री गिरिजा प्रसाद ने वस्तुस्थिति पर चर्चा करते हुए कहा कि ऐसा नहीं हैं कि हमारे यहां पानी की कमी है। पानी तो प्रचुर मात्रा में है, परन्तु उबड़–खाबड़ जमीन होने के कारण पानी का एकत्रीकरण नहीं हो पाता है। सारा पानी नाले के रास्ते कर्मनाशा नदी में चला जाता है। विकल्प के तौर पर उन्होंने सुझाया कि यदि इसको बांध दिया जाये तो पानी एकत्र होगा, जिसका उपयोग हम सिंचाई के लिए कर सकते हैं। यदि पानी अधिक होगा तो ऊपर से निकल जायेगा। सर्वसम्मति से इस पर सहमति जताई गयी और तब श्रीमती रामसखी देवी के नेतृत्व में लोगों ने बन्धी निर्माण की प्रक्रिया आरम्भ की। मुख्य विषय यह था कि इस निर्माण कार्य हेतु कहीं से भी कोई पैसा अनुदान के तौर पर नहीं था। अतः यह तय हुआ कि जंगल से ढोका, बालू लिया जाये, श्रमदान सभी लोग करेगें तथा सीमेण्ट, छड़, मिस्त्री की मजदूरी हेतु बन्धी बनने से लाभान्वित होने वाले किसानों से चन्दा लिया जायेगा। सभी ने इस नियम को माना और प्रति एकड़ रू0 500.00 की दर से 20 एकड़ जमीन का रू0 10,000.00 एकत्र हुआ। मानसिक सम्बल प्रदान करने के साथ ही संस्था ने भी 10,000.00 रू0 की लागत लगाई तत्पश्चात् बन्धी निर्माण हुआ।

बंधे नाले का क्षेत्रफल

नाले के बांधे गये क्षेत्रफल की लम्बाई 12 मीटर, ऊंचाई 1.5 मीटर तथा चौड़ाई 3 मीटर है। बंधान का यह क्षेत्रफल पक्का है। जबकि पूरब व पश्चिम दिशा में 15–15 मीटर लम्बा, 4.5 मीटर चौड़ा व 2.5 मीटर ऊंचाई तक कच्चा बंधान बांधा गया।

रख–रखाव

नाले को बांधने से लाभान्वित कुल 15 परिवारों द्वारा इस की देख–रेख एवं रख–रखाव किया जाता है।

नाला बांधने में आई लागत

इस पूरी प्रक्रिया में लागत के तौर पर जंगल से 30 ट्राली ढोका व 8 ट्राली बालू लगा। इस कार्य में 36 दिनों तक बारी–बारी से 5 लोगों ने प्रतिदिन श्रमदान किया, जिसका मूल्य 36x 5x 60रू0 = 10800.00 हुआ। रू0 20,000.00 सीमेण्ट, छड़, मिस्त्री मजदूरी में खर्च हुआ। मानव श्रम का आकलन करते हुए कुल लागत रू0 30.800.00 लगी।

परिणाम

- ग्रामीणों एवं पशुओं को एक वर्ष तक खाने के लिए अनाज एवं चारा उपलब्ध होने लगा।
- बन्धी में एकत्र पानी से खरीफ में धान, रबी में आलू, गेंहू, प्याज की खेती होने लगी है।
- मिट्टी का कटाव रूक गया है।
- वर्षा कम होने पर भी बन्धी में एकत्र पानी से सिंचाई की समस्या हल होती है।
- 20 एकड जमीन के मालिक 15 किसान सिंचाई सुविधा से लाभान्वित हुए हैं।
- बागवानी एवं सब्जी उत्पादन जैसे आजीविका के प्रयास संभव हो सके।

> अगर यह प्रयास आज से 20 वर्ष पहले हुआ होता, तो हम गरीब न रहते। –कपिलदेव

स्वयं के श्रम एवं लाभ पाने वाले किसानों से चन्दा लेकर बांधे गये नाले ने जहाँ सामूहिकता की भावना उजागर की, वहीं मनुष्यों एवं पशुओं की वर्ष भर खाद्य सुरक्षा भी सुनिश्चित हुई।

सूखे से निपटने हेतु बंधी बांधने का एकल प्रयास

सूखे से निपटने हेतु एक परिवार ने अपनी क्षमता प्रदर्शित करते हुए अपनी खेती के बीचों-बीच से बहने वाले नाले को बांधा। जिससे न सिर्फ खेत की उर्वरता बहने से रुकी वरन् इनकी खेती भी दो फसली हो गई।

संदर्भ

बिन्ध्य क्षेत्र के पहाड़ी इलाकों में रहने वाले लोगों की आजीविका का मुख्य साधन खेती होते हुए भी लोग खेती से विमुख हो रहे हैं। इसका मुख्य कारण स्थानीय भौगोलिक बनावट के साथ मौसम के प्राकृतिक बदलाव का ताल–मेल स्थापित न हो पाना है। यहां की जमीनें सामान्यतया उबड़–खाबड़ होने के कारण यहां पर पानी ठहर नहीं पाता, नतीजतन बारिश तो होती है, परन्तु उसका कोई लाभ नहीं मिल पाता। दूसरे बदलती परिस्थितियों में बारिश कम होने से स्थितियां और भी दुरूह होती जा रही हैं। ऐसे समय में यहां की पहली प्राथमिकता पानी एकत्र करने की प्रक्रिया को प्रारम्भ करना, उसे मजबूती से स्थापित करना है। आज जबकि मानवीय संवेदनाओं का सबसे संक्रमित काल चल रहा है। ऐसे समय में सामूहिक प्रयास की आस में बैठना कतई बुद्धिमानी नहीं होगी इसी सोच के साथ बंधी बांधने का कार्य अकेले किया जाना अनुकरणीय है।

प्रक्रिया

किसान की पृष्ठभूमि

जनपद चन्दौली, विकास खण्ड नौगढ़, ग्राम होरिला के निवासी श्री छोटेलाल पुत्र श्री रामधनी जाति के चमार हैं। इनके परिवार के कुल 6 सदस्यों की आजीविका का साधन 1.6 एकड़ खेती है। अति विपन्नता झेल रहे श्री छोटेलाल की गरीबी का मुख्य कारण जमीन की कमी नहीं वरन् जमीन का समुचित प्रबन्ध न होना है। इनकी जमीन पहाड के नीचे है, जिसके बीचों–बीच से नाला बहता है। नाले में 3 किमी0 दूर जंगल एवं पहाड़ से बरसात का पानी बहकर आता है, जो सीधे नदी में चला जाता है। इन्होंने बताया कि – पानी की कमी तो नहीं थी, परन्तु उसका उचित प्रबन्धन न होने के कारण बहुत लाभदायक स्थिति नहीं थी। खरीफ की फसल में धान की खेती होती थी। वह भी सिंचाई के अभाव में बहुत अच्छा उत्पादन नहीं दे पाती थी, जिससे परिवार का खर्च मात्र 6 माह तक ही चल पाता था। शेष समय जीवन–यापन के लिए वनोत्पादों एवं मजदूरी पर आधारित होना पड़ता था। ये जंगल से तेंदूपत्ता, महुआ, लकड़ी आदि लाकर उसे बाज़ार में बेचकर खाने का जुगाड़ करते थे। सिंचाई के अभाव में रबी की खेती एकदम ही नही हो पाती थी। इस स्थिति से निकलने हेतु इन्होंने विचार बनाया कि यदि खेत के बीचों–बीच बह रहे नाले के पानी को रोककर मोड़ दिया जाये, तो उसके माध्यम से खेत की सिंचाई हो सकती है। इससे एक तो हम दोनों फसलों का लाभ ले सकेगें और दूसरे मिट्टी की कटान भी रूकेगी। इस विचार को मूर्त रूप देने के लिए उन्होंने नाले पर बन्धी बनाया।

नाले पर बंधी निर्माण

तत्पश्चात् परिवार के सभी सदस्यों ने थोड़ा–थोड़ा सहयोग किया और 25 मीटर लम्बा, 3.125 मीटर ऊंचा एवं 6.25 मीटर चौडी बन्धी बांधी गयी। इस बंधी के बांधने में लगे समय व श्रम का आंकलन किया जाये तो कुल 50 दिनों तक 4 व्यक्तियों ने काम कर इस बंधी को तैयार किया। बंधी में लगी लागत का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है –

200 दिन x 60 रू0 प्रतिदिन = 12000.00 लगा। उपरोक्त धनराशि छोटेलाल सहित उनके परिवार के 4 सदस्यों द्वारा किये गये श्रमदान का आंकलन है।

सिंचाई की सुविधा

बंधी बन जाने से अब उसमें एकत्र पानी से सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो गयी है, जिससे छोटे लाल अपने खेत में दोनों सीजन में फसल उत्पादन कर पा रहे हैं। इसके साथ ही गर्मी के दिनों में पशुओं के पीने के लिए पानी की उपलब्धता भी सहज हो गयी है। खेत की मिट्टी एवं नमी भी संरक्षित हो रही है।

लाभ

- वर्तमान में वर्षा का पानी बन्धी में रोककर धान की फसल का अच्छा उत्पादन हो रहा है। तुलनात्मक तौर पर देखें तो पहले जहां एक एकड़ में 15 कुन्तल की पैदावार होती थी, आज उसी खेत में एक एकड़ में 22 कुन्तल की पैदावार हो रही है।
- इसको बांधने से मिट्टी की कटान रुकी है। सबसे बड़ा फायदा तो यह हुआ कि यह अपनी 5 बिस्वा जमीन, जो पथरीली हो गयी थी, उस पर भी मिट्टी पाटकर खेती कर रहे हैं।
- सब्ज़ियों की खेती भी प्रारम्भ कर दिया है, जिससे बाज़ार से जुड़ाव भी रहता है और आर्थिक निर्भरता भी बनी रहती है। 2 बिस्वा खेत में मिर्च, टमाटर एवं बैगन की खेती कर रहे हैं।
- नाला बंध जाने से जमीन भी मिली है। इन्होंने जंगल में अपनी जमीन भी बढ़ा लिया है।
- खेती में बेहतर लाभ होने से पशुओं की संख्या भी बढ़ाई है। आज इनके पास 10 गाय हैं। धान का पुआल पशुओं को खिलाते हैं। इसके साथ ही पशुओं के लिए चरी भी अपने खेत में बो लेते हैं।
- सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि अब इनके पास 12 महीने खाने का अनाज उपलब्ध हो जाता है। साथ ही सब्जियों की खेती से कुछ आर्थिक आय भी हो जाती है।

नाला बांधने से जहाँ इस परिवार की जमीन बढ़ी वहीं वर्ष भर इनकी खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित हुई और उनकी आजीविका के स्रोत एवं पशुओं की संख्या बढ़ी।

सूखे जालौन में पानी संरक्षण की अनोखी तकनीक

सूखे परिक्षेत्र में बेकार बहने वाला पानी सूखा को और बढ़ाता ही है। यही सोचकर जालौन के डांग खजूरी गाँव की महिलाओं ने आर्टीजन वेल से बेकार बहने वाले पानी को नियन्त्रित किया, जिसने अन्य लोगों को प्रेरणा देने का काम किया।

संदर्भ

बुन्देलखण्ड क्षेत्र अपनी भौगोलिक बनावट के अनुसार एक तरफ जहां, नदी, नाले, पहाड़, जंगल आदि प्राकृतिक सम्पदाओं से भरपूर है, वहीं दूसरी तरफ यहां की जमीन काफी उबड़–खाबड़ है, जिससे प्रकृति प्रदत्त इन सुविधाओं का भरपूर लाभ नहीं मिल पाता है। इसके साथ ही मानव जनित अनेक कारण ऐसे हैं, जो यहां की विषम परिस्थितियों को और विषम बनाते हैं। तालाबों को पाटने, अवैध कब्जा आदि कुछ ऐसी मानवीय प्रवृत्तियां हैं, जिसने बुन्देलखण्ड की जटिलताओं में गुणात्मक वृद्धि की है। ऐसे सूखे परिक्षेत्र में पानी का बेकार बहना असुरक्षित भविष्य की ओर ले जाने वाला निश्चित कदम साबित होता है। एक तरफ तो हम पानी की कमी का रोना रोयें और दूसरी तरफ पानी निरन्तर व बेकार बहे, तो इस पर गम्भीरता से सोचना आवश्यक हो जाता है और कुछ ऐसी ही सोच उत्पन्न हुई कोंच तहसील के डांग खजूरी गांव की श्रीमती बिटोली देवी के मन में।

जनपद जालौन के कोंच तहसील में पहुज नदी क्षेत्र में बसा गांव डांग खजूरी भौगोलिक दृष्टि से अत्यन्त उबड़–खाबड़ एवं ढालू है। यहां के खेत बहुत ही छोटे एवं ढालू होने से खेती बहुत फायदेमन्द नहीं होती। यहां बसने वाले लोगों में 95 प्रतिशत लघु एवं सीमान्त किसान हैं, जिनके लिए खेती ही आजीविका का एकमात्र विकल्प है और जो अपनी छोटी जोत के कारण निरन्तर आर्थिक विपन्नता की ओर अग्रसर हो रहे हैं। यहां सिंचाई के बहुत से साधन नहीं हैं और जो हैं भी उनका समुचित प्रबन्धन न होने के कारण बहुत उपयोगी नहीं हो पाता है। कुछ ऐसी ही परिस्थितियों से जूझती श्रीमती बिटोली देवी ने बेकार बह रहे पानी के संरक्षण की अनोखी तकनीक निकाली।

प्रक्रिया

पानी संरक्षण की पृष्ठभूमि

1990–2000 के दशक में सरकार ने बुन्देलखण्ड संभाग में लोगों को सिंचाई सुविधा उपलब्ध कराने के लिए निःशुल्क बोरिंग योजना चलाई। इसमें डांग खजूरी गांव परिक्षेत्र में 24 आर्टीजन वेल लगे। जिसके तहत् 25 फीट लम्बी व चार इंच चौड़ी पाइप को जमीन में बोरिंग करके डाल दिया गया, जिसके माध्यम से पानी ऊपर आने लगा। इसी दौरान हाईब्रिड बीजो का विस्तार भी हुआ। लोगों ने रबी खरीफ दोनों सीजन में फसलें उगानी प्रारम्भ कीं। अधिक उत्पादन की चाह में ज्यादा पानी चाहने वाली प्रजातियों की खेती भी की। इस योजना का मकसद लोगों को रबी सीजन में सिंचाई की सुविधा उपलब्ध कराकर उनकी आर्थिक सपन्नता को बढ़ाना था और ऐसा हुआ भी। परन्तु पानी का समुचित प्रबन्धन न होने के कारण गांव को सूखे की चपेट में लाने का कारण भी यही आर्टीजन वेल बने। कारण कि इन पाइपों से निरन्तर पानी अपनी पूरी गति से बहता रहता था। सिंचाई के समय तो ठीक, परन्तु अन्य समय में पानी का बेकार बहाव स्थिति की भयावहता का निश्चित संकेत था, जिसे लोग महसूस भी करने लगे थे।

समूह गठन एवं पानी संरक्षण की तकनीक

सूखे की वर्तमान परिस्थिति को झेलते और आगामी भयावह स्थिति की कल्पना कर रहे ग्रामीणों को झकझोरने का काम किया समर्पण जन कल्याण समिति ने। पानी की कमी से होने वाली समस्याओं एवं संरक्षण पर चलाये गये जागरूकता अभियान ने डांग खजूरी गांव के लोगों में नव चेतना जाग्रत की एवं पानी बचाने की मुहिम शुरू हुई। गांव की एक बैठक कर लोगों ने इस समस्या एवं समर्पण जन कल्याण समिति द्वारा चलाये गये अभियान की समीक्षा करने के दौरान बिटोली ने कहा कि हमारे गांव में 24 आर्टीजन वेल हैं, जिनसे निरन्तर पानी बहता रहता है, क्या उनके संरक्षण की बात की जा सकती है, जिससे हमारा भविष्य सुरक्षित हो सके। सभी ने इस विचार पर सहमति व्यक्त की। तत्पश्चात् कार्यों को सुचारू रूप से गति प्रदान करने के लिए समूह का गठन किया गया, जिसका नेतृत्व बिटोली देवी ने किया और शुरू हुआ पानी संरक्षण अभियान।

इस अभियान के तहत् गांव के किसान अपने साथ कुल्हाड़ी लेकर खेतों की ओर निकल पड़े। सर्वप्रथम इन्होंने पाइप की चौड़ाई से थोड़ा छोटा लकड़ी का खूंटा बनाकर आर्टीजन वेल के मुंह पर लगा दिया । इससे पानी पूरी तरह तो नहीं बन्द हुआ, परन्तु पानी की गति पर अंकुश लग गया। अब पानी रिसकर बहुत न्यून मात्रा में ही बरबाद होता है। खूंटे से मुंह बन्द करने के पीछे की सोच यह भी थी कि जब सिंचाई की आवश्यकता हो, तो पाइप में से खूंटे को निकाल कर पूरा पानी प्राप्त किया जा सकता है। 24 आर्टीजन वेल को बन्द करने में कुल 3 दिन का समय लगा। वह भी इसलिए कि लकड़ी काटना और फिर उसे खूंटे के आकार में बदलने में अधिक समय लगा।

आर्टीजन वेल से संरक्षित पानी की गणना

एक आर्टीजन वेल से कितना पानी बेकार बह जाता है और उपरोक्त तकनीक से कितने पानी का संरक्षण किया जा सकता है। इसे जानने की प्रक्रिया में समूह की महिलाएं समय देखने हेतु घड़ी, पानी रोकने के लिए बाल्टी एवं पानी नापने के लिए लीटर लेकर एक आर्टीजन वेल पर पहुंची। निश्चित समय में पानी रोककर उसे नापकर देखा गया कि एक आर्टीजन वेल से औसतन 1 मिनट में 71 लीटर पानी निकलता है। इसे एक घण्टे में परिवर्तित कर इस प्रकार देखा जा सकता है कि 71ली0 x 60 मिनट = 4260 लीटर। इस प्रकार एक घण्टे में एक आर्टीजन वेल से लगभग 4260 लीटर पानी बरबाद होता है। समूह की महिलाओं ने यह भी गणना किया कि पूरे वर्ष में सिंचाई करने, पशुओं को पानी पिलाने एवं ईंट निर्माण कार्य में पानी का उपयोग 7088 घण्टे होता है। शेष 1672 घण्टे में सभी आर्टीजन वेलों से बेकार बहने वाले पानी की गणना कुछ इस तरह से है –

4260 ली x 1672 घण्टे x 24 आर्टीजन वेल

= 170945280 लीटर

लाभ

इस पानी संरक्षण से निम्नलिखित लाभ हो रहे हैं–

- दीर्घकालिक तौर पर दिखने वाला लाभ यह है कि भूगर्भीय जल स्तर की सुरक्षा हुई है।
- जितनी आवश्यकता हो उतना ही पानी लेने से आस–पास पानी फैलता नहीं और इससे जमीन एवं फसल बरबाद नहीं हो पाती है।

पानी को नियन्त्रित करने हेतु महिलाओं की अगुआई में पुरुषों ने स्थानीय संसाधनों का इस्तेमाल किया और बूंद-बूंद पानी का संरक्षण कर दीर्घकालिक लाभ सुनिश्चित किया।

मृदा संरक्षण से खाद्य सुरक्षा

पानी की तेज रफ्तार जहाँ मिट्टी की कटान करती है, वहीं दूसरी तरफ पानी रुक न पाने के कारण सिंचाई भी नहीं हो पाती। इस दोतरफा नुकसान से बचने के लिए लोगों ने मेड़बन्दी की प्रक्रिया अपनाई और अपने खेतों की सुरक्षा की।

संदर्भ

नैसर्गिक सम्पदाओं से परिपूर्ण होने के बावजूद बिन्ध्य क्षेत्र उबड़–खाबड़ भूमि होने के कारण खेती सम्बन्धी समस्याओं से जूझता ही रहता है। यहां नदी, नाले तो हैं, वर्षा का पानी भी ठीक–ठाक स्तर तक रहता है, परन्तु उबड़–खाबड़ जमीन होने के कारण पानी रूक नहीं पाता। फलतः उसका लाभ नहीं मिल पाता। जनपद चन्दौली का विकास खण्ड नौगढ़ इस तरह की समस्या को मुख्यता से झेलता है। जंगली क्षेत्र होने के कारण यहां खेती योग्य भूमि ऊंची–नीची है। यहां स्थित गांवों के एक तरफ पहाड़ तथा दूसरी तरफ नदी होने के कारण बरसात का पानी पहाड़ से सीधे नदी में उतर जाता है। इस प्रकार खेती योग्य भूमि बरसात के बाद भी सूखी ही रहती है। हां! यह अवश्य होता है कि पानी की तेज रफ्तार मृदा कटान तेजी से करती है और अपने साथ उपजाऊ भूमि भी बहा ले जाती है एवं पीछे छोड़ती है– पत्थरों के छोटे–बड़े टुकड़े, जिससे खेती योग्य भूमि पथरीली भूमि में बदलती जा रही थी। इस चिन्ताजनक स्थिति ने लोगों को सोचने पर विवश किया और मृदा व उर्वरता संरक्षण हेतु लोग मेड़बन्दी की प्रक्रिया को तकनीकी ढंग से अमली जामा पहनाने की ओर तत्पर हुए।

प्रक्रिया

पूर्व स्थिति का आकलन

जनपद चन्दौली, विकास खण्ड नौगढ़ के ग्राम धोबही के लोगों का मुख्य पेशा खेती है, परन्तु उक्त समस्याओं को झेलते ये किसान अपनी 41 एकड़ खेती (65 बीघा खेती) पर टड़िहन खेती कर अपना जीवन–यापन करते थे। पूर्णतः वर्षा आधारित खेती होने के कारण मात्र खरीफ की फसल ले पाते थे। शेष समय में मजदूरी एवं जंगल की लकड़ी बेचकर अपनी आजीविका सुनिश्चित करते थे। आर्थिक विपन्नता झेलते इस गांव में पेपुस संस्थान ने वर्ष 1997 के पूर्वार्ध में एक खुली बैठक रखी, जिसमें खेती की विषम स्थितियों, किसानों का खेती से विमुख होना, जीवन यापन हेतु अन्य विकल्पों की तलाश आदि चर्चा के मुख्य विषय थे। बैठक में यह स्पष्ट हुआ कि मिट्टी की कटान एवं बरसात का जल न रुकने से समस्या अधिक विकराल हुई है। यदि इन दोनों समस्याओं का निराकरण किया जाये तो निश्चित तौर पर समस्या की गंभीरता को कम किया जा सकता है।

मेड़बन्दी प्रक्रिया

उपरोक्त दोनों समस्याओं से निपटने हेतु मेड़बन्दी एक उपयुक्त विकल्प था। इस पर आम सहमति भी बनी, परन्तु किसानों की आर्थिक दयनीयता इस कार्य में बाधक बन रही थी। तत्पश्चात् संस्था आगे आयी और उसने किसानों से कहा कि – मेड़बन्दी कार्य में लगने वाले पूरे व्यय का आधा हिस्सा संस्था व्यय करेगी।'' तय हुआ कि शेष आधी धनराशि खेत का मालिक वहन करेगा। इस सहमति के बाद वर्ष 1998 में धोबही गांव के किसानों ने अपने खेतों पर खेत की ढाल के अनुसार दो या तीन भागों में विभाजित करके मेड़ डालने का काम शुरू किया तथा रबी सीजन के अन्त तक मेड़ तैयार हो गयी। तैयार मेड़ की ऊंचाई 0.75 मीटर से 1.5 मीटर तक रखी गयी। किसानों ने अपने यहां पानी के बहाव तथा आमद को देखते हुए मेड़ों की चौड़ाई भी 8 से 15 फुट रखी। इन्होंने मेड़ों पर पानी के अतिरिक्त निकास के लिए आउटलेट बनाया। संस्था सहयोग से कुल 14.4 एकड़ की मेड़बन्दी कराई गयी, जबकि किसानों ने अपने स्वयं के प्रयास से 20 एकड़ खेत की मेड़बन्दी की।

प्रसार

- धोबही गांव में हो रहे इस प्रयास एवं उसके सफल परिणाम को देखकर अगल–बगल के समान परिस्थिति वाले 16 अन्य गांवों में किसानों ने स्वयं के प्रयास से कुल 640.4 एकड़ खेत की मेड़बन्दी की, जो अपने–आप में एक अनुकरणीय उदाहरण है। ये प्रयास छोटे, सीमान्त किसानों द्वारा अपनी छोटी–छोटी जोत पर किये गये, पर उनका सम्मिलित समीकरण इस प्रयास को बड़ा व महत्वपूर्ण बनाता है।
- किसानों द्वारा मृदा एवं जल संरक्षण की दिशा में किये जा रहे मेड़बन्दी के इस कार्य को देखकर किसानों को और अधिक प्रोत्साहित करते हुए भूमि संरक्षण विभाग द्वारा प्रत्येक गांव में बह रहे नाले के पानी को रोकने के लिए छोटी–छोटी बन्धियों का निर्माण कराया गया।

लागत

इस पूरे कार्य में संस्था ने 36000.00 रूपये का योगदान किया, जबकि किसानों ने श्रम लगाया, जिसका मूल्य आंकलन करने के दौरान इसे पैसे में देखा जाये, तो 36000.00 खर्च हुआ। एक बीघा खेत की 3 फीट चौड़ी व 1–1.25 फीट ऊंची मेड़बन्दी एक व्यक्ति द्वारा 20 दिन में की गयी, जिसमें खर्च आया कुल रू0 1000.00 खर्च का विवरण इस प्रकार था – एक खन्ती मिट्टी डालने पर 50रू0 मजदूरी देय होती थी। अर्थात् 100 घन फुट मिट्टी का काम करने पर रू0 50 दिया जाता था। मेड़बन्दी में आधा खर्च संस्था व आधा स्वयं किसान द्वारा देय होता था।

लाभ

मृदा संरक्षण की यह प्रक्रिया लम्बी थी और इससे होने वाले लाभ को रूपये में आंकना मुश्किल है। फिर भी कहा जा सकता है कि –

- इसके दीर्घकालिक परिणाम अब परिलक्षित हो रहे हैं जब किसान अपनी भूमि में साल भर तक खाने के लिए अनाज उत्पादित कर ले रहे हैं।
- अगले सीजन में मेड़बन्दी वाले खेतों में पानी रुकने की वजह से एक तो खेतों में नमी संरक्षित हुई, जिससे खरीफ की फसल तिल, अरहर, सेड़ी, साठी आदि की उपज मात्रा में वृद्धि हुई। तुलनात्मक तौर पर देखा जाये तो मेडबन्दी से पहले एक एकड़ में इन फसलों की उपज मात्रा 2.5–3 कुन्तल थी, जबकि मेडबन्दी के बाद उसी खेत में समान फसल का उत्पादन दुगुना के लगभग अर्थात् 5–6 कुन्तल होने लगा।
- पहले जहां किसान सिर्फ सांवा या तिल की खेती ही करते थे। उनकी खेती सिर्फ एक फसली थी। अब वे खरीफ में धान की फसल भी ले पाते हैं और रबी सीजन में गेंहू की खेती भी कर ले रहे हैं।

संस्थागत प्रयास व स्वयं का श्रमदान भूमि संरक्षण विभाग के लिए प्रेरणा का स्रोत बना और इन्होंने हर गाँव में इस तरह के कार्य विभागीय खर्च से कराये। गाँव वालों ने अन्य लाभ के अतिरिक्त इसे बड़ा लाभ माना।

गली प्लग (लूज बोल्डर चेकडैम) एवं मेड़बन्दी से परती/बंजर जमीन में फसलें लहलहाई

खेतों का सुधार मसलन भूमि समतलीकरण, मेड़बन्दी आदि सूखा से निपटने में एक बेहतर कदम साबित हो सकता है और यही मानते हुए तिंदौली के किसानों ने मृदा व नमी संरक्षण कार्य को प्राथमिकता दी।

संदर्भ

महोबा जनपद का ग्राम तिंदौली महोबा–छतरपुर रोड पर मुख्यालय से 16 किमी0 की दूरी पर स्थित है। गांव की आबादी 2430 है, जिसमें धोबी, ढीमर, लोधी, चमार, मुसलमान, बसोर, नाई आदि जातियां निवास करती हैं। गांव का कृषि योग्य क्षेत्रफल लगभग 650 हेक्टेयर है। भूमि को तीन भागों में बांटा जा सकता है। ऊसर भूमि 30 प्रतिशत, लाल पथरीली 35 प्रतिशत व काबर भूमि (काली मिट्टी) 35 प्रतिशत है। यहां का मुख्य व्यवसाय कृषि होते हुए भी सिंचाई के नाम पर वर्ष 1978 में पास के ही गांव सलारपुर में बने एक बांध से नहर निकली है, जिसकी गांव से दूरी 2 किमी0 है। सलारपुर डैम को भरने के लिए मध्य प्रदेश की सीमा पर बने हुए उर्मिल डैम से पानी छोड़ा जाता है, जो कम ही भर पाता है। लगभग 40 प्रतिशत जमीन उबड़–खाबड़ तथा ऊसर व कटाव वाली होने के कारण बेकार पड़ी रहती थी। जमीन खराब होते हुए भी प्रशासन द्वारा कभी भी मेड़बन्दी या भूमि सुधार की कोई योजना गांव में नहीं संचालित की गयी।

विगत 7 वर्षों से निरन्तर सूखा पड़ने के कारण वर्ष 2007 में गांव की स्थिति अत्यन्त भयावह हो गयी। गांव के तालाब, कुंएं, हैण्डपम्प सभी सूख गये, लोगों ने अपने पशुओं को खुला छोड़ दिया। चारे–पानी के अभाव में अधिकांश पशु भाग गये या मर गये। लोगों को पलायन करने पर मजबूर होना पड़ा।

प्रक्रिया

ऐसी ही विषम परिस्थिति में गांव की एक महिला श्रीमती शीला देवी ने पहल करते हुए गांव में एक बैठक आयोजित करवाई, जिसमें ग्रामोन्नति संस्थान से जुड़े लोगों ने भी शिरकत की और समस्या से निपटने हेतु गांव स्तर पर उपाय खोजे जाने लगे। काफी चर्चा के बाद किसानों की तरफ से यह सुझाव आया कि अगर खेत सुधर जायें तो स्थिति थोड़ी अच्छी हो सकती है, क्योंकि जमीन उबड़–खाबड़ होने के कारण पानी रूकता नहीं, साथ ही ऊसर भूमि होने के कारण भी पैदावार नहीं मिल पाती है। तय हुआ कि प्रथम चरण में मृदा एवं नमी संरक्षण हेतु खेतों की मेड़बन्दी तथा गली प्लग बनाये जायेगें तथा द्वितीय चरण में भूगर्भ जलस्तर बढ़ाने हेतु टूटी हुई बन्धियों पर चेकडैम व गली प्लग बनाने का काम किया जायेगा। यह भी तय हुआ कि कुल व्यय का 25 प्रतिशत किसानों द्वारा स्वयं वहन किया जायेगा, शेष धनराशि ग्रामोन्नति संस्थान द्वारा व्यय किया जायेगा।

क्षेत्र का चुनाव

सूरा चौकी से तिंदौली जाने वाले सड़क के दोनों किनारों में ऊसर, परती एवं अधिक कटाव वाली भूमि का 125 एकड़ क्षेत्र कार्य करने के लिए चयनित किया गया।

मृदा संरक्षण एवं नमी संरक्षण हेतु किये गये कार्य

अधिक कटाव वाली भूमि जैसे नाला/नाली आदि को समतल बनाने हेतु गली प्लग (लूज बोल्डर चेकडैम) व एक से डेढ़ मीटर ढाल वाले क्षेत्र में मेड़बन्दी का कार्य किया गया।

लूज बोल्डर चेकडैम की प्रक्रिया

पश्चिम दिशा में गया धोबी के खेत के पास से नाले का उद्गम था, जिसके कारण किसान रामसिंह, गजराज, रामरती, रामश्री, शंकर आदि की लगभग 15 एकड़ जमीन असमतल तथा कटान होने के कारण बेकार पड़ी रहती थी। उस भूमि पर उपरोक्त किसानों ने सर्वप्रथम सूखे पत्थरों के गली प्लग नाले में सात स्थानों पर बनाये, जिनकी लागत 15,000.00 रूपये के लगभग आयी, जिसमें किसानों द्वारा श्रम एवं भाड़े के रूप में लगभग 5500.00 रू0 का काम सामूहिक रूप से किया गया।

मेड़बन्दी कार्य

गली प्लग बनाने के बाद उपरोक्त किसानों के खेतों पर खेत को ढाल के अनुसार भागों में विभाजित करके मेड़ डालने का काम शुरू किया गया, जिसमें किसानों द्वारा स्वयं अपने खेतों में 0.75 मीटर से 1.5 मीटर तक ऊंचाई की मेड़ बनाई गयी। किसानों ने अपने यहां पानी के बहाव तथा आमद को देखते हुए मेड़ों की चौड़ाई भी 8 से 15 फुट रखी। मेड़ों पर पानी के अतिरिक्त निकास के लिए आउटलेट बनाये गये हैं।

कार्य के पीछे सोच

निरन्तर सूखा पड़ने के कारण उस समय किसानों के पास न तो कोई काम था और न ही भोजन पानी की कोई व्यवस्था थी। आजीविका के लिए लोग पलायन कर रहे थे। सूखे से निपटने तथा आजीविका के लिए कोई प्रयास शासन द्वारा नहीं किया गया था। गांव में बैठक के दौरान किसानों ने यह निश्चित किया था कि अगर पानी बरसता और खेतों की बुवाई होती, तो हम परिवार सहित खेतों में काम करते। अभी भी हम अपने खेतों में मेड़ बनाने का काम परिवार सहित करेगें। एक दिन में पति–पत्नी दोनों मिलकर 200 घन फुट मिट्टी डालेगें तो उसकी मजदूरी रू0 200.00 बनती है। जिसमें से 34 प्रतिशत अंशदान करने के बाद भी हमें 132.00 रू0 की आमदनी प्रतिदिन होगी। 2.5 एकड़ भूमि में मेड़बन्दी करने में दो व्यक्तियों को 30 से 45 दिन तक का समय लगता है। इस प्रकार अगर 30 दिन भी काम करेगें तो 30 x 132.00 = 3960.00 रू0 एक महीने में हमें मिलेगा, जिससे हमारी दो माह की आजीविका सुरक्षित होगी, हमारे खेतों का सुधार होगा तथा हमें किसी और की मजदूरी भी नहीं करनी पड़ेगी।

कार्य का परिणाम

- लूज बोल्डर चेकडैम बनाने से पानी के वेग में कमी आई है और कटाव रूकने के साथ–साथ पानी के साथ बहकर आयी मिट्टी का वहां जमाव हुआ, जिससे जमीन समतल हुई। मेड़बन्दी करने से बरसात का पानी खेत में अधिक समय तक रूका, जिससे खेत में नमी संरक्षित हुई और खेत की उपजाऊ मिट्टी भी बहकर नहीं जा पाई, साथ ही आस–पास के कुंओं का जलस्तर भी बढ़ा।
- उपरोक्त पद्धति को देखकर गांव के 36 किसानों द्वारा अपने खेतों पर इस तरह के काम किये गये, जिसमें लगभग 130 एकड़ जमीन का सुधार हुआ। इसमें से 50 एकड़ ऊसर एवं परती भूमि को खेती योग्य बनाया गया।
- उपरोक्त काम को देखकर गांव तिंदौली के अतिरिक्त कुम्हाईन, चुरबरा, मामना, मुगौरा, रतौली आदि के किसानों द्वारा यह विधि अपनाई जा रही है। सलारपुर गांव के एक किसान श्री बडी सिंह ने तो विगत वर्ष अपने तीन खेतों में सुबह, शाम मेड़ डालने का काम किया और दिन में मजदूरी की।
- मेड़बन्दी के कार्य से लोगों को काम तो मिला ही, साथ ही खेतों का भी सुधार हुआ और उन खेतों में आज गेंहू, चना, लाही आदि की फसल हो रही है।
- सिंचाई की आवश्यकता कम हुई है।

दूसरे चरण में इन किसानों ने कई टूटी बन्धियों पर चेकडैम व गली प्लग बनाने का काम किया और इस पूरी प्रक्रिया में बेहतर तरीके से लाभान्वित हुए।

सफल अनुभव

गांव की एक महिला श्रीमती रामश्री देवी पत्नी श्री प्रहलाद ने बताया कि हमारे खेत पर कुछ नहीं होता था और हम 4 एकड़ खेत को रू0 500.00 में एक वर्ष के लिए बनकट देते थे, परन्तु मेडबन्दी करने के बाद खेत सुधरने से उस खेत पर स्वयं खेती करते हैं। इस वर्ष हमारे खेत में चने की अच्छी फसल है। पहले खेती न होने के कारण हम अपने बच्चों को पढ़ा नहीं पाते थे, किन्तु अब हमने अपनी बेटी को मेडिकल की तैयारी के लिए इलाहाबाद में भेजा है।